परिवार के साथ कैसे रहें ?

आचार्य महाप्रज्ञ

परिवार के साथ कैसे रहें?

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य विभाग
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं–341306
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (01581) 226080, 224671
ई-मेल : books@jvbharati.org

Books are available online at
http://books.jvbharati.org

ISBN : 978-93-89427-37-0

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

अठाहरवां संस्करण : अगस्त 2022 (1000 प्रतियां)

मूल्य : दो सौ चालीस रुपये मात्र

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

प्रस्तुति

परिवारिक जीवन के लिए दो शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं–

१. आश्वास

२. विश्वास

पारिवारिक जीवन का निर्माण इसीलिए किया गया कि हर परिस्थिति में व्यक्ति को यह आश्वासन प्राप्त है–मैं अकेला नहीं हूं।

विश्वास के बिना जीवन-यात्रा नहीं चलती। सर्वाधिक विश्वास अपने परिवार पर किया जा सकता है।

आश्वास और विश्वास–इन दोनों संकल्पों के आधार पर संयुक्त परिवार की व्यवस्था हुई।

संयुक्त परिवार का सुरक्षा कवच है सहिष्णुता। सहिष्णुता का प्राण है सापेक्षता। वर्तमान युग में सहिष्णुता–सहन करने की शक्ति कम हो रही है। परस्परता या एक दूसरे की अपेक्षा की अनुभूति कम हो रही है।

परिवार के साथ वे ही व्यक्ति रह सकते हैं अथवा संयुक्त परिवार को दीर्घजीवी वे ही बना सकते हैं जिनमें सहिष्णुता और सापेक्षता का भावात्मक विकास होता है। आज की अपेक्षा है–शिक्षा, प्रशिक्षण और अभ्यास के द्वारा इन गुणों का अभ्यास किया जाए।

प्रस्तुत पुस्तक 'परिवार के साथ कैसे रहें?' उसी दिशा में ले जाने का एक विनम्र प्रयत्न है। इसके संपादन में मुनि धनंजयकुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

१३ अगस्त **आचार्य महाप्रज्ञ**

'अणुविभा', जयपुर

अनुक्रम

१. परिवार के साथ कैसे रहें?	७
२. शांतिपूर्ण सहवास कैसे हो?	१२
३. सामंजस्य कैसे बढ़ाएं?	१८
४. जरूरी है परिष्कार	२४
५. पारिवारिक जीवन और प्रबंधन	३०
६. शांत सहवास के नौ सूत्र	४४
७. शांत सहवास और भाषा विवेक	५८
८. मधुर बनाएं संबंधों को	६३
९. संभव है सुखद संवास	६९
१०. शांतिपूर्ण जीवन और समन्वय का दृष्टिकोण	८१
११. पारिवारिक शांति का महामंत्र	८७
१२. आध्यात्मिक परिवार का मानचित्र	९४
१३. जरूरी है अपना घर	१०१
१४. कैसे करें संस्कारों का निर्माण?	१११
१५. पारिवारिक समस्याएं और समाधान	१२४
१६. जरूरत है एक अभियान की	१३३
१७. परिवार और अहिंसा	१३७
१८. बचाना होगा परिवार नाम की संस्था को	१४३

१९. परिवार की नींव १४७
२०. पारिवारिक विघटन के कारण (१) १५३
२१. पारिवारिक विघटन के कारण (२) १५९
२२. नशा : नाश का द्वार १६४
२३. अच्छा आदमी : अच्छा परिवार १७१

१. परिवार के साथ कैसे रहें?

प्रश्न है शांत सहवास का

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज के साथ जीता है। समाज की सबसे छोटी इकाई है परिवार। परिवार सामंजस्य का एक प्रयोग है। यदि व्यक्ति दो-चार व्यक्तियों के साथ शांतिपूर्ण जीवन जी सकता है तो वह बड़े समूह के साथ भी शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है। यदि परिवार में कलह, लड़ाई-झगड़ा, रोना-रुलाना–यह सब चलता है तो उसका जीवन नारकीय जैसा बन जाता है। शांतिपूर्ण जीवन के लिए जरूरी है कि व्यक्ति परिवार के साथ शांतिपूर्ण ढंग से रहे, इसीलिए शांत सहवास का सूत्र दिया गया। शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सूत्र दिया गया। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ शांतिपूर्ण ढंग से रहे और सह-अस्तित्व को स्वीकार करे।

जब परिवार में ही शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व नहीं होता है तब समाज, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वह कैसे संभव है? प्रशिक्षण का पहला पाठ है कि व्यक्ति परिवार के साथ शांतिपूर्ण ढंग से रहे। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा चाहता है, पर चाहते हुए भी वह ऐसा कर नहीं पाता। प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों नहीं होता? जीवन शांतिपूर्ण क्यों नहीं बनता? इसका कारण क्या है?

अशांति का कारण

हम कारणों पर विचार करें। कारण की समीक्षा किए बिना इस समस्या को मिटाया नहीं जा सकता। अशांति का कारण है–चेतना का अपरिष्कृत होना। आदमी शरीर, वाणी और मन के साथ जीता है। इन सबसे आगे है हमारी चेतना। जब तक चेतना का परिष्कार नहीं होता, शरीर, वाणी सब अपवित्र रहते हैं, मन भी निर्मल नहीं बनता। ये सब चेतना के द्वारा संचालित हैं। चेतना परिष्कृत होती है तो ये सारे निर्मल बन जाते हैं। चेतना अच्छी नहीं होती है तो ये भी अच्छे नहीं बनते। चेतना का परिष्कार नहीं है, विवेक जागृत नहीं है,

बुद्धि विकसित नहीं है कि हम सचाई को ठीक से समझ सकें, इसीलिए परिवार में संबंधों का जोड़-तोड़ चलता रहता है।

चेतना के दो रूप

चेतना के दो रूप हैं–व्यक्ति-चेतना और सामुदायिक-चेतना। व्यक्ति-चेतना के भी दो अर्थ हैं। उसका एक अर्थ है अध्यात्म-चेतना, परमार्थ की चेतना और उसका दूसरा अर्थ है स्वार्थ-चेतना। परमार्थ चेतना है कि मैं अकेला हूं, अकेला जन्मा हूं, अकेला सुख दुःख भोगता हूं, अकेला ही आया हूं, अकेला ही जाना है, मेरी आत्मा अकेली है, कोई साथी नहीं है। यह सारा चिंतन व्यक्ति-चेतना से उपजता है। वास्तव में सचाई भी यही है कि कोई किसी का सुख-दुःख बांट नहीं सकता। व्यक्ति किसी के प्रति संवेदना प्रकट कर सकता है, पर वह किसी के दुःख को बांट नहीं सकता। पीड़ा व्यक्ति-चेतना से जुड़ी हुई सचाई है। वह व्यक्तिगत होती है। व्यक्ति-चेतना को हम एक अर्थ में अध्यात्म-चेतना कह सकते हैं। सुख-दुःख, जन्म-मरण–ये सारी बातें आत्मा से संबंध रखने वाली हैं।

व्यक्ति-चेतना

आचार्य कुन्दकुन्द ने व्यक्ति-चेतना का बहुत सुंदर वर्णन किया है–

अहमेक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो, सव्वे एदे खयं णेमि॥

मैं अकेला हूं, निर्ममत्व हूं, ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण हूं। अपने इस स्वरूप में स्थित और लीन होकर ही आत्मा आश्रव-क्षय को प्राप्त होता है।

मैं अकेला हूं, बिल्कुल शुद्ध आत्मा हूं। मेरा कुछ भी नहीं है। धन, घर, परिवार, सगे-संबंधी, मित्र–कुछ भी मेरा नहीं है। इसका अर्थ है–बाह्य जगत का अस्वीकार। व्यवहार के जगत में यह बात अटपटी लगती है। सारे संबंध व्यवहार जगत में जुड़ते हैं। व्यक्ति सोचता है कि यह मेरा घर है, मां-बाप मेरे हैं, परिवार, धन-मकान, खेत-जमीन–ये सब मेरे हैं। समाज का मतलब है–मेरापन की भावना। समाज ममत्व की भावना से बनता है। जहां मेरापन की भावना समाप्त होती है, वहां व्यक्तिगत चेतना, अध्यात्म चेतना की सीमा प्रारंभ होती है।

व्यक्ति-चेतना का दूसरा रूप

सामुदायिक चेतना और व्यक्तिगत चेतना–ये दोनों विरोधी बातें हैं। एक है मेरापन से लिप्त जीवन और एक है मेरापन से मुक्त जीवन, जहां न मैं किसी का हूं और न कोई मेरा है, सारे संबंध समाप्त हो जाते हैं। अध्यात्म-चेतना या परमार्थ-चेतना से जीवन का व्यवहार नहीं चलता, किंतु इसके साथ यह सचाई भी जुड़ी हुई है कि यदि यह चेतना नहीं होती है तो जीवन का व्यवहार भी अच्छा नहीं चलता। व्यक्ति-चेतना का दूसरा रूप, जो समाज में विकसित हुआ है, वह है स्वार्थ-चेतना। व्यक्ति-चेतना के दो रूप बन गए। अध्यात्म-चेतना भी व्यक्ति-चेतना है और स्वार्थ-चेतना भी व्यक्ति-चेतना है। स्वार्थ चेतना वाला व्यक्ति केवल अपने लिए सोचता है। मैं सुखी रहूं, मेरा भला हो, मेरा कल्याण हो, मुझे सबकुछ मिले। अपनी सुविधा, अपना सुख, अपना स्वार्थ। यह स्वार्थ-चेतना की भावना परिवार में समस्याएं पैदा कर रही है। परिवार में जितनी कलह होती है, उसमें यह व्यक्तिपरक स्वार्थ-चेतना मुख्य भूमिका अदा करती है। पारिवारिक विघटन और कलह स्वार्थ के ही कारण होते हैं।

वर्तमान समस्या

आज की समस्या क्या है? परिवार की समस्या क्या है? माता-पिता प्रारंभ से बच्चों को स्वार्थ-चेतना की दिशा में ले जाते हैं। यही उपदेश दिया जाता है–कमाओ और घर भरो। परिग्रह, संग्रह तथा लोभ की वृत्ति पैदा होती है और इसका परिणाम है स्वार्थ-चेतना की प्रबलता। व्यक्ति-चेतना का जो प्रशस्त रूप है अध्यात्म-चेतना का विकास, उस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं करते। वे इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि परिवार को चलाना है, परिवार में रहना है तो बच्चे में अध्यात्म के संस्कार भी रहने चाहिए, उसमें आध्यात्मिक विकास भी होना चाहिए।

इस स्थिति में अध्यात्म-चेतना नहीं जागती, स्वार्थ-चेतना जागती है। वह ऐसी भ्रांति पैदा करती है कि व्यक्ति सर्वग्रासी-सर्वभक्षी बन जाता है, स्वयं ही सबकुछ हजम करने लग जाता है।

संदर्भ : संयुक्त परिवार का

हम संयुक्त परिवारों का विश्लेषण करें तो हमारे सामने यह सचाई

अधिक स्पष्ट होगी। संयुक्त परिवार में अनेक भाई एक साथ रहते हैं। उनमें कुछ वर्षों तक सबकुछ ठीक चलता है, किंतु बाद में स्वार्थ की चेतना इतनी गहरा जाती है कि प्रत्येक भाई सोचता है कि सारा धन-वैभव मेरे हाथ लग जाए तो अच्छा रहे। हमने देखा है कि जिन भाइयों में राम-लक्ष्मण-सा प्रेम था, वे भी स्वार्थ-चेतना में ऐसे लिप्त हो गए, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। ऐसा क्यों होता है? जब स्वार्थ-चेतना बहुत प्रबल बन जाती है तब यह स्थिति पैदा होती है।

मस्तिष्क सामुदायिक बने

सामुदायिक जीवन जीना है तो सामुदायिक चेतना का विकास जरूरी है। सामुदायिक चेतना का जागरण तब संभव है जब मस्तिष्क सामुदायिक बने। मस्तिष्क वैसा नहीं है तो सामुदायिक चेतना कभी नहीं जाग पाएगी। सामुदायिक चेतना को जगाना है तो व्यक्ति-चेतना का परिष्कार करना होगा। उसका परिष्कार अध्यात्म-चेतना के द्वारा ही संभव है। जब यह चेतना जाग जाएगी–'मेरा कुछ भी नहीं है', तब स्वार्थ की चेतना हावी नहीं होगी। प्रत्येक बालक में यह चेतना जगा दी जाए कि मैं अकेला हूं, मेरी आत्मा अकेली है, मेरी आत्मा ज्ञान-दर्शनमय है। मेरी आत्मा चेतनामय है। इसके अलावा मेरा कुछ भी नहीं है। न कुछ अपने साथ लाया हूं, न कुछ साथ में जाने वाला है। जो कुछ प्राप्त है, वह मात्र संयोग है।

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

जब अध्यात्म की चेतना जागती है, स्वार्थ परमार्थ में बदल जाता है। अध्यात्म-चेतना की जागृति का अर्थ है–'मैं अकेला हूं', इस सत्य की अनुभूति हो जाना। इस स्थिति में स्वार्थ-चेतना मंद होती चली जाती है। व्यक्ति के मन में यह भावना नहीं जागती कि दूसरे का हक लूटा जाए, दूसरे का हिस्सा हड़प लिया जाए।

शांतिपूर्ण जीवन का रहस्य

यदि हम दूसरे के साथ रहना चाहते हैं तो हमारी सबसे पहली आवश्यकता होगी–अध्यात्म की चेतना का विकास। 'हम अकेले हैं,' 'अकेले आए हैं,' 'अकेले जाना है'–हमारे भीतर यह संस्कार, यह भावना जितनी परिपक्व होगी,

हम उतना ही परिवार या समूह के साथ शांतिपूर्ण जीवन जी सकेंगे। समयसार का यह सूत्र शांतिपूर्ण सहवास का भी महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अध्यात्म की उपेक्षा कर, धर्म की उपेक्षा कर कोई भी व्यक्ति शांतिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। सामुदायिक जीवन के प्रयोग साम्यवादियों ने किए, किंतु वे विफल हो गए। यदि अध्यात्म साथ में होता तो साम्यवाद विफल नहीं होता। इस सचाई के आलोक में हम अध्यात्म का मूल्यांकन करें, अध्यात्ममय जीवन जीने का प्रयोग करें तो शांतिपूर्ण पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन का रहस्य हमारे हाथ में होगा।

२. शांतिपूर्ण सहवास कैसे हो?

हमारे जीवन के शब्दकोष का सबसे मूल्यवान शब्द है शांति। अगर उसे निकाल दिया जाए तो हमारा जीवन भी नहीं बचेगा। यदि बचेगा तो ऐसा बचेगा, जिसे कोई जीना भी पसंद नहीं करेगा। पैसे और रोटी का, घर और कपड़े का या अन्य पदार्थों का मूल्य तभी है जब मन में शांति है। शांति नहीं होती है तो सारे मूल्य मूल्यहीन बन जाते हैं। कुछ दिन पूर्व मैं एक परिवार से बातचीत कर रहा था। मां ने पुत्र की ओर इशारा करते हुए कहा–महाराज! मेरे इस लड़के को गुस्सा बहुत आता है, यह कैसे कम हो सकता है? जब आवेग आता है, बेकाबू हो जाता है, बेहाल हो जाता है। जब-जब इसे गुस्सा आता है, परिवार का पूरा वातावरण अशांत बन जाता है। जब आदमी आवेश करता है तब उसे स्वयं को अच्छा लग सकता है, पर दूसरे को वह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। शांति नहीं होती है तो सचमुच परिवार की स्थिति गड़बड़ा जाती है।

क्रोध : क्रोधी

दो शब्द हैं–क्रोध और क्रोधी। क्रोध एक आवेश है और क्रोधी है क्रोध करने वाला। जब क्रोध की विकट स्थिति आती है, उस समय व्यक्ति स्वयं क्रोधी बन जाता है। समयसार का एक सूत्र है–

कोहुवजुत्तो कोहो, माणुवजुत्तो य माणमेवादा।
माउवजुत्तो माया, लोहुवजुत्तो हवदि लोहो॥

क्रोध में उपयुक्त आत्मा क्रोध है, मान में उपयुक्त आत्मा मान है, माया में उपयुक्त आत्मा माया है, लोभ में उपयुक्त आत्मा लोभ है। जब आत्मा क्रोध में उपयुक्त होती है, स्वयं क्रोध बन जाती है। कभी-कभी क्रोध का ऐसा विकराल रूप सामने आता है कि व्यक्ति का पूरा शरीर क्रोधमय बन जाता है।

राजस्थान पुलिस एकेडेमी में प्रेक्षाध्यान शिविर चल रहा था। उसमें पुलिस के अनेक वरिष्ठ अधिकारी भाग ले रहे थे। उनमें एक सब-इंस्पेक्टर थे। वे क्रोध की समस्या से परेशान थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि यदि किसी को तनाव देखना हो तो इस अधिकारी का चेहरा देखो। तनाव की परिभाषा करने की जरूरत नहीं होगी। यह क्रोध की समस्या बहुत व्यापक है। मैं मानता हूं, यह एक जन्मजात-समस्या ही है।

तोड़ता है अहंकार

जैसे पारिवारिक विघटन में क्रोध का आवेश एक मुख्य कारक तत्त्व बनता है, वैसे ही अहंकार की भी पारिवारिक विघटन में कम भूमिका नहीं है। एक व्यक्ति का अहंकार समूचे परिवार की स्थिति को गड़बड़ा देता है। अहंकारी व्यक्ति दूसरों की बात को सुनता भी नहीं है, मानता भी नहीं है। वह अपनी अहंकार की वृत्ति को ही पोषित करता रहता है। उसके मन में जो जचता है, वह वही करता है। अहंकारी व्यक्ति दूसरे लोगों से यहां तक कहते सुने जाते हैं कि तुमने जितना अनाज खाया है, मैंने उतना नमक खा लिया है। मुझे क्या समझ रहा है? यह अहंकार का आवेश भयंकर होता है।

अहंकारी मनुष्य में पुरुषार्थ कम होता है, अकर्मण्यता ज्यादा होती है, निठल्लापन ज्यादा होता है। जब अहंकार जागता है, आदमी का पुरुषार्थ सो जाता है। क्रोध और अहंकार–ये दोनों प्रकार के आवेश व्यक्ति को बहुत गिराते हैं। आवेश कभी जोड़ता नहीं, तोड़ता है। अहंकारी आदमी अपने आपको ही श्रेष्ठ मानकर चलता है। वह कैसे जोड़ेगा? जहां मैं श्रेष्ठ हूं और दूसरे अपकृष्ट हैं, हीन हैं, वहां दूसरे लोग कैसे जुड़ेंगे?

अकड़ : पकड़

ये आवेश पारिवारिक और सामुदायिक जीवन जीने में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। सामुदायिक और अच्छा पारिवारिक जीवन वही व्यक्ति जी सकता है, जिसमें विनम्रता होती है, अहंकार का आवेश नहीं होता। जो व्यक्ति बड़ा होकर भी विनम्र होता है, उसी का जीवन शांतिमय होता है। राजस्थान अकड़न के लिए प्रसिद्ध रहा है, मारवाड़ भी अकड़न के लिए प्रसिद्ध रहा है। अकड़ और पकड़–दोनों यहां के लोगों के स्वभाव का अंग रहे हैं। जिस बात

को पकड़ लेते हैं, उसे छोड़ते नहीं। राजस्थानी का प्रसिद्ध दूहा है–

तुम आवो डग एक तो हम आएं डग अट्ठ।
तुम हमसे करड़े रहो तो हम हैं करड़े लट्ठ॥

लोभ का आवेश

तीसरा है लोभ का आवेश। सामुदायिक चेतना के न जागने में, पारिवारिक विघटन में लोभ का हाथ भी कम नहीं है। एक व्यक्ति के मन में लोभ जागता है, सबकुछ टूटना-बिखरना शुरू हो जाता है। लोभ के कारण आदमी सफलताओं से भी वंचित रह जाता है। दूसरे का आगे आना उसे पसंद नहीं आता। वह स्वयं ही सबकुछ पाना चाहता है। लोभ की वृत्ति अपना सेहरा सबसे ऊंचा रखना चाहती है। सामुदायिक चेतना के जागरण में लोभ का आवेश बहुत बड़ा विघ्न है। परिवार के विघटन में भी यह बहुत बड़ा कारण बनता है। पांच-दस आदमी एक साथ कार्य कर रहे हैं। काम ठीक चल रहा है, अच्छी कमाई है, पर एक आदमी के मन में एक सनक आती है, लोभ जागता है और वह छिपे-छिपे अपना घर भरना शुरू कर देता है, बिखराव शुरू हो जाता है, लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं। कोई लाभ में नहीं रहता। यह लोभ लाभ को भी गंवा देता है। जहां लोभ बढ़ता है, वहां लाभ की हानि शुरू हो जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने ठीक कहा था–अमेरिकन लोग कंपनी बनाकर काम करना जानते हैं। हिन्दुस्तानी लोग कंपनी बनाकर काम करना नहीं जानते। यही कारण है–हिन्दुस्तान के ऐसे बड़े-बड़े परिवार, जो बड़े औद्योगिक परिवार कहलाते थे, उनमें लड़ाइयां होने लगीं, विघटन और बिखराव शुरू हो गया। इसका कारण है–लोभ का आवेश, असीमित लोभ।

समाधान है अध्यात्म चेतना

जब तक हम तीन प्रकार के आवेश–क्रोध का आवेश, अहंकार का आवेश, लोभ का आवेश कम करना नहीं जानेंगे, तब तक सामुदायिक जीवन की बात सोची नहीं जा सकती। क्रोध के सामने क्रोध करेंगे तो क्या क्रोध कम हो जाएगा? जब दूध में उफान आता है, चूल्हे में एक लकड़ी और डाल दें तो क्या उफान मिट जाएगा? इसी प्रकार अहंकार के सामने अगर अहंकार आएगा तो वह कभी शांत नहीं होगा, वह अधिक फुफकारने लग जाएगा।

जैसे एक व्यक्ति लोभ करता है, वैसे ही दूसरा भी लोभ करने लग जाए तो क्या लोभ शांत हो पाएगा? कभी संभव नहीं है। शांत होने का एकमात्र उपाय है आध्यात्मिक चेतना का विकास। जैसे-जैसे अध्यात्म की चेतना जागेगी, आवेश शांत होते चले जाएंगे। एक ओर है आवेश की चेतना और दूसरी ओर है शांति की चेतना, उपशमन की चेतना। क्रोध का उपशमन, अहंकार का उपशमन और लोभ का उपशमन। उफनते दूध में पानी का छींटा दिया, उपशमन हो गया। यह पानी का छींटा है अध्यात्म की चेतना, धर्म की चेतना।

समस्या का कारण

कठिनाई यह है कि आज न तो बच्चों में धर्म और अध्यात्म की चेतना जगाने का कोई प्रयत्न किया जाता है और न ही बड़े लोगों में उसके जागरण का प्रयत्न होता है। हम जानते भी नहीं हैं कि इन आवेशों का शमन कैसे किया जाए? हम शमन की पद्धति नहीं जानते। धर्म भी चलता है तो मात्र रूढ़ि के रूप में चलता है। मंदिर-मस्जिद, स्थानक आदि बने हुए हैं, उनमें चले जाओ और रूढ़ क्रियाकांड कर लो, किंतु अपनी वृत्तियों को कैसे बदला जाए? कैसे इन आवेशों को कम किया जाए? इनका उपाय क्या है? यह बात न बताई जाती है और न ही इस बात को जानने का प्रयत्न किया जाता है। धर्म करते-करते एक व्यक्ति ५०-६० वर्ष का हो जाता है, जब उससे पूछा जाता है–भाई! क्या बदलाव आया? उसका उत्तर होता है–पहले युवक था तब गुस्सा कम आता था। अब बूढ़ा हो गया हूं, नियंत्रण की शक्ति भी नहीं रही है, ज्यादा गुस्सा आता है। मैंने देखा है कि बूढ़े आदमियों में लोभ की वृत्ति भी बहुत होती है। वे सोचते हैं कि जितना बटोर सकें, बटोर लें, फिर तो मरना ही है। जैसे-जैसे नाड़ी-तंत्र शिथिल होता है, नियंत्रण की क्षमता कम होती चली जाती है, आवेश और ज्यादा बढ़ते चले जाते हैं।

समाधान है दीर्घश्वास का प्रयोग

हम इन्हें कम करने की राह खोजें। यदि हमारे पास चाबियां हैं तो हम ताला खोल सकते हैं। दीर्घश्वास का प्रयोग एक समाधान है। हम लंबा श्वास लें, आवेश शांत होगा। दीर्घश्वास के प्रयोग से क्रोध, अहंकार और लोभ शांत होंगे। क्रोध तभी आता है जब आदमी छोटा श्वास लेता है या जब क्रोध आता

है तो वह श्वास को छोटा बना देता है। श्वास की संख्या, जो साधारण स्थिति में १५-१६ होनी चाहिए, क्रोध के हालात में बढ़ती चली जाती है, वह संख्या एक सेकंड में ३०-५० तक चली जाती है। आवेश आता है, श्वास की संख्या बढ़ जाती है। आवेश शांत होता है, श्वास की संख्या घट जाती है।

जब हम लंबे श्वास लेंगे, हमारी चेतना श्वास के साथ जुड़ जाएगी। इसका अर्थ है–चेतना क्रोध के साथ नहीं जुड़ेगी, क्रोध का उपशमन हो जाएगा। चेतना अहंकार के साथ नहीं जुड़ेगी, अहंकार का उपशमन हो जाएगा, चेतना लोभ के साथ नहीं जुड़ेगी, लोभ का उपशमन हो जाएगा। जब-जब हमारी चेतना इन आवेशों के साथ जुड़ती है, तब-तब हमारी चेतना स्वयं क्रोध बन जाती है, अहंकार बन जाती है, लोभ बन जाती है।

विश्लेषण करें

एक उपाय है–विश्लेषण। संश्लेषण नहीं, विश्लेषण करें। क्रोध और चेतना को अलग-अलग कर दें। मिट्टी को अलग कर दें, सोने को अलग कर दें। छाछ को अलग कर दें, मक्खन को अलग कर दें। यदि हम यह विश्लेषण निरंतर करते रहें तो आवेश शांत हो सकते हैं। इस प्रक्रिया में दीर्घश्वास का वही काम है, जो काम बिलौना करने का है। यदि छाछ को अलग करना है और नवनीत को अलग करना है तो बिलौने की प्रक्रिया अपनानी होगी। जैसे-जैसे मथानी (झेरणा) चलेगी, मक्खन ऊपर आता चला जाएगा, छाछ नीचे बैठती चली जाएगी। यही काम दीर्घश्वास की प्रक्रिया का है। जैसे-जैसे दीर्घश्वास का प्रयोग चलेगा, आवेश नीचे बैठते चले जाएंगे, चेतना ऊपर आती चली जाएगी। दीर्घश्वास का प्रयोग छोटा-सा प्रयोग लग सकता है, किंतु यह चेतना के रूपांतरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। चेतना के परिष्कार का एक शक्तिशाली प्रयोग है। जो व्यक्ति दीर्घश्वास को अपना आलंबन बना लेता है, वह अनेक समस्याओं का पार पा जाता है।

महत्त्वपूर्ण है मन की शक्ति

कठिनाई यह है कि लोग श्वास लेना ही नहीं जानते। श्वास लेना सिखाया ही नहीं जाता। इस स्थिति में शांतिपूर्ण सहवास कैसे संभव है? इसके लिए जरूरी है प्रारंभ से ही बालकों को प्रशिक्षित करने का अभियान चले। हम इस

सचाई को समझें। जैसे-जैसे यह सचाई जीवन में आएगी, वैसे-वैसे जीवन का मार्ग सरल और निर्मल बनता चला जाएगा, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की बात अपने आप फलित होगी। हमारे जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है मन की शांति। शांति नहीं होती है तो पूरा जीवन रूखा-सूखा और विफल-सा लगता है। हम जीवन को सिर्फ पैसे के साथ ही न जोड़ें। यदि शांति का ध्येय सामने रहा तो शांतिपूर्ण सहवास होगा, पारिवारिक जीवन सुखद होगा, आनंदमय होगा और परिवार में कैसे रहना चाहिए, समाज में कैसे जीना चाहिए, इसकी कला अपने आप हाथ में आ जाएगी।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में अध्यात्म की चेतना के जो महत्त्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध हैं, वे आत्मिक शांति के साथ-साथ पारिवारिक शांति के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनका उपयोग करने वाला शांतिपूर्ण सहवास का मंत्र उपलब्ध कर लेता है।

३. सामंजस्य कैसे बढ़ाएं

पारिवारिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है सामंजस्य। सामंजस्य के बिना साथ में रहा नहीं जा सकता और साथ रहने का कोई विशेष अर्थ नहीं रह जाता। सामंजस्य नहीं होता है तो नया चूल्हा भी जलाना पड़ता है, घर में दीवारें भी खींचनी पड़ जाती हैं। यह सब परस्परता के अभाव में होता है।

सामंजस्य की बाधा

सामंजस्य का बहुत बड़ा विघ्न है–आग्रह चेतना। व्यक्ति जिस बात को पकड़ लेता है, उसे छोड़ना नहीं चाहता। नासमझी और आग्रह–दोनों साथ-साथ चलते हैं। आग्रह का मतलब है बचकानापन। एक बालक में जिद्द ज्यादा होती है। बालहठ और त्रियाहठ प्रसिद्ध हैं। बालक को यह पता नहीं होता कि इस बात में लाभ होगा या हानि, किंतु वह जिस बात को पकड़ लेता है, उसे दृढ़ता से पकड़ लेता है, छोड़ता नहीं। यह आग्रह की वृत्ति सामंजस्य में बहुत बाधा डालती है। एक परिवार में दस-बीस लोग साथ रहते हैं। उनमें कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनमें पकड़ मजबूत होती है। वे अपनी पकड़ को छोड़ना नहीं चाहते। इस आग्रही मनोवृत्ति से सामंजस्य में बाधा पैदा हो जाती है।

बाधा है मिथ्या दृष्टिकोण

साधना के क्षेत्र में सबसे पहली बाधा है–मिथ्या दृष्टिकोण। उसके दो प्रकार होते हैं–आभिग्रहिक और अनाभिग्रहिक। एक व्यक्ति यह जानता है कि यह बात सही नहीं है, पर वह आग्रहपूर्वक उस बात को पकड़ लेता है, उसे छोड़ता नहीं है। यह आभिग्रहिकी मनोवृत्ति है। एक पकड़ होती है अज्ञान के कारण। एक व्यक्ति यह नहीं जानता कि ऐसा करना अच्छा नहीं है, इसलिए वह करता जाता है। यह अज्ञानजनित आग्रह है, अनाभिग्रहिकी मनोवृत्ति है। बहुत लोगों को यह पता नहीं होता कि चीनी खाने से क्या नुकसान होता है,

इसलिए वे चीनी खाते हैं। ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें चीनी खाने के परिणामों का ज्ञान है, फिर भी वे चीनी खा रहे हैं। वे जानते हैं–चीनी खाने से अम्लता बढ़ेगी और भी अनेक हानियां होंगी, फिर भी वे चीनी छोड़ना नहीं चाहते। यह है आग्रह-चेतना। सब लोग जानते हैं कि जर्दा या तंबाकू खाना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद नहीं है। शरीर और मन के लिए नुकसानदेह है, फिर भी अनेक व्यक्ति जर्दा और तंबाकू का व्यसन पाले हुए हैं।

आग्रह और समझ

आग्रह की चेतना बहुत भयंकर होती है। व्यक्ति इसमें उलझ जाता है। यह सचाई है कि सबमें समझ समान नहीं होती। सबका ज्ञान समान नहीं होता। सबमें चिंतनधारा समान विकसित नहीं होती। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनका मस्तिष्क अविकसित होता है, स्वल्प विकसित होता है। ऐसी स्थिति में जिद्द का होना, जिद्दी स्वभाव का होना स्वाभाविक है। यह प्रायः देखा गया है कि जो व्यक्ति जितना ज्यादा नासमझ है, जितना ज्यादा चिंतन-शून्य है, जितना ज्यादा अज्ञानी है, उसमें उतना ही ज्यादा आग्रह होता है, पकड़ और जिद्द होती है। जैसे-जैसे आदमी समझदार होता है, उसमें बुद्धि और चिंतन का विकास होता है, समझने की क्षमता बढ़ती है, वैसे-वैसे आग्रह की वृत्ति छूटती है, अनाग्रह का भाव विकसित होता है।

अनाग्रह : वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास

सत्य की खोज का सबसे बड़ा साधन है–अनाग्रह। जिसमें अनाग्रह की वृत्ति नहीं होती, वह सत्य की खोज में कभी आगे नहीं बढ़ सकता। एक वैज्ञानिक कभी भी किसी एक बात को पकड़कर या मानकर नहीं बैठ जाता। वह एक बार उस बात को आधार अवश्य बनाता है, उसके बाद अनुसंधान करता है, परीक्षण करता है और उसका जो निष्कर्ष आता है, उसे बिना किसी संकोच के स्वीकार कर लेता है।

एक वैज्ञानिक कभी यह नहीं कहता कि मेरी यह मान्यता है, मैं इसे कभी नहीं छोड़ूंगा। उसमें अपनी बात की पकड़ नहीं होती, आग्रह नहीं होता। इसका कारण है वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास। आज धार्मिक व्यक्ति में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की बहुत जरूरत है। धार्मिक कहलाने वाले लोग भी ऐसे हैं, जो एक बात को पकड़ लेते हैं तो पकड़ ही लेते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते। वे नई बात को स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं होते।

आग्रह की समस्या

सत्य कितना अनंत और कितना विराट होता है! जैन दर्शन की दृष्टि से विचार करें तो एक परमाणु के अनंत पर्याय होते हैं। वर्णमाला का प्रथम अक्षर है 'अ'। यदि पूछा जाए कि 'अ' के कितने पर्याय होते हैं? जैन दर्शन के अनुसार इसका उत्तर होगा–एक 'अ' के अनंत पर्याय होते हैं, अनंत अवस्थाएं होती हैं। हम कितने पर्यायों को जानते हैं? हम दो-चार या दस-बीस पर्यायों को जान लेते हैं और सूंठ के गांठिए को रखकर ही पंसारी बनने का आग्रह पाल लेते हैं। हम थोड़ी-सी बातों को जानकर धर्म के दावेदार या ठेकेदार बन जाते हैं। यह मान लेते हैं कि यही सचाई है, अन्य सब मिथ्या है।

हमारा यह अज्ञान और आग्रह सबसे बड़ा विघटनकारी तत्त्व है। सामाजिक बिखराव का भी यह बहुत बड़ा कारण है। परिवार और समाज में आग्रह बहुत चलता है। जो बात पकड़ ली जाती है, उसके संदर्भ में लोग दूसरी बात सुनने को तैयार ही नहीं होते। यह आग्रह की समस्या है।

अर्थहीन रूढ़िवाद क्यों?

इस वैज्ञानिक युग में भी अनेक रूढ़ियां चल रही हैं। इन सारी रूढ़ियों के चलने का कारण क्या है? रूढ़ि का अपना एक अर्थ होता है, अपने समय की एक उपयोगिता होती है, किंतु देश-काल के परिवर्तित हो जाने पर भी उस लीक को पीटते रहना कहां तक संगत हो सकता है? जिस परंपरा या प्रणाली की उपयोगिता समाप्त हो गई, क्या उससे चिपके रहना उचित है? अर्थहीन परंपराओं से चिपके रहने का अर्थ है रूढ़ि। इस अर्थहीन रूढ़िवाद से काफी समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

व्यक्ति रूढ़ियों से इतना जकड़ा हुआ है कि उसका चिंतन सुलझा हुआ नहीं रहता। वह यह नहीं सोच पाता कि देश काल बदल जाने पर परंपरा को भी बदल देना चाहिए। इसका कारण है आग्रह। आज बहुत सारी ऐसी स्थितियां हमारे सामने हैं। मृत्युभोज की परंपरा, दहेज का प्रचलन कभी रहा होगा। किसी समय इसकी उपयोगिता को माना गया होगा, पर आज इन्हें मात्र रूढ़ि ही माना जाता है, लेकिन पकड़ इतनी है कि समाज के मुखिया लोग भी इसे बदलना नहीं चाहते, छोड़ना नहीं चाहते।

संदर्भ आत्मा का

धर्म के क्षेत्र में भी बहुत सारे आग्रह पल रहे हैं। एक विचार को पकड़ लेते

हैं तो उसे बदलना ही नहीं चाहते। हम आत्मा का संदर्भ लें। प्रत्येक आस्तिक आदमी आत्मा को स्वीकार करता है, पर उसके बारे में हमारी धारणाएं समान नहीं हैं। एक दर्शन कहता है–आत्मा सुख-दुःख की कर्ता है। एक दर्शन का अभिमत है–आत्मा बिल्कुल निर्लिप्त है, शुद्ध, बुद्ध और अकर्ता है। समयसार में ऐसे अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं, जिनसे यह पता चलता है कि आत्मा के संदर्भ में अनेक प्रकार के विचार एवं दृष्टिकोण रहे हैं। इस आग्रह-चेतना की ओर इशारा करने वाली कुछेक गाथाएं हैं–

तम्हा ण कोवि जीवो वघादओ अत्थि अम्ह उवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं घादेदि इदि भणिदं॥
एवं संखुवएसं जे दु परूवेंति एरिसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वदि, अप्पा य अकारगा सव्वे॥
अहवा मण्णसि मज्झं, अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि।
एसो मिच्छसहावो, तुम्ह एयं मुणंतस्स॥

कोई भी जीव उपघातक नहीं है, क्योंकि कर्म ही कर्म को मारता है। इस प्रकार सांख्य मत का उपदेश जो श्रमण प्ररूपित करते हैं, उनके मत में प्रकृति ही कर्ता है, आत्मा अकर्ता है। इसीलिए वे उनका यह मंतव्य रहा कि यदि यह मानते हो कि मेरी आत्मा अपनी आत्मा की कर्ता है तो ऐसा जानने वाले व्यक्ति का यह मिथ्या स्वभाव है।

सामंजस्य का सूत्र

एक ओर आत्मा को अकर्ता माना जा रहा है तो दूसरी ओर उसे सुख-दुःख का कर्ता माना जा रहा है। अपनी-अपनी पकड़ और अपना-अपना–आग्रह। अगर सामंजस्य बिठाना है तो आग्रह को छोड़ना होगा।

आत्मा कर्ता भी है, अकर्ता भी है।

वह अपने भावों की कर्ता है, परभाव की कर्ता नहीं है।

जं भाव सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं, सो तस्स दु वेदगो अप्पा॥

आत्मा कर्ता है, यह इस दृष्टि से सही है कि आत्मा अपने शुभ-अशुभ भाव की कर्ता है। आत्मा अकर्ता है, यह भी सही है, क्योंकि वह पर-भाव

की कर्ता नहीं है, वह किसी बाहरी वस्तु का निर्माण नहीं करता। यदि इस प्रकार कर्ता और अकर्ता–दोनों का सामंजस्य बिठा लें तो समस्या सुलझ जाए, आग्रह की बात समाप्त हो जाए।

आत्मा : शुद्ध या अशुद्ध

एक प्रश्न है–आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध? बद्ध है या मुक्त? इस प्रश्न के संदर्भ में एक प्रकार का दृष्टिकोण नहीं है। कुछ मानते हैं कि आत्मा शुद्ध, बुद्ध और निर्लिप्त है और कुछ मानते हैं कि आत्मा शुद्ध नहीं है, बंधी हुई है। हम सामंजस्य का सूत्र खोजें।

आत्मा शुद्ध, बुद्ध और निर्लिप्त है, सुख दुःख के बंधन से मुक्त है, लेकिन वह तब है जब आत्मा परमात्मा बन जाए। आत्मा अपने स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध हो सकती है, किंतु अभी शुद्ध नहीं है, बंधन से बंधी हुई है। कर्म का बंधन, मोह का बंधन, मिथ्यात्व का बंधन–इन बंधनों से बंधी आत्मा शुद्ध नहीं है–

अण्णाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अन्नाणं अविरदिभावो य णादव्वो॥
एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेहि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता॥

गंगा का पानी निर्मल और पवित्र है, किंतु उसमें फैक्ट्रियों का गंदा कचरा मिल गया। क्या वह पानी निर्मल होगा? जब तक उस पानी को रिफाइन नहीं करेंगे, तब तक वह पानी निर्मल नहीं हो पाएगा। हम यह मान लें कि हमारी आत्मा स्वरूपतः शुद्ध है, किंतु वह वर्तमान में शुद्ध नहीं है। उसमें मोह और अज्ञान का गंदा पानी मिला हुआ है।

अनाग्रह चेतना

सामंजस्य का सूत्र है अनाग्रह। पकड़ न हो तो सामंजस्य संभव बन सकता है। हम इस भाषा में सोचें कि निश्चय नय की दृष्टि में आत्मा निर्मल है, शुद्ध है, किंतु व्यवहार नय की दृष्टि से आत्मा निर्मल नहीं है। यदि आत्मा निर्मल हो तो व्यक्ति का सारा निर्णय ही दूसरा होगा। विकृत दृष्टि, विकृत चिंतन और विकृत निर्णय पवित्र आत्मा से नहीं आता, वह अपवित्र आत्मा से ही आता है। जहां अपवित्रता या मलिनता होती है, वहां निर्णय ही दूसरा होता

है। जहां लोभ आता है, क्रोध आता है, वहां चेतना मलिन बन जाती है। जहां चेतना मलिन बनेगी, वहां निर्णय और निष्कर्ष बदल जाएंगे। समस्या यह है कि क्रोध-चेतना, लोभ-चेतना आदि-आदि चेतनाएं जागती रहती हैं, फलतः आत्मा का चिंतन, निर्णय, निष्कर्ष–सबकुछ गलत और विकृत होते चले जाते हैं। हम इस बात को एकांगी दृष्टिकोण से स्वीकार न करें कि आत्मा शुद्ध ही है या आत्मा अशुद्ध ही है। एकांगी आग्रह को छोड़कर ही सामंजस्य बिठाया जा सकता है। यह अनाग्रह की चेतना है, सामंजस्य की चेतना है कि स्वरूप की दृष्टि से आत्मा शुद्ध है, किंतु उसे वर्तमान अवस्था की दृष्टि से शुद्ध नहीं माना जा सकता।

जीवन व्यवहार : सामंजस्य

हम अपने जीवन-व्यवहार में सामंजस्य की बात को महत्त्व नहीं देंगे तो शांतिपूर्ण सहवास की बात संभव नहीं बन पाएगी। यदि साथ में रहना है, सह-चिंतन, सह-चित्त, सह-वास या सह-अस्तित्व चाहते हैं तो सामंजस्य का सूत्र अपनाना ही होगा। आग्रह को त्यागे बिना सामंजस्य संभव नहीं है। आग्रह-चेतना सामंजस्य में बहुत बड़ी बाधा है। हम अपने ज्ञान, चिंतन और समझ की शक्ति को बढ़ाएं, दूसरे की बात को समझने का प्रयत्न करें और यह मानकर चलें कि सत्य अनंत है, जितना मैंने जाना है, वह उतना ही नहीं है। हम उसकी व्यापकता को स्वीकार करें, पर उसकी सीमा बांधने का प्रयास न करें।

आग्रह-चेतना निर्बल बने

सत्य सीमातीत है, उसे सीमित करने का प्रयत्न आग्रह को जन्म देगा। इस सिद्धांत को समझकर पकड़ की रस्सी को ढीला करें। ऐसा तो नहीं माना जा सकता कि आग्रह की गांठ एक साथ खुल जाएगी, किंतु इससे आग्रह-चेतना कुछ निर्बल बन जाएगी, आग्रह की गांठ धीरे-धीरे खुलने लगेगी। जहां आग्रह नहीं है, वहां समस्या नहीं है। जहां आग्रह से मुक्ति है, वहां समस्या का समाधान है। हम आग्रह को छोड़ें, जीवन में अनाग्रह की वृत्ति का विकास करें तो सामंजस्य का सूत्र उपलब्ध हो जाएगा। आचार्य कुन्दकुन्द ने अध्यात्म के क्षेत्र में सामंजस्य का जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, वह जीवन-व्यवहार और शांतिपूर्ण सहवास के संदर्भ में भी बहुत मूल्यवान है।

४. जरूरी है परिष्कार

मनुष्य कोई ईंट, कापी या पेन नहीं है, जिसे एक सांचे में ढालकर हजारों एक जैसे बनाए जा सकें। जड़ वस्तु का निर्माण यंत्र के द्वारा होता है। मनुष्य चेतनावान प्राणी है। उसका निर्माण यंत्र द्वारा नहीं किया जा सकता। जहां चेतना है, वहां चिंतन होता है, स्मृति और कल्पना होती हैं, कुछ नया करने की भावना होती है। जहां ये सब होते हैं, वहां एकरूपता का होना कठिन ही नहीं, असंभव है। सामूहिक जीवन के लिए यह एक बड़ी समस्या है।

प्रश्न है रुचि का

सबसे पहली समस्या है रुचि का भेद। एक परिवार में दस आदमी एक साथ रहते हैं। उन सबकी अपनी-अपनी रुचि होती है। एक व्यक्ति कुछ चाहता है, दूसरा व्यक्ति कुछ और चाहता है। इसका कारण रुचि-भेद का होना है। मनुष्य के भीतर रुचि होती है, एक प्रीति और आकर्षण होता है। बहुत महत्त्वपूर्ण है रुचि का प्रश्न। अधिकांश व्यक्तियों की रुचि का संबंध एक दिशा से ही जुड़ा हुआ रहता है। इस संसार में जीने वाले व्यक्ति की रुचि काम-भोग में अधिक है। उसकी सारी रुचियों का केन्द्र-बिंदु यही है। कामभोग से संबंधित कथा से सब लोग परिचित हैं, उसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति की रुचि है, लेकिन काम-भोग की कथा से परे जाने की कथा करने वाले विरल हैं। बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो काम-भोग से परे की चेतना में जीने की बात करते हैं–

सुदपरिचिदाणुभूदा, सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥

रुचि भेद की समस्या

हम पारिवारिक जीवन को देखें। उसमें जितने रुचि-भेद सामने आते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में काम या वासना का भाव प्रबल होता है। रुचि-भेद को

लेकर पारिवारिक जीवन में बहुत बार झगड़े हो जाते हैं। एक प्रश्न है भोजन का। सबकी भोजन की रुचि भी एक प्रकार की नहीं होती। कोई मिठाई खाना पसंद करता है, कोई नमकीन खाना पसंद करता है और किसी की रुचि होती है खट्टा खाने की। यह रुचि-भेद बड़ा विचित्र होता है।

एक व्यक्ति की रुचि है खूब गहने-आभूषण पहनने की, प्रदर्शन करने की। वह अपने आपको दिखाना चाहता है। बहुत बार यह प्रदर्शन की रुचि विकट समस्या पैदा कर देती है। आज सामाजिक जीवन में जो रूढ़ियां चल रही हैं, उनकी पृष्ठभूमि में प्रदर्शन की रुचि है। आदमी के पास सबकुछ नहीं है, फिर भी वह अपने आपको बहुत कुछ दिखाना चाहता है। तर्कशास्त्र का एक न्याय है–**याचितमंडनकम्।** एक व्यक्ति के पास गहने नहीं हैं। वह दूसरे से मांगकर पहनेगा और यह दिखाने की कोशिश करेगा कि मेरे पास इतने गहने हैं।

समाधान-सूत्र

यह रुचि-भेद की स्थिति है। जो इस स्थिति में सामंजस्य करना नहीं जानता, वह सामूहिक जीवन में कलह, लड़ाई और झगड़े से बच नहीं पाता। बहुत बड़ी कला है रुचि का परिष्कार करना। आज टी.वी. के प्रति अत्यंत रुचि बढ़ती जा रही है। आजकल के बच्चों का टी.वी. के प्रति जितना आकर्षण है, उतना किसी दूसरे के प्रति नहीं है। अगर इस समस्या पर ध्यान नहीं दिया गया तो एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण हो जाएगा, जिसमें दायित्व की भावना नहीं होगी, कर्तव्य-चेतना नहीं होगी, समयोचित बोध नहीं रह पाएगा। यह भी एक तथ्य है कि बच्चों को जबरदस्ती रोकना भी मुश्किल है। इसका समाधान यही है कि हम बच्चों की रुचि का परिष्कार करें।

जरूरी है परिष्कार

आज ब्रिटेन, जर्मनी, अमेरिका आदि समृद्ध देशों में टी.वी. के विरुद्ध आंदोलन चल रहा है। बच्चों की आंखों के कमजोर होने का प्रतिशत बढ़ा और एक आंदोलन शुरू हो गया। कहा गया–इसे बंद करो। इससे आंखें खराब होती हैं। इससे जो किरणें निकलती हैं, वे आस-पास फैल जाती हैं। उनका स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

रुचि का नियंत्रण और परिष्कार होना जरूरी है। जहां सामाजिक एवं पारिवारिक सहवास का प्रश्न है, वहां रुचि को लड़कर नहीं बदला जा सकता।

उसके लिए ऐसा उपाय खोजना चाहिए, जिससे रुचि का परिष्कार भी हो जाए और लड़ाई का प्रश्न भी न आए।

दूसरी समस्या है विचार-भेद की। सबके विचार एक समान नहीं होते। जैसे रुचि-भेद सहवास की एक समस्या है, वैसे ही विचार-भेद भी सहवास की एक बड़ी समस्या है। सबके सोचने का तरीका अलग-अलग होता है। व्यक्ति सोचता है–जिनके साथ विचार नहीं मिलते, उनके साथ कैसे रहें? इसके समाधान के लिए प्रशिक्षण जरूरी है। हम इस सचाई को समझें कि विचार-भेद और विरोध होना एक बात नहीं है। थोड़ा-सा विचार-भेद होता है, व्यक्ति यह मान लेता है कि अमुक व्यक्ति मेरा दुश्मन है। वस्तुतः यह मानने की जरूरत नहीं है। विचार-भेद शत्रुता का नहीं, किंतु स्वतंत्रता का लक्षण है।

विकास का घटक तत्त्व

विचार की भिन्नता मनुष्य की स्वतंत्रता का सबसे बड़ा लक्षण है। अगर सब लोग एक ही तरह से सोचते तो मानव समाज बहुत बौना हो जाता। विभिन्न ढंग से सोचना ही समाज-विकास का समाधान है। चिंतन का भेद समाज-विकास का मुख्य घटक रहा है। सब एक ही ढंग से सोचते तो यह नानात्व नहीं होता। जहां नानात्व नहीं होता, वहां सौंदर्य नहीं होता। सामाजिक सौंदर्य की अभिवृद्धि में यह विचार-भेद बहुत काम करता है। सत्यं शिवं सुन्दरम् की बात बहुत कही जाती है। केवल सत्य होना ही पर्याप्त नहीं है, कल्याणकारी भी होना चाहिए। ऐसा होता है तभी सौंदर्य प्रकट होता है।

जीवित समाज का लक्षण

जहां एक ओर विचार-भेद से सौंदर्य प्रस्फुटित होता है, वहीं दूसरी ओर विचार-भेद से लड़ाइयां भी बहुत होती हैं। व्यक्ति अपने से भिन्न विचार रखने वाले व्यक्ति को सह नहीं पाता। इस शताब्दी में कुछ ऐसे अधिनायक और तानाशाह हुए हैं, जिन्होंने अपने से भिन्न विचार रखने वाले व्यक्ति को कभी सहन नहीं किया। जो व्यक्ति भिन्न विचार रखता, उसका जीवन ही समाप्त कर दिया जाता। पारिवारिक और सामाजिक जीवन की मुख्य समस्या है–विचार-भेद को सहन न करना। विचार में भेद होना स्वाभाविक है तो वैचारिक स्वतंत्रता का होना बहुत आवश्यक भी है। विचारों को रौंदना, दबाना या कुचलना–यह मुर्दा समाज का लक्षण है। विचार-भेद के प्रति सहिष्णु होना,

जीवंत समाज का लक्षण है, अध्यात्म चेतना के जागरण का प्रतीक है। जब तक अध्यात्म-चेतना नहीं जागती है, तब तक आदमी अपने से भिन्न विचार को सहन नहीं कर सकता। वह भिन्न विचार रखने वाले व्यक्ति को विरोधी मानकर शत्रु घोषित कर देता है। जिस व्यक्ति में थोड़ी-सी भी नैतिक या आध्यात्मिक चेतना जागृत है, वह विचार-भेद के कारण किसी को विरोधी नहीं मानेगा।

असहिष्णुता का युग

सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है सहिष्णुता। यदि सहिष्णुता है तो रुचि-भेद को सहा जाएगा, उसका परिष्कार किया जाएगा, किंतु उसके कारण शत्रुता का भाव पैदा नहीं होगा। यदि सहिष्णुता की चेतना जागृत है तो विचार-भेद को भी सह लिया जाएगा। शांत सहवास का सफल सूत्र है सहिष्णुता। वर्तमान युग की सबसे बड़ी समस्या है असहिष्णुता। आज के युग को एक शब्द में परिभाषित किया जाए तो वह है असहिष्णुता का युग।

व्यक्ति सहना जानता ही नहीं है। क्या अतीत में कभी ऐसा हुआ है कि एक विद्यार्थी अध्यापक को पीटे? आचार्य या प्रिंसिपल का घेराव कर उसे कमरे में बंद कर दे? क्या इतिहास में कहीं ऐसा प्रसंग आया है? अतीत में ऐसा कुछ नहीं होता था, किंतु वर्तमान में सबकुछ हो रहा है। उस समय ऐसे संस्कार थे कि गुरु को सहन करोगे तो विद्या बढ़ेगी। यह धारणा थी–**विद्या ददाति विनयम्।** आज स्थिति यह है कि यदि मन के प्रतिकूल पेपर भी आ जाता है तो विद्यार्थी शिक्षक की पिटाई कर देते हैं।

बदल गई है जीवन प्रणाली

युग कितना बदल गया! यदि हम इस बदले हुए युग में केवल लड़ने की ही बात करें तो समाज का भला नहीं होगा। हमें परिष्कार का सूत्र अपनाना होगा या कोई नया मार्ग खोजना होगा। हम यह नहीं कहते कि आज का विद्यार्थी बहुत बुरा हो गया है, लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि आज विद्यार्थी को प्रारंभ से ही अच्छे संस्कार नहीं दिए जा रहे हैं।

जीवन की सारी प्रणाली बदल गई है। ऐसा लगता है कि विद्यार्थी को शुरू से ही उद्दंडता के संस्कार दिए जा रहे हैं। उन्हें बार-बार उद्दंडता और

उच्छृंखलता के स्वर ही सुनाई देते हैं और जब प्रसंग आता है तब वे उन्हीं का उपयोग कर लेते हैं। यदि रुचि-परिष्कार की बात, मस्तिष्कीय प्रशिक्षण की बात प्रारंभ से ही चलती तो आदमी इतना असहिष्णु नहीं होता, प्रत्युत् उसमें सहिष्णुता की चेतना जाग जाती।

प्रश्न है उद्देश्य का

सहिष्णुता का विकास संभव है, किंतु वह संभव बनता है प्रशिक्षण के द्वारा। सहिष्णुता के विकास का एक साधन है–कायसिद्धि। यदि हम आसन आदि के द्वारा शरीर को साधने का प्रशिक्षण लें तो असहिष्णुता की समस्या से बच सकते हैं। एक बच्चा असहिष्णु है, इसका कारण वह ही नहीं है, उसके अभिभावक भी हैं। यदि बच्चे को प्रारंभ से ही सहिष्णुता की शिक्षा दी जाए, शरीर को साधने का उपक्रम सिखाया जाए तो वह कभी असहिष्णु नहीं बनेगा। अभिभावक सोचते हैं कि लड़के को अच्छी तरह पढ़ा दें ताकि वह अच्छी कमाई कर सके, लेकिन वे यह नहीं सोचते कि क्या पैसा कमाना ही जीवन का उद्देश्य है? वह वरदान नहीं, अभिशाप भी बन सकता है। जीवन का निर्माण नहीं किया, जीवन जीने की कला नहीं सिखाई तो मानना चाहिए–बंदर के हाथ में तलवार थमा दी गई है। जो व्यक्ति अपने बच्चे के जीवन-निर्माण पर ध्यान नहीं देता और उसे जीविका की तलवार पकड़ा देता है तो कभी-कभी वह तलवार उसके गले पर भी चल जाती है।

जीवन-निर्माण का सूत्र

हम ध्यान दें जीवन-निर्माण पर। जीवन-निर्माण का सूत्र है ध्यान। ध्यान का प्रयोग जीविका के लिए नहीं है, जीवन-निर्माण के लिए है। जब जीवन का निर्माण होता है तब जीविका की बात भी पीछे नहीं रहती। ध्यान के द्वारा दक्षता बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है, स्मृति बढ़ती है, चातुर्य आता है, किंतु इन सबसे महत्त्वपूर्ण जो उपलब्धि ध्यान के द्वारा प्राप्त होती है, वह है जीवन-निर्माण। जीवन का निर्माण होता है तो शांत सहवास की समस्याएं, आग्रह और रुचि-भेद की समस्याएं, विचार-भेद और विरोधाभास की समस्याएं, निषेधात्मक भाव की समस्याएं समाहित हो जाती हैं। ध्यान से जागरण होता है विधायक विचार का, मैत्री भाव का, सबके प्रति सम्मान की भावना का और सामंजस्यपूर्ण चेतना का। जब चेतना की यह स्थिति बनती है तब पारिवारिक

और सामाजिक जीवन बहुत सुखद बन जाता है। इन सबकी उपलब्धि के लिए जरूरी है–ध्यान का प्रशिक्षण। ध्यान आध्यात्मिक जीवन के लिए ही नहीं, पारिवारिक और सामाजिक जीवन के लिए भी अनिवार्य है। यह एक सचाई है। इस सचाई को समझने वाला प्रत्येक व्यक्ति परिष्कार के सूत्र खोजेगा, अपने जीवन-निर्माण पर ध्यान देगा। जो परिष्कार की बात सोचता है, वह अभय का मंत्र सीख लेता है। रुचि परिष्कार का सूत्र है–कामना का परिष्कार। काम-परिष्कार होने पर ही रुचि-परिष्कार का सूत्र हस्तगत हो सकता है तथा रुचि-भेद से उत्पन्न विग्रह को समाप्त किया जा सकता है।

५. पारिवारिक जीवन और प्रबंधन

एक समय था, जब यौगलिक युग था। एक युग्म-जोड़ा जन्म लेता और उसी के आधार पर सारी व्यवस्था चलती। समाज नहीं बना था। न कोई प्रबंधन था और न कोई नियोजन। वर्तमान में समाज बन गया। आबादी बहुत बढ़ गई, परिवार नियोजन के उपाय किए जा रहे हैं। उस समय प्रकृति का संतुलन था, किंतु आज वह नहीं है। अनेक देशों में ऐसी समस्या पैदा हो गई है कि लड़के ज्यादा हो गए हैं, लड़कियां कम हो गई हैं। एक असंतुलन पैदा हो गया है।

चीन में यह समस्या बढ़ती जा रही है। कहीं लड़कियां अधिक हैं, लड़के कम हैं, यह भी समस्या है। नियोजन की समस्याएं आ रही हैं। उस समय प्रकृति का नियोजन ही महत्त्वपूर्ण था और वह लंबे समय तक चलता रहा। समाज बना, परिवार बने तो प्रबंध की स्थितियां भी बनीं। जब विस्तार होता है तो प्रबंध की अपेक्षा होती है। परिवार का विकास हुआ तो उसके पीछे प्रबंध की अपेक्षा महसूस हुई।

तीन अपेक्षाएं

मनुष्य की तीन बड़ी अपेक्षाएं होती हैं–१. आश्वास २. विश्वास ३. विकास।

पहली अपेक्षा है–आश्वास। व्यक्ति आश्वासन चाहता है। बुढ़ापा आएगा, तब क्या होगा? बीमारी आएगी, तब क्या होगा? कोई कठिन परिस्थिति आएगी, तो क्या होगा? कौन शरण देगा, कौन त्राण देगा? कौन सहयोग देगा? वह आश्वासन चाहता है। इस आश्वासन के लिए परिवार नाम का एक छोटा संगठन पैदा हुआ।

दूसरी अपेक्षा है–विश्वास। वह कौन है, जिस पर भरोसा किया जा सके? कौन संकट के क्षण में हमारे काम आएगा? किन पर भरोसा किया जा सकता

है, किसको सारी संपदा की चाबियां सौंपी जा सकती हैं? सारे रहस्य जिन्हें बताए जा सकते हैं और जिन्हें जीवन-मरण का साथी माना जा सकता है, उनका चुनाव जरूरी है। परिवार-निर्माण के पीछे विश्वास एक बड़ा हेतु रहा है। परस्पर का विश्वास इतना गहरा हो कि जिसे कोई दूसरा आसानी से तोड़ न सके।

तीसरी अपेक्षा है विकास। मनुष्य विकास चाहता है। जहां है, वहां रहना नहीं चाहता, आगे बढ़ना चाहता है। विकास के लिए एक संगठन की जरूरत होती है। इसके लिए उसने परिवार को चुना। वहां विकास की संभावनाएं हैं।

जरूरी है सामूहिक मनोबल

विकास के लिए सामूहिक मनोबल बहुत जरूरी है। समाज मनोविज्ञान में सामूहिक मनोबल का बड़ा महत्त्व है। जेम्स ड्रेकर ने मनोबल के तीन घटक बतलाएं हैं–

१. आत्मनियंत्रण २. आत्मविश्वास (सेल्फकांफिडेंस) ३. अनुशासित क्रिया (डिसिप्लिंड एक्शन)।

जहां ये नहीं होते हैं, वहां सामूहिक मनोबल नहीं होता और सामूहिक मनोबल के बिना कोई भी संगठन चाहे वह छोटा हो या बड़ा, कभी चल नहीं सकता, विकास की गति आगे बढ़ नहीं सकती।

आत्म-नियंत्रण

सामूहिक मनोबल का पहला घटक है आत्म-नियंत्रण। जो व्यक्ति अपने आप पर नियंत्रण करना नहीं जानता, अपनी वृत्तियों और संवेगों पर नियंत्रण करना नहीं जानता, वह संगठन में फिट नहीं बैठता। वह संगठन के लिए बाधक ही रहता है।

आत्मविश्वास

दूसरा घटक है आत्मविश्वास। जहां लोग हमेशा संदेह का जीवन जीते हैं। यह सोचते रहते हैं कि पता नहीं क्या होगा, कैसे होगा? वहां न संगठन चलता है, न विकास की संभावना होती है। आत्मविश्वास इतना होना चाहिए कि अमुक कार्य होगा और होगा।

जैन आगम का प्रसंग है। द्रौपदी का अपहरण किसी अन्य द्वीप में रहने

वाले राजा पद्मनाभ ने कर लिया। इस घटना से रणभेरी बज गई। युद्ध शुरू हुआ। इधर पद्मनाभ की सेना, उधर पांडवों की सेना। पांडवों की सेना के साथ थे वासुदेव कृष्ण। वासुदेव कृष्ण ने पांडवों से कहा–जाओ, पद्मनाभ से लड़ो। पांडव गए, किंतु संदेह के साथ। वे स्वयं में आत्मविश्वास नहीं जगा पाए। **अम्हे वा पउमनाभे वा राया**–हम जीतेंगे या पद्मनाभ जीतेगा? इस संशय और डांवाडोल की स्थिति में रहे। आखिर पांडव हार गए। उसके बाद वासुदेव कृष्ण गए। उन्होंने जाते ही कहा–**अम्हे नो पउमनाभे राया**–मैं जीतूंगा, पद्मनाभ नहीं जीतेगा। इस निश्चय के साथ युद्ध लड़ा। फल यह हुआ कि पद्मनाभ हार गया और वासुदेव कृष्ण जीत गए।

आत्मविश्वास सफलता का एक बहुत बड़ा सूत्र है। जिसमें आत्मविश्वास नहीं होता, जो संशय और संदेह की स्थिति में झूलता रहता है, वह कभी सफल नहीं होता।

अनुशासन

तीसरा घटक है अनुशासन। सफल व्यक्ति की हर प्रवृत्ति अनुशासित होती है। मनचाही नहीं होती, उतार-चढ़ाव की नहीं होती। ऐसी स्थिति में सामूहिक मनोबल बढ़ता है। जहां सामूहिक मनोबल बढ़ता है, वहां संगठन मजबूत बनता है, एकता की भावना दृढ़ होती है।

मनोबल : मानसिक पक्ष

सामूहिक मनोबल के दो पक्ष हैं–१. मानसिक पक्ष २. सामाजिक पक्ष।

मनुष्य में एक अभिवृत्ति (एप्टिट्यूड) जागृत होती है। वह समूह के द्वारा जो स्वीकृत नियम हैं, उन नियमों को सहज स्वीकार कर लेता है। कोई ननुनच नहीं, कोई तर्क नहीं। समूह के नियमों का स्वीकार और उन नियमों के आधार पर व्यवहार, सहजभाव से अपनी अभिवृत्ति के साथ चलता है। वह उसका अतिक्रमण नहीं करता। यह सामूहिक मनोबल का मानसिक पक्ष है।

मनोबल : सामाजिक पक्ष

सामाजिक पक्ष में सामाजिक भावना का विकास होता है। प्रबंधन के लिए बहुत आवश्यक है सामूहिक भावना का विकास। इसके लिए जरूरी है वैयक्तिक स्वार्थों को गौण करना और सामूहिक भावना को महत्त्व देना। चाणक्य का बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है–

त्यजेदेकं कुलस्यार्थं, ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थं, आत्मार्थं सकलं त्यजेत्॥

जहां कुल का प्रश्न है, वहां एक को छोड़ देना चाहिए। जहां गांव का प्रश्न है, वहां कुल को छोड़ देना चाहिए। जहां समाज या राष्ट्र का प्रश्न हो, वहां गांव को भी छोड़ देना चाहिए और जहां आत्मा का प्रश्न हो, वहां सबको छोड़ देना चाहिए।

अध्यात्म की भाषा है–जहां आत्मा का हित हो, वहां दूसरे हितों को त्याग देना चाहिए। प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है–जहां बड़ा हित सामने आए, वहां छोटे हित को छोड़ देना चाहिए।

प्रबंधन के वर्तमान सूत्र

वर्तमान में मैनेजमेंट की पद्धति का बहुत विकास हुआ है। इसे आज वैज्ञानिक स्वरूप मिल गया है, किंतु प्राचीनकाल में भी प्रबंधन के महत्त्वपूर्ण सूत्रों को अपनाया गया था। वर्तमान प्रबंधन के सूत्र और प्राचीन प्रबंधन के सूत्र–इन दोनों पर विमर्श अपेक्षित है।

प्रबंधन के वर्तमान सूत्र हैं–समता, न्याय और करुणा। ये अध्यात्म के सूत्र हैं और प्रबंधन के भी महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं। जहां भेदभाव है, वहां प्रबंधन सम्यक् नहीं चलता। जहां न्याय नहीं है, वहां प्रबंधन अच्छा नहीं होगा। जहां करुणा नहीं है, वहां सम्यक् प्रबंधन कैसे होगा? क्रूरता में कोई भी व्यवस्था चल नहीं सकती। जिस परिवार में न्याय नहीं है, समता और करुणा नहीं है, वह अच्छा परिवार नहीं हो सकता।

प्रबंधन के इन वर्तमान सूत्रों के साथ हम प्राचीन सूत्रों को जोड़ें। प्रबंधन के प्राचीन सूत्र हैं–बारह भावनाएं और उनके साथ जुड़ी हैं चार भावनाएं– १. मैत्री २. प्रमोद ३. करुणा ४. उपेक्षा।

मैत्री

प्रबंधन का पहला सूत्र है मैत्री। संगठन छोटा हो या बड़ा, सबसे पहली आवश्यकता है मैत्री की। व्यवहार के संदर्भ में कहा जाता है–मैत्री का तात्पर्य है परस्पर प्रीति। देना, लेना, गुप्त बात पूछना, बताना, खाना, खिलाना–ये प्रीति के छह लक्षण हैं–

ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव, षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

जो इन छह लक्षणों से युक्त हो, वह मित्र है। यह मैत्री का व्यावहारिक अर्थ है, किंतु जिस मैत्री की चर्चा प्रबंधन के संदर्भ में की जा रही है, वह इस स्तर की नहीं है। उस मैत्री का अर्थ है–**परेषां हितचिंतनम्**–दूसरों के हित की चिंता करना। परिवार का मुखिया और उसके सदस्य एक-दूसरे के हित की चिंता नहीं करते हैं तो परिवार कभी अच्छा नहीं हो सकता। वह संगठन कभी अच्छा चल नहीं सकता, जिसमें दूसरों के हित की चिंता नहीं होती। आज संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं। परिवार के विघटन का प्रमुख कारण यही है कि मैत्री का प्रयोग कम हो गया है। एक-दूसरे की हित-चिंता कम हो गई है। जहां व्यक्ति अपने स्वार्थ को गौण कर दूसरे के हित की चिंता करता है, वहां संगठन सुदृढ़ होता है, उसे कोई आंच नहीं आ सकती, उसे कोई तोड़ नहीं सकता।

मराठा सेनापति पेशवा बाजीराव ने मालवा पर आक्रमण किया। मराठों का तेज उस समय इतना प्रचंड था कि उनकी सेनाओं के आगे विजय चलती थी। मराठों को मालवा पर विजय मिली। वापस आते समय मार्ग में खाद्यान्न की कमी हो गई। सेनापति ने अधिकारियों को आदेश दिया–जाओ, जहां से भी प्रचुर मात्रा में अन्न मिले, लेकर आओ। अधिकारी गए, पर अन्न मिलता कहां से? खेत तो प्रायः जले पड़े थे। युद्ध में जन-हानि के साथ-साथ धन-हानि भी होती है। इसलिए युद्ध से बड़ा कोई अभिशाप नहीं है। एक बार का युद्ध पचासों वर्ष तक की तबाही अपने साथ लाता है। काफी दूर तक खोज की गई, किंतु अन्न नहीं मिला। सब कुछ युद्ध में ध्वस्त हो चुका था। अंततः वे खोजते-खोजते युद्ध की काली छाया से किसी तरह बचे एक स्थान पर पहुंचे। वहां एक वृद्ध आदमी मिला। अधिकारी ने पूछा–'यहां अनाज कहां मिलेगा?'

उसने कहा–'मैं बताता हूं, मेरे साथ आओ।'

अधिकारी उस वृद्ध के साथ चल पड़े। वृद्ध आगे, अधिकारी पीछे। कुछ ही दूरी पर फसल से लहलहाता हुआ खेत मिला। अधिकारियों ने प्रसन्नता से कहा–'अब हमें पर्याप्त अनाज मिल जाएगा।'

वृद्ध व्यक्ति ने कहा–'नहीं, यहां नहीं, अभी आगे चलो।' कुछ दूरी पर दूसरा खेत आया। फसलों की ओर इशारा करते हुए उस वृद्ध ने कहा–'यहां से ले लें।'

अधिकारियों ने कहा–'इस खेत से ज्यादा तो उस खेत में अनाज था, जिसे हम पीछे छोड़ आए।'

वृद्ध व्यक्ति ने कहा–'आप ठीक कहते हैं, लेकिन वह खेत मेरा नहीं था, यह खेत मेरा है।'

सब अवाक् रह गए। क्या इस तरह का भी कोई व्यक्ति हो सकता है?

जो व्यक्ति अपने हित को गौण कर दूसरे के हित की बात सोचता है, संरक्षण करता है, सुरक्षा देता है, वास्तव में वही संगठन का शिरोमणि होता है।

प्रमोद-भाव

प्रबंधन का दूसरा सूत्र है प्रमोद भावना। वह संगठन मजबूत बनता है, जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के गुणों को स्वीकार करता है, महत्त्व देता है। जहां छीना-झपटी होती है, एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रतिस्पर्धा होती है, वहां मजबूत संगठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कल्पना करें कि एक परिवार में पांच भाई हैं, पांच बहुएं हैं। वे एक-दूसरे को हीन बताने का प्रयत्न करेंगे, एक-दूसरे की निंदा और चुगली करेंगे तो क्या होगा? क्या ऐसा परिवार कभी अच्छा हो सकता है?

करुणा

प्रबंधन का तीसरा सूत्र है–करुणा की भावना। आज करुणा का अर्थ भी बहुत छोटा कर दिया गया है। करुणा का अर्थ यह नहीं है कि किसी व्यक्ति को प्यास लगी तो उसे पानी पिला दिया और करुणा हो गई। करुणा का अर्थ है–पीड़ा आए, समस्या आए तो उसका समाधान खोजना और क्रूरता की वृत्ति का विसर्जन करना।

उपेक्षा

प्रबंधन का चौथा सूत्र है उपेक्षा। सब लोग समान नहीं होते। किसी संगठन में चाहे पांच आदमी हैं या दस, सब समान नहीं होते। उनमें संवेगों का तारतम्य होता है। सबके संवेग समान नहीं होते। संवेग अलग-अलग प्रकार के होते हैं। मनोविज्ञान में अनेक मौलिक मनोवृत्तियां मानी गई हैं और उन वृत्तियों के कुछ उद्दीपक संवेग माने गए हैं। जुगुप्सा एक मनोवृत्ति है, उसका संवेग है क्रोध। पलायन की एक मनोवृत्ति है, उसका संवेग है भय। न मनोवृत्तियों का विकास सबका समान होता है और न संवेग समान होते हैं। तारतम्य की स्थिति

में उनका एकीकरण बड़ा कठिन होता है। यह संवेगों का तारतम्य पारिवारिक विघटन का एक बड़ा कारण बनता है। एक व्यक्ति आदेश को तत्काल स्वीकार कर लेता है। दूसरा व्यक्ति हर आदेश पर तरह-तरह के तर्क करता है। इसका उपाय क्या हो? इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया गया–यदि संगठन को बनाए रखना है तो कहीं-कहीं उपेक्षा करो। अमुक आदमी अनुकूल नहीं है, फिर भी जैसे-तैसे इसे बनाए रखना है, इसलिए उपेक्षा करो। उपेक्षा का ही दूसरा नाम है मध्यस्थ-भाव। मध्यस्थ रहो, तटस्थ रहो। यह तटस्थता सम्यक् प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

निर्भर है इच्छा पर

भगवान महावीर से एक आचार्य ने निवेदन किया कि मैं अमुक प्रदेश में विहार करना चाहता हूं। महावीर ने उसे समझाया, किंतु उसने महावीर की बात को स्वीकार नहीं किया। उसका आग्रह प्रबल बना रहा। महावीर ने देखा–यह आग्रही है। उन्हें हानि दिखाई दे रही थी, पर निषेध का कोई उपाय भी नहीं था। महावीर मौन हो गए, उसके निवेदन की उपेक्षा कर दी। इस संदर्भ में यह श्लोक बहुत मार्मिक है–

अर्हंतोऽपि प्राज्यशक्तिस्पृशः किं, धर्मोद्योगं कारयेयुः प्रसह्य।
दद्युः शुद्धं किंतु धर्मोपदेशं, यत्कुर्वाणाः दुस्तरं निस्तरन्ति॥

अर्हत् शक्तिशाली होते हैं, किंतु क्या वे किसी को जबरदस्ती श्रेय का आचरण करवा सकते हैं? वे केवल प्रेरणा दे सकते हैं। अच्छा जीवन जीना मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। क्या कोई भी व्यक्ति किसी को बलपूर्वक अच्छा बना सकता है? ऐसा होना संभव नहीं है। इसीलिए यथासमय, यथास्थिति उपेक्षा का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

प्रबंधन के ये चार सूत्र–मैत्री, प्रमोद, करुणा और उपेक्षा प्राचीन हैं, किंतु वर्तमान प्रबंधन में इनकी उपयोगिता असंदिग्ध है। यही कारण है, वर्तमान प्रबंधन में कुछ नए सूत्र जोड़े गए हैं तो कुछ प्राचीन सूत्र भी अपनाए गए हैं।

प्रबंधन का प्राणतत्त्व

प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र अणुव्रत ने प्रस्तुत किया। वह है–**संयमः खलु जीवनम्।** संयम प्रबंधन का प्राणतत्त्व है। वर्तमान प्रबंधन में इस सूत्र की उपेक्षा की गई अथवा जितना अपनाना चाहिए, उतना नहीं अपनाया गया।

संयम ही जीवन है–यह अणुव्रत का महत्त्वपूर्ण घोष है और एक प्राचीन विचार का नवीनीकरण है। वही संगठन चिरजीवी रहेगा, जिसमें संयम से अनुप्राणित व्यक्तित्व है। ऐसा संगठन ही प्रेरणा का स्रोत बन सकता है।

वाणी का संयम

संयम का एक घटक है वाणी का संयम। चाहे राजनीतिक संगठन हो, सामाजिक, पारिवारिक या धार्मिक संगठन, उसके मुखिया यदि वाणी का संयम नहीं रखते हैं तो संगठन बनेगा ही नहीं और बन भी जाएगा तो बिखर जाएगा, टूट जाएगा, टिक नहीं पाएगा। कभी-कभी एक शब्द भी संगठन की जड़ें हिला देता है। एक भी शब्द ऐसा नहीं निकलना चाहिए, जो संगठन की जड़ों को हिला दे।

महावीर के पास लोग आए और गालियां दीं, बुद्ध के सामने आए और गालियां दीं, आचार्य भिक्षु को गालियां दीं। गालियां ही नहीं दी, मुक्का भी जमा दिया। वे फिर भी मौन और शांत रहे। कुछ भी नहीं बोले। वाणी का इतना संयम कि एक भी शब्द ऐसा न निकला, जिससे किसी को आंच आती, संगठन कमजोर बनता। दूसरी ओर यह भी सच है कि एक ही शब्द पर बड़े-बड़े युद्ध हो गए हैं। इतिहास को देखें। महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह आपस में लड़े। वे राज्य के बंटवारे के लिए नहीं लड़े। दोनों ने एक साथ तीर छोड़ा। एक हिरण मारा गया। प्रताप ने कहा–यह मेरे बाण से मरा है और शक्तिसिंह ने कहा–यह मेरे बाण से मरा है। यह विवाद लड़ाई का केन्द्र बन गया। हिरण मैंने मारा या तुमने मारा, इस बात पर विवाद खड़ा हो गया। इस वाणी के विवाद से दोनों भाई एक-दूसरे के दुश्मन बन गए।

परिवार की शांति के लिए मन का संयम, वाणी का संयम और शरीर का संयम–तीनों जरूरी हैं। अगर संयम की साधना नहीं है तो जीवन नरक तुल्य बन जाएगा, फिर तो बार-बार यही चिंतन आएगा कि ऐसे जीवन से मर जाना ही अच्छा है। बहुत से लोग ऐसी परिस्थितियों में सचमुच आत्महत्या जैसा मार्ग अपनाकर मृत्यु को गले लगा लेते हैं।

पारिवारिक कलह से तंग होकर एक महिला एक वैद्य के पास गई। उसने वैद्यजी से कहा–'मैं जीवन से तंग आ चुकी हूं, कृपाकर आप मुझे थोड़ा-सा जहर दे दें, जिसे खाकर मैं जीवन का अंत कर लूं।'

वैद्य ने कहा–'मैं जीवन देता हूं, लेता नहीं। आत्महत्या तो जघन्य अपराध है। तुम ऐसा क्यों सोचती हो? आखिर तुम्हारी समस्या क्या है?'

उसने अपनी समस्या प्रस्तुत की कि सास को मेरी कोई बात सहन नहीं होती। मैं भी उनकी बात का तत्काल उत्तर देती हूं और तुरंत महाभारत शुरू हो जाता है।

वैद्य ने कहा–'इसकी मेरे पास एक दवा है, किंतु उसका पथ्य बहुत कठिन है। अगर तुम पथ्य का पालन कर सकती हो तो वह दवा तुम्हारे लिए रामबाण सिद्ध हो सकती है। इस दवा से पारिवारिक कलह का उपशमन हो सकता है।'

महिला ने सहर्ष दवा के साथ पथ्य का पालन करने की स्वीकृति दी तो वैद्य ने उसे दवा से भरी हुई एक शीशी देते हुए कहा–'जब भी तुम्हें कोई अप्रिय बात कहे, इस शीशी की एक घूंट दवा तुम मुंह में ले लो, लेकिन ध्यान रहे कि दवा कंठ से नीचे नहीं उतारनी है। कुछ देर तक उसे मुंह में ही रखना है।'

वह महिला दवा लेकर घर आई और दरवाजे पर कदम रखते ही सास का कर्कश स्वर सुनाई दिया–'आ गई महारानीजी! बाजार घूम कर?' उसने तत्काल शीशी निकाली और दवा की एक घूंट मुंह में ले ली। सास की दो-तीन कर्ण-कटु बातें उसे सुनाई पड़ीं, किंतु मुंह में दवा भरी होने के कारण वह किसी बात का प्रतिवाद नहीं कर सकी। जब उसके मुंह से कोई शब्द नहीं निकला तो सास को बहुत आश्चर्य हुआ। वह भी चुप हो गई। जब शांति हो गई तो उसने दवा गले से नीचे उतार ली। दवा क्या, दवा के नाम पर वैद्य ने उसे कोई शर्बत दिया था।

यह क्रम बन गया कि जब भी सास और पति की कोई कड़वी बात सुनाई पड़ती, वह तुरंत दवा का इस्तेमाल कर लेती। सास सहित परिवार के सभी सदस्य आश्चर्य में पड़ गए। उनकी हर बात का मुंहतोड़ जवाब देने वाली बहू के मुंह से तो जैसे जबान ही गायब हो गई थी। अब उसके प्रति कठोरता का नहीं, मृदुता का व्यवहार होने लगा। लड़ाई का मजा तो तब आता है, जब सामने वाले की ओर से प्रतिक्रियात्मक वार हो। बहू की चुप्पी ने परिवार के लोगों को भी शांत रहने पर मजबूर कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उस घर में पूर्ण शांति हो गई। चुप रहते-रहते उस बहू को भी अच्छी ट्रेनिंग मिल गई। वह सचमुच सहिष्णु बन गई। परिवार में सब उसका आदर करने लगे।

शांति का एक बहुत बड़ा उपाय है वाणी का संयम। आग को ईंधन न मिले तो वह प्रज्वलित नहीं हो सकती। अहिंसा का बहुत बड़ा प्रयोग है वाणी का संयम। वाचिक अहिंसा लोग बहुत कम करते हैं। लोग कोई जीव न मर जाए, इस पर तो बहुत ध्यान देते हैं, किंतु वाणी कभी-कभी इतनी तीक्ष्ण बोलेंगे कि दिल के आर-पार हो जाए। वह सामने वाले को कितना घायल कर रही है, इस पर उनका ध्यान नहीं जाता। शांति के लिए जरूरी है वाणी का संयम।

जीवन है संयम

अनेक बार एक प्रश्न आता है कि रोटी जीवन हो सकती है, पानी जीवन हो सकता है, क्योंकि इनके बिना जीवन नहीं चलता, लेकिन संयम जीवन कैसे? श्वास जीवन है, इसके बिना दो क्षण भी जीवन नहीं चलता, किंतु संयम जीवन कैसे हुआ? मनुष्य इस सचाई को भुला देता है कि रोटी जीवन है, किंतु रोटी न खाना उससे भी बड़ा जीवन है। पानी जीवन है, पर पानी न पीना उससे भी बड़ा जीवन है। श्वास जीवन है, पर योग के आचार्यों ने बतलाया कि श्वास का संयम करो, कुंभक करो, श्वास लंबा लो, जीवन और बढ़ जाएगा। श्वास का संयम, आहार का संयम हमारे जीवन को बढ़ाता है।

इच्छा का संयम

संयम का एक महत्त्वपूर्ण घटक है इच्छा का संयम। जो इच्छा हो, वह काम न करें। आदमी जा रहा था। कुछ दूर जाकर सड़क पर लेट गया। सामने से तांगा आया। तांगेवाला बोला–हट जाओ। सड़क पर क्यों लेटे हो? उसने कहा–मेरी इच्छा है। तांगवाले ने तांगा आगे बढ़ाया। लेटे हुए व्यक्ति ने घबरा कर कहा–अरे, क्या कर रहे हो? तांगेवाला बोला–मेरी इच्छा है। जो व्यक्ति समझदार होता है, वह इच्छाओं की काट-छांट करना जानता है। हर इच्छा को क्रियान्वित नहीं करता। बहुत सारी इच्छाएं पैदा होती रहती हैं। सबकी पूर्ति संभव नहीं होती। समझदार व्यक्ति, संगठन को चलाने वाला या संगठन में चलने वाला व्यक्ति कभी यह दुहाई नहीं देता कि मेरी यह इच्छा हुई और मैंने यह काम कर लिया।

शरीर का संयम

शरीर का संयम भी बहुत जरूरी है। थोड़ा-सा आवेश आया और एक चांटा जड़ दिया। इस उत्तेजना की स्थिति में परिवार बिखर जाता है। हाथ का

संयम बहुत जरूरी है। क्रोध जब तक भीतर रहे, तब तक स्वयं का नुकसान करता है। वह बाहर न आए, तब तक किसी अन्य का नुकसान नहीं करता। इसी को आगम की भाषा में कहा गया है कि क्रोध का विफलीकरण और क्रोध का सफलीकरण। क्रोध को अपने तक सीमित रखें तो वह विफल बन गया। क्रोध के दो फल हैं–या तो गाली बकना या हाथ-पैर चला देना, मार देना। क्रोध को सफल न बनाना शरीर का संयम है। संयम को हम ठीक ढंग से समझें, यह प्रबंधन का प्राण-सूत्र बन सकता है।

समता

प्रबंधन का एक सूत्र है समता। मैं यह नहीं मानता कि किसी परिवार में बिल्कुल भेदभाव नहीं होता। भेदभाव थोड़ा-बहुत तो हो सकता है, कुछ मन में भी आ सकता है, किंतु ऐसा भेदभाव न हो, जो दूसरों को विषम लगे और निरंतर चलता रहे। समाज मनोविज्ञान में जहां सामूहिक मनोबल की चर्चा है, वहां यह बतलाया गया है कि भेदभाव न्यूनतम होना चाहिए।

परिवार का मुखिया कहीं से चार आम लेकर आया। दो आम अपने पुत्रों को दिए और दो भाई के पुत्रों को दिए। भाई के बच्चों ने आम प्रसन्नता से लिए और खा लिए, किंतु भाई की पत्नी ने शाम को यह बात अपने पति से बताई और कहा कि अब इस परिवार का विभाजन तय है। हम बड़े भाईजी के साथ नहीं रह सकते। पति ने कहा–'उनका हम पर बड़ा स्नेह है, फिर ऐसी बात तुम क्यों सोच रही हो?'

पत्नी बोली–'स्नेह रहा होगा कभी, आज जो देखा, वह साफ-साफ इस बात का संकेत था कि भाई की दृष्टि में अब सबकुछ बराबर नहीं रहा। उन्होंने बड़े और अच्छे आम अपने बच्चों को दिए, छोटे और कम अच्छे आम हमारे बच्चों को दिए। साफ बात है कि उनकी निगाह में अब फर्क आ गया है।' पति की समझ में भी बात आ गई। परिवार का कुछ दिन बाद ही विभाजन हो गया।

संवेग संतुलन का अभ्यास

हम प्रबंधन में एक नया सूत्र जोड़ें और वह है संवेगों को संतुलित करने का अभ्यास। आज यह नहीं हो रहा है और यही सबसे ज्यादा आवश्यक है। संवेगों का तारतम्य है, यह मानकर यहीं रुक जाएं तो फिर समीकरण नहीं होगा। हम ऐसा प्रशिक्षण दें, जिससे संवेगों को संतुलित बनाया जा सके। प्रश्न होता

है कि यह कैसे हो सकता है? इसके लिए पहले धारणा बनाएं कि संवेगों को संतुलित किया जा सकता है। हमने यह मान लिया कि संवेग तो ऐसे ही रहेंगे। क्रोध, भय, वासना में बदलाव संभव नहीं है। इस स्थिति में संवेग को संतुलित करने के लिए कोई अवकाश ही नहीं है।

जैन साधना पद्धति में एक महत्त्वपूर्ण स्वीकृति है कि पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य को बदला जा सकता है। मैं मानता हूं कि वर्तमान युग के लिए यह सबसे बड़ा सूत्र है कि जन्म-कुंडली को बदला जा सकता है, हाथ की रेखाओं को बदला जा सकता है और ज्योतिष को भी पीछे छोड़ा जा सकता है, भविष्यवाणियों को निरस्त किया जा सकता है। यह धारणा विकसित हो जाए तो विकास का, परिवर्तन और प्रबंधन का एक नया आयाम हमारे सामने होगा। हम इस सचाई को स्वीकार करें कि भविष्य को बदला जा सकता है।

सन् १९९३ की घटना है। पूज्य गुरुदेव राजलदेसर में चातुर्मास कर रहे थे। ज्योतिष की एक भविष्यवाणी आई–राजलदेसर से विहार नहीं होगा। वहां से विहार हो गया तो फिर भविष्यवाणी की गई–सुजानगढ़ मर्यादा-महोत्सव नहीं कर सकेंगे। वह भी संपन्न हो गया। तीसरी भविष्यवाणी हुई–दिल्ली नहीं आ सकेंगे। दिल्ली भी अच्छी तरह पहुंच गए। उसके बाद भी दो वर्ष तक धर्मसंघ को उनका आध्यात्मिक नेतृत्व और पथदर्शन मिला।

इसका विश्लेषण करूं तो मुझे कहना चाहिए कि भविष्यवाणी करने वाले भी बिल्कुल गलत नहीं थे। मैं ज्योतिष को थोड़ा जानता हूं, विश्वास भी करता हूं। भविष्यवाणी बिल्कुल झूठी नहीं थी, किंतु झूठी कर दी गई। प्रबल पुरुषार्थ, प्रबल मनोबल और दृढ़ आत्मविश्वास ने उस भविष्यवाणी को सफल नहीं होने दिया। अगर मनोबल नहीं होता, आत्मबल और प्रबल आत्मविश्वास नहीं होता तो वह भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध हो जाती।

कारण क्या है? हम दोनों पक्षों पर विचार करें। ज्योतिष को भी दोष न दें, किंतु महावीर ने जो सिद्धांत दिया, उस सिद्धांत को ठीक समझें। हमारा प्रबल पुरुषार्थ है, आत्मविश्वास है, दृढ़ निश्चय है और साथ में संयम है तो इन सबको बदला जा सकता है, पीछे छोड़ा जा सकता है। हमारी यह धारणा बननी चाहिए कि संवेगों के तारतम्य को बदला जा सकता है, उसे संतुलित किया जा सकता है।

इसके लिए अपेक्षित है अभ्यास और प्रयोग। क्या आप जानते हैं कि इन तथाकथित भविष्यवाणियों को बदलने के लिए कितना प्रयोग और अभ्यास हुआ है? घंटों-घंटों कायोत्सर्ग का प्रयोग हुआ है और कायोत्सर्ग में अनुप्रेक्षा के प्रयोग हुए हैं, मनोबल के प्रयोग हुए हैं। बिना अभ्यास के कोई बदल नहीं सकता। प्रेक्षाध्यान में एक अनुप्रेक्षा का निर्देश है सामंजस्य की अनुप्रेक्षा, संवेगों को संतुलित करने की अनुप्रेक्षा, समन्वय की अनुप्रेक्षा। इस अनुप्रेक्षा का चिरकाल तक अभ्यास और प्रयोग किया जाए तो संवेगों को संतुलित किया जा सकता है। जब संवेग संतुलित हो जाते हैं तो प्रबंधन की एक प्रकृति बन जाती है।

अच्छा बेटा : अच्छा पिता

हम परिवार की वर्तमान स्थिति का थोड़ा विश्लेषण करें। वर्तमान स्थिति क्या है? आज माता-पिता अक्सर कहते हैं–हम पुत्रों को कुछ कहने-सुनने की स्थिति में नहीं हैं।

सैकड़ों बार बड़े-बड़े लोगों से सुना है कि हम पुत्रों को कुछ कह नहीं सकते हैं। आप ही थोड़ा समझाएं। वे बड़े हो गए हैं। हम कैसे कहें? हम कहेंगे तो भी वे हमारी बात नहीं मानेंगे। दस वर्ष के छोटे-से लड़के के लिए भी यह कहा जाता है कि लड़का हमारी बात नहीं मानता है।

हम कैसे कल्पना करें संयुक्त परिवार की? कैसे कल्पना करें अच्छे परिवार और उसके प्रबंधन की? यह अनुशासन क्यों नहीं है? इसलिए नहीं है कि अनुशासन की वृत्ति को जगाया नहीं गया।

प्राचीन सूत्र है कि जो अच्छा शिष्य नहीं होता, वह अच्छा गुरु नहीं बनता। आज इस बात को बदल कर इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो अच्छा बेटा नहीं होता, वह अच्छा बाप नहीं बन सकता। अगर प्रारंभ से ही शिक्षण मिले, छोटे बच्चे को इस सूत्र का अभ्यास कराया जाए तो वह कभी भी आज्ञा और अनुशासन का अतिक्रमण नहीं करेगा। माता-पिता स्वयं ही मैत्री का प्रयोग नहीं करते, पुत्र के हित की चिंता नहीं करते, तब अनुशासन और आदर का भाव कैसे होगा? सबसे बड़ी कमी है मैत्री की, हित-चिंतन की। यह चिंता नहीं है कि इसका भविष्य कैसा होगा? चिंता करते हैं उसे पब्लिक स्कूल में पढ़ाने की, कान्वेंट, मेयो और दून स्कूल में पढ़ाने की। वह ऊंची पढ़ाई करके ऊंची कमाई करे, अच्छी लड़की से शादी हो।

चिंता करें हित की

चिंताएं दो प्रकार की होती हैं–प्रिय की चिंता और हित की चिंता। प्रिय की चिंता तो बहुत करते हैं, हित की चिंता नहीं करते। जीवन-निर्माण की चिंता हित की चिंता है।

लड़का बीमार हो गया। वैद्य को दिखाया। वैद्य ने कहा–इस बीमारी में मीठी चीज खाने को मत देना, अन्यथा यह असाध्य बीमारी में चला जाएगा। सादा भोजन दो, साथ में दवा दो, लेकिन मीठी वस्तु इसे भूल कर भी मत देना। मां ने परामर्श स्वीकार कर लिया। दो दिन बीते। लड्डू घर में आए। बच्चे को मिठाई खाने की सहज आदत थी। मन ललचा गया। मां से लड्डू मांगा। एक-दो बार अनसुना कर दिया। वह बार-बार मांग करने लगा। मां की प्रियता जाग गई। उसने लड्डू खाने को दे दिया। लड्डू खाते ही बच्चे की हालत बिगड़ गई। वैद्य को बुलाया। वैद्य जान गया। उसने पूछा–'मिठाई खिलाई?' संकोचपूर्वक मां बोली–'हां।' वैद्य ने कहा–'बीमारी अब मेरे उपचार से बाहर जा चुकी है। मैं कुछ नहीं कर सकता।' वह मिठाई उसकी मृत्यु का कारण बन गई।

प्रिय की चिंता थी, किंतु हित की चिंता नहीं थी। अगर हित की चिंता होती तो प्रियता गौण हो जाती। आज परिवारों में प्रिय की चिंता बहुत बढ़ गई है, किंतु हित की चिंता नहीं हो रही है। यही कारण है कि अनुशासन क्षीण हो रहा है, एकरूपता नहीं आ रही है, सामूहिक भावना का विकास नहीं हो रहा है। इन सबके बिना संयुक्त परिवार का कोई आधार या पृष्ठभूमि ही नहीं बनती। परिवार का मुखिया इस सचाई को समझे कि वह केवल अपनी संतान और अपने परिवार के प्रिय की चिंता ही न करे, हित की चिंता भी करे।

परिवार के संदर्भ में प्रबंधन की यह संक्षिप्त मीमांसा है। यदि प्रबंधन के वर्तमान सूत्रों के साथ भारतीय संस्कृति के प्राचीन प्रबंधन सूत्रों को ध्यान में रखें तो परिवार के प्रबंधन की नींव अधिक मजबूत हो सकती है तथा उसका सम्यक् विकास संभव बन सकता है।

६. शांत सहवास के नौ सूत्र

दुनिया में आदमी अकेला होता तो लड़ाई-झगड़ा और संघर्ष नहीं होता, अशांति नहीं होती, किंतु ऐसा नहीं है, अनेक लोग हैं। अनेक में पांच अरब भी हो सकते हैं, दस अरब भी हो सकते हैं। एक से दो होने का मतलब ही है द्वंद्व का पैदा होना।

संस्कृत कोश में द्वंद्व का एक अर्थ है जोड़ा। द्वंद्व का दूसरा अर्थ है लड़ाई। दो और लड़ाई–ये दोनों पर्यायवाची बन गए। जहां दो हैं, वहां लड़ाई होना अनिवार्य मान लिया गया। जहां एक से दो बना, वहां साथ-साथ लड़ाई ने भी जन्म ले लिया। जहां दो हुए, वहां रुचि भिन्न हो जाएगी, विचार भिन्न हो जाएगा। रुचि का भेद, विचार का भेद, चिंतन का भेद और क्रिया का भेद। इतना विवेक प्रत्येक आदमी में नहीं होता कि वह विचार-भेद को मन-भेद का कारण न बनाए। ये भेद मनभेद के कारण बनते हैं और लड़ाई शुरू हो जाती है।

दो का मतलब है संघर्ष, टकराहट। दो हथेलियां मिलीं, रगड़ हुई, शब्द पैदा हो गया।

अहिंसा का प्रयोग

दो में रहना संघर्ष में जीना है और यह बड़ी समस्या होती है। उपाय खोजा गया–दो में रहें, अनेक में रहें, किंतु एक होकर रहें, जिससे संघर्षण न हो, लड़ाई और अशांति न हो। प्रश्न है कि यह कैसे संभव हो सकता है? इसका एक उपाय है धर्म। जिस व्यक्ति ने धर्म को समझा है, वह अनेक में भी एक बन कर रह सकता है, समूह में रहकर शांतिपूर्ण जीवन जी सकता है। इसके लिए अहिंसा का प्रयोग किया गया। यदि अहिंसा का प्रयोग नहीं होता तो समाज नहीं बनता। दो आदमी समाज में एक साथ नहीं रह सकते। समाज बना अहिंसा के आधार पर। उसका सूत्र है–साथ-साथ रहो, तुम भी रहो और मैं भी

रहूं। या तुम, या मैं–यह हिंसा का विकल्प है। पहले साम्यवाद का यह नारा था–'साम्यवाद और लोकतंत्र–दोनों एक साथ नहीं रह सकते। या साम्यवाद रहेगा या लोकतंत्र अथवा पूंजीवाद रहेगा', किंतु आज यह नारा बदल गया।

प्राचीन कहानी है–एक राजा की कन्या ने अपने पिता से कहा कि 'या तो रेखला रहेगा, या मैं रहूंगी। हम दोनों एक साथ नहीं जी सकते।' राजा को उस निरपराध युवक को मारने का आदेश देना पड़ा। यह प्रयोग बहुत चलता रहा है–या तुम या मैं। हम दोनों एक साथ नहीं रह सकते। यह हिंसा का प्रयोग है। जहां अहिंसा का प्रयोग होगा, वहां भाषा बदल जाएगी, स्वर बदल जाएगा। व्यक्ति कहेगा–तुम भी रहो, मैं भी रहूं। हम दोनों साथ रह सकते हैं, कोई बाधा नहीं है। अनेकांत में इस सूत्र का बहुत विकास हुआ, जिसे कहा जा सकता है सहावस्थान।

एक होता है सहावस्थान, दूसरा होता है सहानवस्थान। आग और पानी दोनों एक साथ नहीं रह सकते। जहां आग है, वहां पानी नहीं और जहां पानी है, वहां आग नहीं। इसे कहा जा सकता है–सहानवस्थान, किंतु अनेकांत ने इस बात को नहीं स्वीकारा। अनेकांत दर्शन के अनुसार आग और पानी भी एक साथ रह सकते हैं। ऊष्मा और ठंडक दोनों सापेक्ष हैं, दोनों एक साथ रह सकते हैं। प्रकाश और अंधकार–दोनों एक साथ रह सकते हैं।

एक आदमी बैठा है। दिन में बादल छा गए। दो बजे का समय है। कमरे में भी अंधेरा छा गया। किसी ने कहा–'लो, पुस्तक पढ़ो।' उसने कहा–'नहीं, अभी तो अंधेरा है। मैं नहीं पढ़ सकता।' उसी समय उसे पानी का गिलास देते हुए किसी ने कहा–'पानी पीयो।' उसने गिलास हाथ में लिया और पानी पी गया। पूछा–'पानी कैसे पी लिया?' वह बोला–'पानी के लिए अंधेरा नहीं है, सूक्ष्म अक्षर पढ़ने के लिए अंधेरा है। यदि मोटा अक्षर पढ़ने के लिए दिया जाए तो उसके लिए भी अंधेरा नहीं है।'

एक इकाई है परिवार

सापेक्ष बात है–अंधेरा है भी और नहीं भी। दोनों बातें सच हो सकती हैं। अनेकांत दर्शन में विरोध जैसी कोई बात नहीं है। दो विरोधी धर्म एक साथ रह सकते हैं तो दो विरोधी विचार एक साथ क्यों नहीं रह सकते? विरोध में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। जो व्यक्ति दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करना नहीं जानता, वह परिवार में रहकर शांतिपूर्ण जीवन नहीं जी

सकता। परिवार एक छोटी इकाई है। परिवार अहिंसा का एक छोटा प्रयोग है। अहिंसा का तो सबसे पहला और छोटा प्रयोग परिवार में किया जा सकता है। जो व्यक्ति परिवार में रहते हुए अहिंसा का प्रयोग नहीं करता, वह धार्मिक कैसे हो सकता है? अहिंसक कैसे हो सकता है? परिवार में रहता है, धर्म भी करता है और दिनभर लड़ाइयां भी करता है, वह कैसा धार्मिक है? ऐसे धार्मिक को देखकर ही एक युवक इस भाषा में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है–'मेरे पिताजी अपने को धार्मिक मानते हैं, पांच-सात सामायिक करते हैं, दिन का अधिकांश समय साधुओं के स्थान पर बिताते हैं, पर हमारे घर में सबसे ज्यादा लड़ाइयां भी वे ही करते हैं। यदि मुझे लड़ाई करना सीखना है तो बाजार बहुत बड़ा है। धर्मस्थान में जाकर लड़ाई क्यों सीखूं?'

धर्म का पहला पाठ

यह बात केवल एक युवक की नहीं है। न जाने कितने लोगों के साथ ऐसा होता होगा। बहू के प्रति सास के मन में और बहू के मन में सास के प्रति, पिता के मन में पुत्र के प्रति और पुत्र के मन में पिता के प्रति इस प्रकार का विकल्प पैदा होता है कि यह इतना धर्म करता है और इतनी लड़ाइयां करता है तो कैसा धर्म करता है? क्या धर्म यही सिखाता है? सामायिक और लड़ाई–दोनों साथ नहीं चल सकते। या तो सामायिक होगी या लड़ाई। दोनों साथ कैसे होंगे? यदि दोनों को चलाना है तो फिर धर्म करने का मतलब क्या है?

धार्मिक व्यक्ति को जो सबसे पहला पाठ पढ़ना है, वह है अहिंसा और अनेकांत का पाठ। अनेकांत का पहला प्रयोग है सामंजस्य बिठाना। दो विरोधी विचारों में सामंजस्य, दो विरोधी रुचियों में सामंजस्य। यदि सामंजस्य नहीं होता है तो छोटी बात भी लड़ाई का कारण बन जाती है।

क्यों होते हैं संघर्ष?

मान लीजिए, रोटी खाने के लिए व्यंजन बनाना है। एक व्यक्ति कहता है कि मुझे तो करेला बहुत अच्छा लगता है। दूसरा कहता है कि मुझे करेला बहुत कड़वा लगता है। मैं नहीं खाऊंगा। इस छोटी-सी बात को लेकर भी बहुत झंझट खड़ा हो जाता है। यह रुचि-भेद से होने वाला संघर्ष है।

संघर्ष काल्पनिक भी होता है। पति-पत्नी के बीच झगड़ा हो गया। पत्नी ने कहा–मैं लड़के को डॉक्टर बनाऊंगी। पति ने कहा–नहीं, मैं उसे वकील

बनाऊंगा। लड़ाई इतनी तेज हो गई कि पड़ोसी इकट्ठे हो गए। एक समझदार व्यक्ति ने कहा–'अरे, लड़ क्यों रहे हो? पहले लड़के का मन भी तो जान लो।' पत्नी बोली–'लड़का तो अभी पैदा ही नहीं हुआ है।'

इस प्रकार की अहेतुक लड़ाइयां, जिनका कोई आधार नहीं, परिवारों में चलती हैं। वे इसलिए चलती हैं कि सामंजस्य बिठाना नहीं जानते, समझौता करना नहीं जानते और व्यवस्था को नहीं जानते।

हम इन तीन सूत्रों–सामंजस्य, समझौता और व्यवस्था पर ध्यान दें तो लड़ाइयां बंद हो जाएंगी। हमने देखा–दो भाइयों में परस्पर इतना प्रेम था कि लोग कहते–'ये तो राम-लक्ष्मण हैं', किंतु जब धन का प्रश्न आया, प्रेम टूट गया और ऐसा टूटा कि राम-लक्ष्मण का प्रेम कहीं चला गया। आपस में इतना वैमनस्य हो गया, जितना राम और रावण में भी नहीं रहा होगा।

व्यवस्था

शांत सहवास का पहला सूत्र है व्यवस्था। जहां व्यवस्था नहीं है, वहां संघर्ष का होना अनिवार्य है। अव्यवस्था में लड़ाई की संभावना निरंतर बनी रहती है। चाहे परिवार को देखें, चाहे सभा, संस्था या संगठन को देखें और चाहे किसी धर्म-संप्रदाय को देखें। जहां व्यवस्था का अभाव है, वहां लड़ाई-झगड़े का अवतरण निश्चित है। जिस परिवार का मुखिया समझदार होगा, वह व्यवस्था पर सबसे पहले ध्यान देगा। जहां व्यवस्था नहीं, वहां दो भाइयों का आपसी प्रेम भी वैसे ही टूट जाता है, जैसे नींबू की कुछ बूंदों से गर्म दूध। एक भाई ने सोचा–इनके चार लड़कियां हैं, शादी में इतना रुपया खर्च हो गया। मेरे तो कोई लड़की है नहीं, मैंने तो कुछ खर्च ही नहीं किया। जो कर्ज चढ़ा है, इसके सिर पर चढ़ा है। इसके पास कुछ जमा है नहीं, सब कर्जा ही कर्जा है।' यह चिंतन दो सहोदर भाइयों के भार्तृत्व-संबंधों में दरार पैदा कर देता है।

दिल्ली का एक व्यक्ति राजनीति में बहुत भाग लेता था। एक दिन उसने कहा–'महाराज! मैं तो फुटपाथ पर आ गया।' हमने पूछा–'क्या हुआ?' वह भाई रोने लगा। बहुत मुश्किल से आंसू पौंछते हुए बोला–'हम चार भाई हैं। हमारी बहुत बड़ी दुकान है। बहुत बड़ा व्यवसाय है। मैं तो राजनीति में रहा। दूसरे भाई दुकान में बैठते रहे। भाइयों ने कहा–'तुम्हारे सिर पर इतना कर्जा है। तुम्हारे हिस्से में कुछ भी नहीं है। वे कह रहे हैं–तुम इस घर से निकल जाओ।'

हम लोग भी कल्पना नहीं कर सके कि इतना अच्छा आदमी इस प्रकार कैसे हो गया? किंतु ऐसा होता है और इसलिए होता है कि सम्यक् व्यवस्था नहीं है। जहां ठीक व्यवस्था नहीं होती, वहां ऐसी स्थिति पैदा होती है।

समझौता

शांत सहवास का दूसरा सूत्र है समझौता। व्यक्ति समझौता करना नहीं जानता है तो छोटी-सी घटना की गांठ बन जाती है। जब तक गांठ खुलती नहीं, समस्या सुलझती नहीं है। समझौते के बिना समस्या का समाधान भी नहीं होता।

ज्ञातासूत्र का एक प्रसंग है। एक बहुत धनी सेठ के नौकर ने आभूषणों के लालच में सेठ के पुत्र की हत्या कर दी। वह जेल में गया। किसी अन्य अपराध पर धनपति को सजा हुई और उसे भी जेल भेजा गया। पुराने जमाने में खोड़ा होता था। उसमें दो अपराधी एक साथ रहते थे। एक अपराधी का पैर खोड़े के एक भाग में तथा दूसरे अपराधी का पैर खोड़े के दूसरे के भाग में रखा जाता। संयोग की बात। एक ही खोड़े में एक पैर तो था सेठ का और दूसरा पैर था पुत्र-हंता का। सेठ के घर से भोजन आया। उसने साथ वाले हत्यारे को बिना पूछे चुपचाप भोजन कर लिया। भोजन के कुछ देर बाद उसे शारीरिक अपेक्षा का अनुभव हुआ। उसने साथ वाले से कहा–'चलो मेरे साथ, मुझे विसर्जन हेतु जाना है।'

उसने साफ इनकार करते हुए कहा–'मुझे कहीं नहीं जाना है।'

'मुझे अपेक्षा है।'

'अपेक्षा तुम्हें है, मुझे नहीं। भोजन तुमने किया है, मैंने नहीं, फिर मैं क्यों जाऊं?'

विवश होकर सेठ को एक समझौता करना पड़ा कि जो भोजन आएगा, उसमें से आधा हिस्सा तुमको दे दूंगा। इस समझौते के बाद कैदी सेठ के साथ जाने को तैयार हुआ। दूसरे दिन साथी कैदी को भी सेठ के घर से आए हुए भोजन का आधा हिस्सा मिलने लगा। यह बात सेठानी तक पहुंची। उसके क्रोध का कोई पार नहीं रहा। सजा की अवधि पूरी कर सेठ घर पहुंचा तो सेठानी ने उसकी ओर देखने से भी इनकार कर दिया। बोली–'पुत्र के हत्यारे को भोजन देने वाले से मैं बात नहीं करना चाहती।'

सेठ ने कहा–'नाराज होने से पहले घटना का पूरा ब्यौरा तो ले लेती कि किन परिस्थितियों में मुझे उससे समझौता करना पड़ा।' यह कहकर सेठ ने पत्नी को सारी बात बताई, तब सेठानी की नाराजगी दूर हुई।

जीवन में समझौता करना जरूरी हो जाता है। महायुद्ध होता है, बड़ी-बड़ी लड़ाइयां होती हैं, आखिर वे कब तक चलती हैं। महायुद्ध करने वालों में भी समझौता और संधि होती है। जब आदमी इस भाषा में सोचता है–मैं तो ऐसा करना ही नहीं चाहता, सुनना ही नहीं चाहता तब संबंधों में कटुता आती है। जहां अपनी बात का इतना आग्रह होता है, समझौता करने की मनोवृत्ति नहीं होती, वहां परस्पर लड़ाइयां चलती हैं।

सामंजस्य

शांत सहवास का तीसरा सूत्र है सामंजस्य। सामंजस्य और समन्वय करना जरूरी है। एक बढ़ई भी जब अपना काम करता है, कमरे में खिड़कियां चढ़ाता है तो वह दो किवाड़ बनाकर सीधा नहीं चढ़ाता। किवाड़ बनने के बाद काट-छांट करनी पड़ती है। कभी इस खिड़की को काटा जाता है, कभी उस खिड़की को काटा जाता है। कभी नीचे से, कभी ऊपर से और कभी पीछे से काटता है, तब कहीं खिड़कियां फिट होती हैं। काट-छांट करना बहुत आवश्यक होता है, सामंजस्य बिठाना होता है। कोई बात एक की माननी होती है तो कोई बात दूसरे की माननी होती है। हर बात में काट-छांट और सामंजस्य बिठाना होता है। ऐसा करके ही व्यक्ति परिवार और समुदाय के साथ चल सकता है।

सहिष्णुता

शांत सहवास का चौथा सूत्र है सहिष्णुता। व्यवस्था, सामंजस्य और समझौता–इन तीनों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सूत्र है–सहिष्णुता। यह अहिंसा, पारस्परिक सौहार्द और शांत सहवास का आधार बनता है। समस्या यह है कि आज आदमी एक-दूसरे को सहन करना नहीं जानता। उसका दिमाग ही कुछ ऐसा बना हुआ है कि सहन करना बहुत कम जानता है। बड़ों की बात छोड़ दें, दो-चार वर्ष का छोटा बच्चा भी सहन करना नहीं जानता। उसके भी मन के प्रतिकूल बात होती है तो वह इतना उबल पड़ता है कि शांति भंग हो जाती है। एक-दूसरे को सहन किए बिना दो व्यक्ति साथ कैसे रह सकते हैं?

जब तक सहिष्णुता का विकास नहीं होता, तब तक शांत सहवास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक-दूसरे की कमजोरी और असमर्थता को सहन करना, अल्पज्ञता और मानसिक अवस्था को सहन करना, दूसरे की कठिनाई और बीमारी को सहन करना होता है। व्यक्ति जब इन सबको सहन करता है, तभी परिवार में शांति रह सकती है।

अर्थ सहिष्णुता का

आज सहिष्णुता का अर्थ गलत समझ लिया गया। सहिष्णुता का अर्थ न कायरता है, न कमजोरी और न दब्बूपन। सहिष्णुता महान शक्ति है। शक्तिशाली आदमी ही सहिष्णु हो सकता है। कमजोर आदमी कभी सहिष्णु नहीं हो सकता। सहन करने का मतलब है शक्ति का विकास, शौर्य और पराक्रम का विकास। पूज्य गुरुदेव की अनुभवपूरित वाणी है–'एक आचार्य को जितना सहन करना होता है, सामान्य मुनि को उतना सहन नहीं करना होता। सामान्य मुनि तो समय पर कभी-कभी आवेश में भी आ जाता है, किंतु आचार्य को वहां शांत रहना होता है। वे जानते हैं कि छोटा मुनि आवेश में है, अभी इसे शांतभाव से सहना है।' यह बड़प्पन का काम है। आवेश की आग में घी की आहुति नहीं देना है। बड़प्पन है उफनते दूध में पानी का छींटा डाल देना, जिससे उफान की अवस्था में दूध नीचे गिरे नहीं, राख में गिर कर खराब न हो जाए। यह विवेक बड़े में हो सकता है, शायद छोटे में न भी हो। घर के मुखिया व्यक्ति सहिष्णु नहीं होते हैं तो परिवार टूटने-बिखरने लगता है, परस्पर झगड़े चलते हैं।

शांतिपूर्ण पारिवारिक जीवन का सूत्र है–सहिष्णुता। जितनी विद्याएं और कलाएं हैं, उन सबमें अच्छी कला है सहिष्णुता। जो बहुत कुछ पढ़ने पर भी इस कला को नहीं पढ़ता, नहीं सीखता, वह शांति के साथ कभी नहीं जी सकता। जिस समाज, जिस परिवार में सहन करने की शक्ति घट जाती है, वह समाज और परिवार सुखी नहीं रह सकता। संयुक्त परिवार आज टूट रहे हैं, बिखर रहे हैं। इसलिए कि सहिष्णुता नहीं है। अहंकार किसी को सहिष्णु नहीं रहने देता। सब अपनी-अपनी चलाना चाहते हैं। महाभारत का एक मार्मिक श्लोक है–

यत्र सर्वेऽपि नेतारः, सर्वे पंडितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति, तद् राष्ट्रं विद्धि दुःखितम्॥

जिस समाज या राष्ट्र में सब नेता हो जाते हैं, सब अपने को पंडित मानने लगते हैं, सबमें महत्त्वाकांक्षा जाग जाती है, उसे दुःखी और विनष्ट होने से कोई रोक नहीं सकता।

संयुक्त परिवार बहुत शक्तिशाली हुआ करता था। बड़े और एकजुट परिवार से झगड़ा मोल लेने की कोई हिम्मत नहीं करता था। आज परिवार कई कुनबों में विभक्त होकर कमजोर बन गए हैं। दुःख, परेशानी उठा लेंगे, किंतु साथ में नहीं रह सकते, क्योंकि एक दूसरे को सहन करने में असमर्थ हैं। सहिष्णुता का विकास वहां होता है, जहां व्यक्ति एक-दूसरे का सम्मान करता है, जो समाज के महत्त्व को समझता है और परिवार के मुखिया की आज्ञा का अनुपालन करता है।

नेतृत्व के प्रति आस्था

शांत-सहवास का पांचवां सूत्र है–नेतृत्व के प्रति आस्था। जो सहिष्णु और विनम्र होता है, वही आज्ञा, अनुशासन और मर्यादा का सम्मान कर सकता है। परिवार और समुदाय में आज्ञा का महत्त्व है, इसीलिए आचार्यों ने कहा–**आणाजुत्तो संघो, सेसो पुण अट्ठिसंघाओ।** आज्ञायुक्त है, वही संघ है, समुदाय है। जहां आज्ञा का महत्त्व नहीं है, वह कोरा हड्डियों का ढांचा है, उसमें प्राण नहीं है। इसे हम दूसरे शब्दों में कहें तो जहां नेतृत्व का मूल्य होता है, वह समाज, वह परिवार महत्त्वपूर्ण होता है। नेतृत्वविहीन परिवार और समाज का बहुत ज्यादा मूल्य नहीं होता।

शांति, सफलता, विकास–इन सबका एक मूल आधार बनता है नेतृत्व। जिस परिवार और समाज में नेतृत्व को स्वीकार करने की भावना नहीं होती, वह विकास नहीं कर सकता। विकास के लिए जरूरी है–नेतृत्व, पथदर्शन, आज्ञा, निर्देश–इन सबका समन्वय।

एक बड़ा परिवार था। परिवार में गरीबी थी। एक दिन घर के मुखिया ने विचार किया कि क्यों न हम लकड़ियां काटकर उनको बेचने का धंधा करें। परिवार के सदस्यों को यह प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा। सबने कुल्हाड़ियां हाथ में लीं और जंगल की ओर रवाना हो गए। वहां जाकर उन्होंने एक पेड़ चुना और उसे काटने का फैसला किया। पहली कुल्हाड़ी चलाई तो कहीं से एक आवाज आई–'काटो मत।' परिवार के लोगों ने कहा–'हम अपनी आजीविका के लिए यह काम कर रहे हैं। हर आदमी को जीवित रहने के लिए उद्यम करने

का अधिकार है। हमने यह कार्य चुना है तो तुम्हें आपत्ति क्यों? तुम कौन हो? सामने क्यों नहीं आते?'

उनकी एकता को देखकर प्रश्न करने वाला प्रसन्न हो गया और बोला– 'मैं इस वृक्ष में रहने वाली दिव्य आत्मा हूं। तुम्हारी एकता से प्रसन्न हूं। अब तुम लोगों को चिंतित होने की जरूरत नहीं है। तुम्हारी रोजी-रोटी का प्रबंध हो जाएगा।'

'कैसे हो जाएगा?' परिवार के लोगों ने एक साथ प्रश्न किया।

इतने में हांडीनुमा एक पात्र प्रकट हुआ और आवाज आई–'इस पात्र को ले जाओ। ढक्कन बंद कर जब भी तुम लोग इससे किसी भोज्य पदार्थ की कामना करोगे, खोलने के बाद इसे उससे परिपूर्ण पाओगे।'

सबने दिव्यात्मा की बात पर विश्वास किया और उस पात्र को लेकर घर आ गए। परीक्षण किया गया और वह सफल रहा। क्षुधित परिवार को आय का अनमोल साधन मिल गया। गृहस्थ के लिए रोटी की समस्या बहुत बड़ी समस्या है। रोटी की समस्या हल होते ही परिवार में खुशहाली आ गई।

पड़ोसी ने देखा कि यह परिवार आजकल बहुत प्रसन्न और खुश दिखाई देता है। पहले तो आए दिन कुछ न कुछ मांगने आता था। आजकल तो हमारी ओर देखता भी नहीं। आखिर बात क्या है? कोई रोजगार-धंधा भी नहीं करते, फिर इनकी खुशहाली का रहस्य क्या है? उसने पूछा–भाई! आजकल बड़े प्रसन्न दीख रहे हो, आखिर बात क्या है?'

मुखिया भोला था। उसने रहस्य की बात बता दी कि यह सब दिव्यात्मा द्वारा दिए गए पात्र का परिणाम है। हमारी जरूरतें आजकल वही पूर्ण कर रहा है। पड़ोसी के मन में लोभ जाग गया। उसने भी अपने परिवार को उसी वृक्ष के नीचे ले जाने का फैसला किया। पहले तो परिवार के लोग एक साथ जाने को सहमत ही नहीं हुए। किसी प्रकार उसके अनुरोध पर वे जंगल में गए। उसी वृक्ष के नीचे जाकर सब रुके। परिवार के मुखिया ने उन्हें पेड़ काटने का आदेश दिया तो वे लोग आपस में उलझ पड़े कि मैं क्यों काटूं? पहले यह काटे। परिणाम यह हुआ कि पेड़ काटने की बजाय आपस में ही कट-मरने को नौबत आ गई।

तभी वृक्ष में निवास करने वाली दिव्यात्मा प्रकट हुई, बोली–'तुम लोग यह क्या कर रहे हो?'

मुखिया ने कहा–'हम इस वृक्ष को काटना चाहते है।'

दिव्यात्मा–'मैं इस पर निवास करने वाली दिव्यात्मा हूं। यहां से चले जाओ, अन्यथा तुम सब मारे जाओगे।'

मुखिया–'यह तो बड़ी अन्यायपूर्ण बात है। मेरे पड़ोसी को तो अक्षयपात्र दिया और मुझे मारने की बात कह रहे हो।'

दिव्यात्मा–'वह परिवार एकजुट और अनुशासित परिवार था। अपने मुखिया की बात बिना किसी ननुनच स्वीकार करने वाला पुरुषार्थी परिवार था। उन्हें कोई लोभ भी नहीं था। वे मात्र आजीविका के उद्देश्य से आए थे, किसी पात्र को पाने की लालसा से नहीं। तुम्हारा उद्देश्य दूसरा है। यहां से तुरंत चले जाओ, अन्यथा तुममें से कोई नहीं बचेगा।' सभी अपना-सा मुंह लेकर वापस आ गए।

जहां नेतृत्व है, निर्देश है और उसे मानने की तत्परता है, वहां सबकुछ संभव होता है। हम इस बात पर बहुत गहराई से विचार करें। यह परिवार में एकसूत्रता, शांति और प्रगति का सबल आधार बनता है।

विनय और वात्सल्य

शांत-सहवास का छठा सूत्र है विनय और वात्सल्य। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक धर्म और समाज में विनय का महत्त्व रहा है। इसीलिए लिखा गया–विद्या विनय देती है। पता नहीं आज की विद्या क्या देती है? वर्तमान युग को देखकर यह कहा जा सकता है–**विद्या ददाति अविनयम्**–विद्या अविनय देती है। इससे भी आगे बढ़ें तो विद्या प्रिंसिपल को पीटने का संस्कार देती है, बंदी बनाने की भावना उत्पन्न करती है और कभी-कभी विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर को भी ऐसे कटघरे में खड़ा कर देती है कि उसका उस कटघरे के बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता है। आज की विद्या क्या यही नहीं दे रही है? हमारी परंपरा विनय की रही है। यह परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। विनय भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व रहा है, किंतु यह बात भी विस्मृत होती जा रही है। जिस परिवार में यह विनय की परंपरा नहीं होती, उसमें शांतिपूर्ण जीवन नहीं हो सकता।

बड़ों के प्रति विनय करना एकपक्षीय बात है। उसका दूसरा पहलू है वात्सल्य। छोटों के प्रति वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करना। यह विनय और वात्सल्य

का एक जोड़ा है। ये दोनों हों, तभी काम चलता है। एक विनय करे और दूसरा वात्सल्य न दे तो विनय भी रूठ जाता है। वात्सल्य मिलता रहे और विनय बढ़ता रहे तो पारिवारिक जीवन में शांति का संचार बना रहता है।

कृतज्ञता का विकास

शांत सहवास का सातवां सूत्र है कृतज्ञता। उदात्त भारतीय चेतना का एक सर्वोपरि तत्त्व है कृतज्ञता। कृतज्ञता का भाव विनय की भावना को पुष्ट करता है। कृतज्ञता का भाव वात्सल्य को अक्षय बना देता है। कृतज्ञता एक कर्तव्य है। महावीर ने कहा–'तीन व्यक्तियों के ऋण से उऋण होना दुष्कर है–गुरु, माता-पिता और स्वामी। शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु के ऋण से उऋण हो। पुत्र का कर्तव्य है कि वह माता-पिता के ऋण से उऋण हो। कर्मचारी का कर्तव्य है कि वह स्वामी के ऋण से उऋण हो। यह अहिंसा के परिपार्श्व में होने वाला एक विचार है। जहां करुणा की बात कम हो जाती है, अहिंसा की बात कम हो जाती है, वहां व्यवस्था टूट जाती है। यद्यपि समाज की व्यवस्था व्यवहार के धरातल पर बनती है, परंतु उसके पीछे जो दर्शन है, जो चिंतन है, उसके आधार पर व्यवस्था का निर्माण होता है।

भारतीय व्यवस्था में अहिंसा का विचार प्रधान रहा, करुणा और कृतज्ञता का भाव रहा। कोई भी अहिंसक व्यक्ति, करुणाशील व्यक्ति व्यवहार के धरातल पर भी क्रूरता का प्रदर्शन नहीं कर सकता। वह अपने असहाय, अपंग, शक्तिहीन वृद्ध माता-पिता की उपेक्षा कैसे कर सकता है? कभी नहीं कर सकता। इससे सहज ही उन वृद्धों को आश्वासन मिलता है, किंतु जहां करुणा और अहिंसा का विचार नहीं है, वहां सचमुच ही समस्याएं उभरती हैं। आज पाश्चात्य देशों में पुनः-पुनः विचार किया जा रहा है कि इन समस्याओं का हल कैसे किया जा सकता है? अहिंसा और करुणा के परिपार्श्व में पनपने वाली आश्वासन की बात, कृतज्ञता का भाव कैसे विकसित हो सकता है–इस विषय में चिंतन अपेक्षित है। जो अपने उपकारी के प्रति उपकार-भाव नहीं रखता, कृतज्ञ नहीं होता, वह सुखी नहीं हो सकता।

जरूरी है विवेक

शांत-सहवास का आठवां सूत्र है विवेक। विनय और कृतज्ञता के साथ विवेक का होना भी जरूरी है। परिवार में सौहार्द की कमी का एक कारण है अविवेक। अगर हमारी विवेक चेतना जागृत हो तो सौहार्द और सौमनस्यता

की स्थिति बनी रह सकती है। संयुक्त परिवारों का जो विघटन हुआ है और हो रहा है, उसका एक कारण है अविवेक। इतनी अच्छी पद्धति थी संयुक्त परिवार की। एक परिवार में सौ आदमियों की रसोई एक साथ बनती थी। पूरा परिवार तनावमुक्त रहता था। बड़ों के प्रति आदर और सम्मान की भावना होती थी। आज स्थिति यह है कि एक ही बेटा है और वह भी पत्नी-बच्चों के साथ मां-बाप से अलग रहता है। बूढ़े मां-बाप अकेले अपनी जिंदगी काट रहे हैं। इस समस्या का संयुक्त परिवार की व्यवस्था से बड़ा कोई दूसरा समाधान नहीं है। संयुक्त परिवार में सब एक दूसरे के सहयोगी बनते हैं। किसी को अकेलेपन की कभी अनुभूति नहीं होती।

आश्वास और विश्वास

शांत सहवास का नौवां सूत्र है–आश्वास और विश्वास। ये दो ऐसे तत्त्व हैं, जो पारिवारिक और सामाजिक जीवन को सरस बनाते हैं। सरसता के बिना आदमी सुख और आनंद का जीवन नहीं जी सकता। वह काव्य भी अच्छा नहीं माना जाता, जिसमें रसवत्ता नहीं होती। इसीलिए नौ रसों का विधान किया गया है। वह जीवन भी कोई जीवन है, जिसमें कोई रस न हो। उपनिषद् में कहा गया-रसो वै सः। रस को परमात्मा की उपमा दी गई है। यह सरसता अकेलेपन में बहुत कठिन है।

पाश्चात्य पारिवारिक व्यवस्था में आश्वासन नहीं है, वहां परिवार टूटे हुए हैं। पिता आश्वस्त नहीं है कि बुढ़ापे में उसका पुत्र सेवा-शुश्रूषा करेगा, पत्नी सेवा करेगी। भारत में फिर भी कुछ सीमा तक यह आश्वासन प्राप्त है। पिता सोच भी सकता है कि वृद्धावस्था में पुत्र-पत्नी उसकी सेवा करेंगे। जहां पारिवारिक व्यवस्था टूटी हुई है, संयुक्त परिवार नहीं है, वहां केवल पारिवारिक दृष्टि का ही खंडन नहीं हुआ है, किंतु सूक्ष्म पर्यवेक्षण से यह भी ज्ञात होता है कि वहां कृतज्ञता की दृष्टि भी खंडित हुई है। आज पाश्चात्य देशों के बूढ़े लोग ज्यादा दुःखी हैं। उनके दुःख का कारण अभाव नहीं है। उन्हें जीवन की सारी सुविधाएं उपलब्ध है। सरकार की ओर से रहन-सहन, खान-पान, चिकित्सा आदि की पूरी व्यवस्था है, फिर भी वे दुःखी हैं। बूढ़ा आदमी चाहता है कि उसे प्रेम मिले, सेवा-शुश्रूषा हो। जब उसे प्रेम और स्नेह नहीं मिलता, तब वह पागल जैसा हो जाता है। वह अनाश्वस्त हो जाता है। यही उसके दुःखी होने का मूल कारण है।

सन् १९७४ की बात है। दिल्ली के एक बहुत बड़े साहित्यकार मेरे पास आए और बोले–'मैं यूरोप के कई देशों की यात्रा करके आया हूं। अगर किसी को इस धरती पर नरक देखना है तो अमुक-अमुक देशों के वृद्धाश्रमों में जाकर देख लें, साक्षात् नरक का दर्शन हो जाएगा।'

मैंने कहा–'यह कैसे? वे तो बहुत समृद्ध देश हैं। वहां की सरकार वृद्धों और असहाय लोगों के लिए तो पर्याप्त व्यवस्था करती होगी।'

उन्होंने कहा–'करती है, किंतु जिसकी उन्हें सबसे ज्यादा आवश्यकता है, उसकी व्यवस्था नहीं करती। वृद्धों को अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है। मेरा एक परिचित मित्र वृद्धाश्रम में था। मैं उसे देखने गया। मुझे देखते ही वह मुझसे लिपटकर रोने लगा। मैंने देखा कि वहां खाने-पीने, रहने आदि की अच्छी व्यवस्था थी, फिर भी जीवन के उत्तरार्द्ध में जिस सेवा, सहयोग और अपनत्व की भावना चाहिए, उसका वहां पूर्ण अभाव था। यही कारण था कि प्रायः सभी वृद्ध लोगों की सूनी आंखों में दुःख और वेदना का भाव था।'

जीवन केवल सुख-सुविधा के सहारे ही नहीं चलता। अपनत्व और प्रेम की भावना न हो तो स्वर्णपात्र में रखा छप्पन भोग भी आदमी को तृप्ति नहीं दे सकता। जहां प्रेम और वात्सल्य नहीं, वहां रस जीवन से गायब हो जाता है।

साहित्यकार ने कहा–'महाराज! मेरे उस मित्र ने बताया कि यहां सारी व्यवस्था है। सप्ताह में दो दिन डॉक्टर आता है, शरीर की पूरी जांच करता है। जरूरी दवाएं देता है, लेकिन सप्ताह के इन दो दिनों को छोड़कर किसी अन्य दिन मृत्यु भी हो जाए तो कोई पूछने वाला नहीं है। अर्थी निश्चित दिन पर ही उठेगी। म्युनिसिपल कॉरपोरेशन के आदमी आकर ले जाएंगे और लावारिस की तरह दाह-संस्कार कर देंगे।' सचमुच! नरक इसी को कहते हैं। करुणा, प्रेम, वात्सल्य, अपनापन, सेवा और सहयोग से रिक्त जीवन में व्यक्ति नरक ही भोगेगा।

समझौता, व्यवस्था, सहिष्णुता, आज्ञा, विनय, वात्सल्य, कृतज्ञता, विवेक, विश्वास–ये तत्त्व नहीं होते हैं तो सामुदायिक जीवन में सरसता नहीं आ सकती। जिन्हें सरस जीवन जीना है, उनके लिए इन गुणों का विकास जरूरी है।

हमने ऐसे लोगों को देखा है, जो अरबों की संपत्ति छोड़ कर इस दुनिया से चले गए, किंतु अंतिम सांस लेते समय उनके पलंग के पास कोई नहीं था।

नौकरों ने जाकर बेटे और बहुओं को कहा कि बाबूजी न बोल रहे हैं, न हिलते-डुलते हैं, लगता है, खत्म हो गए। तब कहीं जाकर वे लोग निकट आए। उनकी अर्थी उठी तो दस आदमी भी साथ नहीं थे। नौकर-चाकरों को अर्थी में कंधा देना पड़ा।

जिनके पास कुबेर की संपदा है, वे एक टेबलेट के लिए तड़फ रहे हैं। कोई एक गिलास पानी देने के लिए भी पास नहीं जाता। नरक भोगना और किसे कहते हैं? स्नेह ऐसा सिंचन है, जिसके बिना जीवन में सरसता नहीं आती। पहले इसका इतना अभाव नहीं था, किंतु आज इसका अभाव होता जा रहा है। ऐसा शिक्षा पद्धति के कारण, अर्थ को प्रधानता देने के कारण, व्यस्त जीवन के कारण या किस कारण से हो रहा है, यह खोज का विषय है। सारे संस्कार तिरोहित हो रहे हैं, परंपराएं विस्मृति के गर्भ में जा रही हैं।

पारिवारिक सौहार्द के लिए जरूरी है कि जीवन में विवेक का विकास करें, जीवन में सरसता लाने वाले तत्त्वों को अपनाएं। इससे परिवार में शांति का पथ प्रशस्त बना रह सकता है।

शांतिपूर्ण जीवन के ये नौ सूत्र अनेकांत अथवा सापेक्ष दर्शन से फलित होते हैं। इन सूत्रों पर मनन किया जाए, बहुत गंभीरता से मनन किया जाए और उनको जीने का अभ्यास किया जाए तो व्यक्ति को पारिवारिक जीवन की अशांति से मुक्ति मिल सकती है। केवल इन सूत्रों के उच्चारण से शांत सहवास कभी संभव नहीं बन सकता।

एक आदमी ने अपने मित्र से पूछा–'मुझे अमेरिका जाना है, वहां जाने में खर्च कितना लगेगा?' उसने कहा–'एक पैसा भी नहीं लगेगा।' उसने कहा–'मुफ्त में ऐसे कौन ले जाएगा? पैसा तो लगेगा ही।' वह बोला–'मैं जानता हूं, तुम केवल विचार करते हो, मनसूबे बनाते हो, आना-जाना कहीं है नहीं, फिर पैसे कैसे लगेंगे?'

कोरा विचार किया जाए, आचरण न किया जाए तो शांतिपूर्ण सहवास संभव नहीं हो सकता। सामंजस्य, समझौता, व्यवस्था, सहिष्णुता, आज्ञा, विनय, वात्सल्य, कृतज्ञता, विवेक, आश्वास और विश्वास–इन सूत्रों पर मनन करें तो हम अपने लक्ष्य तक पहुंच पाएंगे एवं पारिवारिक शांति का सपना जीवन की सचाई बनेगा।

७. शांत सहवास और भाषा विवेक

एक व्यक्ति गुरु के पास गया और पूछा–'सब लोग शांति की बात करते हैं। आखिर यह शांति है क्या?'

गुरु ने कहा–'सामने जो दीवार दिखाई दे रही है, वहां जाकर तुम वापस आओ, मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा।'

मुश्किल से सौ कदम चला होगा कि पैर में एक तीखी शूल चुभ गई। वह दर्द से कराह उठा। सहायता की पुकार लगाई। गुरु आए, शूल निकाली।

शिष्य ने कहा–'आह! कितनी शांति मिली।'

प्रश्न का उत्तर मिल गया। जब-जब कांटा चुभता है, अशांति हो जाती है और कांटा निकलता है तो शांति हो जाती है।

कांटा न चुभे, इतना रास्ता साफ होना जरूरी है। जैसे बाहर कांटे होते हैं, वैसे ही भीतर भी कांटे हैं। जैन आगम का प्रसिद्ध शब्द है 'शल्य'। भीतर कांटा है, शल्य है तो वह अशांति का कारण बनता है।

दो व्यक्ति आपस में लड़ने लगे, वातावरण अशांत हो गया। दोनों में मैत्री हो गई, वातावरण शांत हो गया।

अशांति का हेतु है विपरीत अवग्रहण

बड़ा जटिल प्रश्न है शांति और अशांति का। क्रोध, अहंकार, माया और लोभ–ये अशांति के हेतु हैं। इनका अभाव शांति का हेतु बनता है। ये कषाय सबमें बराबर नहीं होते। अगर ये सबके समान होते तो शायद शांति और अशांति जैसे शब्द शब्दकोश में न होते।

चिंतन का भी कोई एक कोण, एक रूप नहीं होता। अगर हजार व्यक्ति बैठे हैं तो चिंतन का कोण भी हजार तरह का होगा, दृष्टिकोण भी हजार तरह

का होगा। रुचि भी समान नहीं होती। सबका दृष्टिकोण भी समान नहीं होता और सबकी ग्रहणशक्ति भी समान नहीं होती।

अशांति का बीज है विपरीत अवग्रहण। जब हम किसी वस्तु का विपरीत अवग्रहण करते हैं तो अशांति पैदा हो जाती है। एक व्यक्ति को मन के विपरीत कोई बात कही तो तत्काल मुंह से निकलता है कि तू कौन होता है सलाह देने वाला? अपना ध्यान रख, दूसरों के कार्य में हस्तक्षेप मत कर। अशांति यहीं से शुरू हो जाती है।

शांति के लिए एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करना होगा। सामने वाला जो कह रहा है, उसे सम्यक् ग्रहण करें। सम्यक् ग्रहण में बाधा बनता है अहंकार। अशांति के लिए यही सबसे ज्यादा जिम्मेदार है। कोई मुझे क्यों कहे? इसी भाव की ऊर्वरा में अशांति के बीज की बुआई हो जाती है। कोई कहे, उसे सुनें और मौनभाव से उस पर चिंतन शुरू करें कि मुझे ऐसा क्यों कहा गया? मेरी गलती कहां है? कहां मुझसे भूल हो रही है? कहीं भटकाव तो नहीं हो रहा है? यह चिंतन शुरू कर दे तो अशांति को पनपने का मौका ही नहीं मिलेगा। अशांति अपने आप विलीन हो जाएगी।

विनम्रता और शांति

विनम्रता और शांति इन दोनों का संबंध है। जहां विनम्रता है, वहां शांति है। जहां विनम्रता नहीं, वहां शांति नहीं। अहंकार के कारण मन में इतनी प्रतिक्रिया हो जाती है कि राई जितनी घटना पहाड़ बन जाती है। शांति वह है, जहां बाहर की घटना की कोई प्रतिक्रिया न हो। वह विनम्रता से ही संभव है। जिस व्यक्ति में जितनी विनम्रता है, अहंकार का जितना ज्यादा विलय है, वही व्यक्ति शांति से रह सकता है।

पति भोजन कर रहा था। वह विनम्र स्वभाव का था। भोजन करते-करते उसकी आंखों में आंसू आ गए। पत्नी ने पूछा–'आप रो क्यों रहे हैं?'

पति बोला–'ये खुशी के आंसू हैं। आज तुमने भोजन बहुत बढ़िया बनाया।'

पत्नी बोली–'तब थोड़ी सब्जी और लें?'

'नहीं इससे ज्यादा खुशी बर्दाश्त करने की मुझमें शक्ति नहीं है। सब्जी में मिर्च इतनी ज्यादा है कि प्रसन्न होकर रोने के अलावा और कोई चारा नहीं है।'

कहने की कला सीखें

बात कहने का एक तरीका होता है। कहने का तरीका और उसे ग्रहण करने का तरीका–ये दोनों स्वस्थ होने चाहिए। अशांति किसी घटना से नहीं होती। कहने का प्रकार और ग्रहण करने का प्रकार ही अशांति पैदा करता है। अगर ये दोनों स्वस्थ हो जाएं तो फिर अशांति को पनपने का मौका ही नहीं मिलेगा। बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कहने की कला सीखना। किस बात को कैसे कहें? यह कला जानना बहुत जरूरी है।

कुछ मास पूर्व एक पुस्तक देखी। बड़ी सुंदर पुस्तक थी–**नॉन वाइलेंस एंड कम्युनिकेशन्स।** शांति के लिए अहिंसक शैली में संवाद बहुत जरूरी है। कहावत है कि खीर में मूसल न डालें। ऐसी बात न कहें, जो प्रतिक्रिया उत्पन्न करे।

कबीर बहुत समझदार संत थे। उनके पास कोई युवक आया। उसने कबीर से कहा–'मैं आपसे एक सलाह लेने आया हूं कि शादी करूं या न करूं?' कबीर ने उसे निकट बिठाया और पत्नी से कहा–'तुम लालटेन जलाकर लाओ।'

दोपहर का समय और आकाश में चमकता हुआ सूर्य। ऐसे समय में कबीर ने पत्नी को आदेश दिया–लालटेन जलाकर लाओ। पत्नी ने आदेश का पालन किया और जलती हुई लालटेन सामने रख दी। कुछ देर इधर-उधर की बात करने के बाद कबीर ने पत्नी से कहा–'दो गिलास दूध लाओ।' पत्नी ने दूध के दो गिलास लाकर सामने रख दिए। कबीर और युवक दोनों ने दूध पीना शुरू किया। युवक ने एक घूंट पीकर गिलास रख दिया, जबकि कबीर ने पूरा गिलास खाली कर दिया। पत्नी को प्रसन्नता की दृष्टि से देखा और बढ़िया दूध लाने के लिए उसकी प्रशंसा की।

युवक का मन आंदोलित हो उठा। सोचा–कहां आकर फंस गया। भरी दुपहरी में ये लालटेन जलवा रहे हैं। कड़वे-कसैले खारे दूध को बहुत अच्छा और मीठा बता रहे हैं। कहीं ये विक्षिप्त तो नहीं हो गए? उससे रहा नहीं गया, बोला–'मैं तो आपको बहुत ज्ञानी और समझदार मानकर आपके पास सलाह लेने आया था, लेकिन आपकी हरकतों से मेरे मन में संदेह पैदा हो रहा है।'

कबीर–'संदेह क्यों?'

युवक–'भरी दोपहर में लालटेन जलाने और कड़वे दूध को, जिसमें नमक की मात्रा बहुत ज्यादा है, मीठा बताने की बात समझ से बाहर है।'

कबीर–'यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है।

युवक–'संतवर! क्या यह मेरे प्रश्न का उत्तर है?'

कबीर–हां! तुमने देखा–मेरे आदेश का मेरी पत्नी ने बिना एक शब्द बोले पालन किया। वह पूछ सकती थी कि दिन में लालटेन क्यों? किंतु उसने नहीं पूछा। वह खारा दूध लेकर आई तो मैंने उससे यह नहीं कहा कि दूध में इतना ज्यादा नमक क्यों? मैंने उसकी हरकत को सहन कर लिया। अगर परस्पर एक दूसरे को सहने की क्षमता है तो तुम शादी कर सकते हो, अन्यथा मैं तुम्हें शादी करने की सलाह नहीं दूंगा।'

संवाहक शांति के

वाक् संयम और भाषा विवेक के साथ जुड़ा है शांति का प्रश्न। हम दूसरे की बात को कैसे सहन करें? कोई प्रतिकूल बात कह रहा है और हम शांति के साथ उसे सुन रहे हैं, सुन सकते हैं तो मानें कि शांति का दरवाजा खुला है। यदि शांति और धैर्य से किसी की बात सुन सकें और तत्काल प्रतिक्रिया न करें तो हम शांति के संवाहक बन सकते हैं।

आज सहन करने की शक्ति तो कम है ही, कहने की कला का भी विकास नहीं हो रहा है। हमें इतना विकास करना है, जिससे कटु से कटु बात को भी शांति से सुनने और सहने की क्षमता आ जाए। आपा न खोएं, हर बात को सम्यक् ग्रहण करें। अगर ऐसा होता है तो समय आने पर प्रतिकूल बात को सहन भी कर सकते हैं। समस्या यह है–किसी ने किसी के बारे में कुछ कहा, पूरी बात सामने आई नहीं, उससे पहले ही आदमी उबल पड़ता है। प्रतिवाद का अवसर ही नहीं आता।

जरूरी है वाणी का प्रशिक्षण

शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए, शांतिपूर्ण सहवास के लिए अगर सबसे बड़ी कोई कला है तो वह है वाक् कला। बोलने की कला का प्रशिक्षण होना चाहिए। कहना हो तो कैसे कहें? कब कहें? कितना कहें? इन पर खूब विचार कर लें। अनेक बार जो समस्याएं हमारे सामने आती हैं, उनका कारण यही है कि एक बात को अनेक बार कहते जाते हैं। उसकी प्रतिक्रिया सामने आती है। कहने की भी सीमा होनी चाहिए। एक बार कह दिया, सावधान कर दिया,

अब दिनभर उसी की रट लगाए रहेंगे तो सामने वाला अशांति में न हो तो भी अशांति में चला जाएगा।

जो शांति से रहना चाहते हैं, उनके लिए जरूरी है वाणी का प्रशिक्षण। एक महत्त्वपूर्ण जैन आगम है–दशवैकालिक। उसका सातवां अध्ययन वाणी के प्रशिक्षण का ही अध्ययन है। जैन आगम उत्तराध्ययन के पहले अध्ययन में भी वाणी का प्रशिक्षण दिया गया है। हमारे जितने भी व्यवहार हैं, उनमें प्रमुख व्यवहार है वाणी। आदमी खाता है निश्चित समय पर, सोता है निश्चित समय पर, हर काम का प्रायः कोई न कोई निश्चित समय होता है, किंतु बोलने की प्रवृत्ति का कोई समय नहीं है। बातचीत करते हैं तो उसमें काम की बात बहुत कम और निकम्मी बात ज्यादा होती है। हम चिंतन करें कि दिनभर में जितना हम बोलते हैं, उसमें सार्थक कितना होता है और निरर्थक कितना?

सोचने की प्रवृत्ति, वाणी की प्रवृत्ति और शरीर की प्रवृत्ति–आदमी की ये तीन प्रवृत्तियां हैं। शरीर से काम करता है तो कहता है कि अब मैं थक गया हूं। अब आराम करूंगा। सोचते-सोचते भी आदमी थक जाता है, किंतु बोलने से पता नहीं, क्यों नहीं थकता? सबसे ज्यादा व्यापार है वचन का। हमें सबसे ज्यादा ध्यान भी इसी पर देना होगा। इस बात पर गहराई से चिंतन कर लिया जाए तो मैं मानता हूं कि शांति की कुंजी हाथ में आ जाएगी, फिर शांत सहवास का वातावरण निर्मित होने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

८. मधुर बनाएं संबंधों को

दार्शनिक जगत में दो धाराएं हैं–द्वैत और अद्वैत। अद्वैत अकेला है। द्वैत में दो हैं। जहां दो हैं, वहां संबंध की बात आती है। अकेले में संबंध नहीं हो सकता। दो होते ही द्वंद्व की बात प्रतिध्वनित होती है। जोड़ा है तो आपस में उनका संबंध भी होगा और व्यवहार भी होगा।

एक था यौगलिक युग। वह आदिम युग था। उस समय संबंधों का जाल बहुत कम था। पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री–इससे आगे कोई संबंध नहीं था। आज कभी-कभी लोग एक-दूसरे से अपना संबंध बताते हैं तो वह सहसा समझ में भी नहीं आता। मामा के बेटे की पत्नी का भाई। हिसाब बिठाना पड़ता है, रिश्तों का जोड़-घटाव लगाना पड़ता है, तब कहीं जाकर संबंध का पता चलता है।

पारिवारिक जीवन संबंधों का जीवन है। एक होता है संबंध का जीवन और एक होता है संबंधातीत जीवन। संबंधातीत जीवन तो कुछ ही लोगों का होता है, सबका नहीं। जो सबकुछ छोड़ चुके हैं, उनका जीवन संबंधातीत जीवन होता है, किंतु जो गृहस्थ का जीवन जीता है, सामाजिक जीवन जीता है, उसके लिए संबंधों का बड़ा महत्त्व है। संबंध का अर्थ है–सं-सम्यक्, बंध-बंध जाना, जो आपस में भलीभांति बंधे हैं, उसका नाम है संबंध।

संबंध पशु-पक्षियों में भी होता है। ये संबंध बनाए नहीं जाते, शाश्वत होते हैं। गाय और बछड़े का संबंध ममता और वात्सल्य का संबंध है। यह इतना प्रगाढ़ है कि एक गाय अपने बछड़े की सुरक्षा के लिए शेर से भी भिड़ जाती है। परिणाम कुछ भी हो, उसमें इतना साहस जाग जाता है कि अपनी जान पर खेलकर भी अपने बच्चे की सुरक्षा करती है। यह ताकत और साहस कहां से

आया? गाय में इतनी ऊर्जा का स्फुरण कैसे हुआ? स्पष्ट है कि यह जोड़ा गया संबंध नहीं है। इसकी पृष्ठभूमि में कुछ है और वह है स्नेह का धागा, वात्सल्य का सूत्र, प्रेम का अनुबंध। जहां परस्पर वात्सल्य का सूत्र जुड़ा नहीं होता, वहां संबंध मात्र औपचारिक रह जाता है, वास्तविक नहीं होता। परस्पर में बांधने वाला कोई सूत्र है तो वह है वात्सल्य। वत्सल शब्द भी यहीं से बना है। वत्स यानी बछड़ा। गाय का अपने बछड़े के प्रति गहरा अनुराग होता है। वह अनुराग, वह वात्सल्य भाव परस्पर एक-दूसरे को बांध देता है।

संबंध का हेतु

संबंध का एक कारण है राग और दूसरा कारण है उपयोगिता। गाय भागी जा रही थी। उसकी रस्सी हाथ में पकड़े आदमी भी उसके पीछे भाग रहा था। दो दार्शनिकों ने यह दृश्य देखा। एक ने पूछा–'बताओ, कौन दौड़ रहा है, गाय या आदमी?'

दूसरे ने कहा–'आदमी दौड़ रहा है।'

पहले ने कहा–'यह बात सही नहीं है। गाय दौड़ रही है। उसके गले में पड़ी हुई रस्सी, जो आदमी अपने हाथ में पकड़े हुए है, वह मूंज आदि से बनी हुई रस्सी नहीं, मोह की रस्सी है। मुख्य है गाय। आदमी उसके मोह में उसके पीछे भाग रहा है। गाय रुक जाएगी तो आदमी भी रुक जाएगा।'

बंधन का एक कारण है राग। मानवीय संबंधों पर विचार करना इसलिए जरूरी है कि दूसरे प्राणियों में स्नेह और वत्सलता अधिक होती है, किंतु मनुष्य के संबंधों के पीछे उपयोगिता भी एक कारण बनती है। वह जहां उपयोगिता देखता है, वहां संबंध स्थापित कर लेता है। मनुष्य विचारशील प्राणी है। वह उपयोगिता को अच्छी तरह समझता है। कौन उसके काम आ सकता है, इस बात को वह जानता है।

संवेदनशीलता और मानवीय संबंध

संबंधों को मधुर बनाने का पहला सूत्र है संवेदनशीलता। हम अहिंसा के संदर्भ में मानवीय संबंधों पर विचार करें। जहां संबंधों की पृष्ठभूमि में स्वार्थ है, वहां हिंसा को पनपने का मौका मिलता है। जहां संबंधों की पृष्ठभूमि में संवेदनशीलता है, सहानुभूति है, वहां अहिंसा का विकास होता है। संस्कृत में

एक शब्द आता है स्व-स्वामी संबंध। एक मालिक है, दूसरा उसका कर्मचारी या नौकर है। जो मालिक है, वह स्वामी और जो कर्मचारी या नौकर है, वह उसका स्व हो गया। मालिक और नौकर का संबंध स्वार्थ और उपयोगिता की भूमिका पर होता है। एक को पैसे की जरूरत है, दूसरे को सेवा की जरूरत है। अहिंसा की दृष्टि से विचार करें तो जहां मालिक अपने नौकर या कर्मचारी के प्रति संवेदना और सहानुभूति रखता है, वहां अहिंसा फलवती होगी। नौकर के प्रति उसका व्यवहार क्रूर और निर्मम है, वहां हिंसा को पनपने का मौका मिलेगा।

पत्नी ने अपने पति से कहा–'इतनी कम तनख्वाह में अब काम नहीं चलता। पांच वर्षों से इसी वेतन पर काम कर रहे हो, मालिक से कह दो–वेतन बढ़ाए।'

पति ने कहा–'तुम उसे जानती नहीं हो। वह बहुत संवेदनहीन आदमी है, पत्थर दिल का है। पैसे के मामले में वह किसी की नहीं सुनता। जैसे चल रहा है, चलने दो। वेतन बढ़ाने को कहूंगा तो चिढ़ जाएगा।'

पत्नी ने कहा–'तुम पहले ही एक धारणा बनाकर बैठ गए हो। परिवार की समस्या और घर की आर्थिक स्थिति उसके सामने रखोगे तो जरूर कुछ सोचेगा।'

पति ने साहस किया। मालिक के सामने अपनी समस्याएं प्रस्तुत करते हुए वेतन बढ़ाने का अनुरोध किया–'मालिक! बहुत परेशान हूं। पत्नी बीमार है। उसकी परिचर्या के लिए सास को बुलाना पड़ा। कल छोटा लड़का स्कूल जाते समय साइकिल की टक्कर लगने से गिर पड़ा और हाथ में फ्रैक्चर हो गया। बड़े लड़के की फीस समय पर नहीं भर पाया तो स्कूल से नाम कट जाएगा। दूध वाले का महीने भर का पैसा बकाया है और दीवाली का त्योंहार सामने है। आप पचास रुपया वेतन बढ़ा दें तो बड़ी कृपा होगी।'

मालिक में संवेदना नहीं थी। इतनी समस्याएं सुनीं तो कुछ देर तक मौन रहा, फिर नौकर को घूरता हुआ बोला–'तुम्हारे सामने समस्याएं बहुत हैं। ऐसी हालत में तुम मन लगाकर काम करने की स्थिति में नहीं हो। मुझे कुछ नई नियुक्तियां करनी हैं। तुम्हारी जगह मिश्रा को ले लूंगा। वह आई. आई. टी.

किया हुआ है और पंद्रह सौ रुपये महीने पर काम करने को तैयार है। तुम आज तक का हिसाब मुनीमजी से ले लो। आज से तुम्हारी छुट्टी।'

गया था वेतन बढ़वाने, नौकरी से हाथ धोना पड़ा। यह है हिंसा का मनोभाव।

संबंधों को जोड़ने वाला तत्त्व है संवदेनशीलता। आदमी दूसरे की पीड़ा को समझे। परिवार में बिखराव का बड़ा कारण बनता है संवेदनशीलता का अभाव। संबंधों की पारस्परिकता जहां कम होने लगती है, वहां खींचतान शुरू हो जाती है। जहां एक-दूसरे की जरूरतों को समझने का प्रयत्न नहीं होता और जहां स्वार्थ की मनोवृत्ति जागती है, वहां संबंध चल नहीं सकते। विघटन पहले मानसिक स्तर पर शुरू होता है, फिर आंगन में दीवार खड़ी हो जाती है।

संविभाग और मानवीय संबंध

संबंधों को मधुर बनाने का दूसरा सूत्र है संविभाग। संविभाग होता है तो मानवीय संबंधों में अहिंसा का विकास होता है। मैंने एक युवक को देखा। वह पिता का नाम आते ही उत्तेजित हो जाता। पिता के प्रति उसके मन में घृणा हो गई। मैंने उससे कहा–'माता-पिता का बहुत उपकार होता है, उनके प्रति मन में श्रद्धाभाव होना चाहिए और तुम घृणा करते हो, यह तो अच्छी बात नहीं है।'

उसके चेहरे पर कड़वाहट आ गई। बोला–'महाराज! वह मेरा पिता नहीं, इस धरती का निकृष्टतम प्राणी है। उसे मैं आदमी नहीं मानता। उसके जैसा अन्यायी इस दुनिया में खोजने पर भी नहीं मिलेगा।'

मैं आगे कुछ कहता, इससे पूर्व एक अपमानजनक शब्द पिता के लिए प्रयुक्त करते हुए बोला–'यह मेरी सहनशीलता है कि मैंने कोई कठोर कदम नहीं उठाया। मेरी जगह कोई दूसरा होता तो न जाने क्या कर देता? इसने सारी संपत्ति छोटे भाई को दे दी और मुझे घर से निकाल दिया।'

जहां संविभाग नहीं है, वहां संबंधों में कटुता का होना अवश्यंभावी है। हिंसा को भी वहां जड़ जमाने का मौका मिलता है। संबंधों के साथ अहिंसा का विकास तब होता है, जब संविभाग होता है। पता नहीं, संविभाग करने में लोगों को कठिनाई क्यों आती है? इसका एक कारण है राग की मनोवृत्ति। किसी एक के साथ अति राग और दूसरे के साथ द्वेष। ऐसा होता है और हो रहा है,

बहुत ज्यादा हो रहा है। घर-परिवारों में शायद ही कहीं ऐसा होता हो कि सब सदस्य एक-दूसरे के साथ संविभाग का व्यवहार करते हों। बहुधा यही देखने में आता है कि संबंधों में खींचतान, भेदभाव और पक्षपात का व्यवहार होता है। अनेक घटनाएं सामने आती हैं। एक पिता के चार बेटे, एक को सबकुछ दे दिया और तीन को सड़क पर खड़ा होने की हालत में रख दिया। निश्चित रूप से उनके मन में प्रतिक्रियात्मक हिंसा होगी। मोह के कारण विसंविभाग होता है और जहां विसंविभाग है, पक्षपात है, वहां हिंसा को अंकुरित और विकसित होने का मौका मिलता है।

मृदुता और मानवीय संबंध

संबंधों को मधुर बनाने का तीसरा सूत्र है मृदुता। अहंकार नहीं है तो संबंध अच्छे चलते हैं। अहंकार होते ही संबंधों में कटुता शुरू हो जाती है। परिवार का मुखिया अपने परिवार के सदस्यों की, गुरु अपने शिष्यों की, व्यापार और व्यवसाय का वरिष्ठ भागीदार अपने सहयोगियों की बात को सुनना नहीं चाहता, उनकी उपेक्षा करता है तो संबंधों में खटास पैदा हो जाती है।

संबंधों को मधुर बनाए रखने का एक अहिंसात्मक उपाय है ऋजुता और मृदुता। जिस समूह में छोटे से छोटे सदस्य की बात को भी ध्यान से सुना जाता है, उसे समाहित किया जाता है, संतुष्ट किया जाता है, वहां संबंधों में मिठास घुली रहती है। उनमें कड़वाहट नहीं आती। इसीलिए कहा गया–**बालादपि सुभाषितं**–एक छोटे बच्चे की अच्छी बात को भी स्वीकार करो। एक छोटा बच्चा क्या समझता है? यह मानकर उसकी उपेक्षा मत करो। उसकी बात को समझने का प्रयत्न करो। **अमेध्यादपि कांचनम्**–कचरे के ढेर पर सोने का गहना पड़ा है। क्या उसे अनदेखा कर दोगे? शायद ऐसा नहीं करोगे। उसे उठा लोगे, फिर बच्चे की अच्छी बात को स्वीकार करने में क्या आपत्ति है?

अहंकार बहुत बड़ी भूमिका निभाता है संबंध-विच्छेद में। यह आदमी को पूरी तरह से उद्विग्न बना देता है। अगर हम चाहते हैं कि हमारे संबंधों में कभी कटुता न आए, मधुरता रहे तो विनम्रता का विकास बहुत जरूरी है। परस्पर मिलते समय हाथ जोड़ने की परंपरा है। यह एक तरह का शिष्टाचार है, किंतु उससे भी ज्यादा है अपनी विनम्रता की अभिव्यक्ति।

बहुत वर्ष पहले की बात है। प्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्रजी ने दिल्ली में धर्माचार्यों का एक सम्मेलन आहूत किया। आचार्यश्री के पास आकर बोले– 'आचार्यश्री! सम्मेलन की तैयारियां कर ली, किंतु एक बड़ी उलझन में पड़ गया हूं। मंच पर धर्माचार्यों के बैठने की समस्या हल नहीं हो पा रही है। आपका सहयोग चाहिए।'

आचार्यश्री ने कहा–'बैठने की क्या समस्या है? क्या स्थान कम है?'

जैनेन्द्रजी बोले–'स्थान कम नहीं है। समस्या ऊपर नीचे की है। बराबर बैठने में कुछ लोगों को आपत्ति है।'

आचार्यश्री ने कहा–'आप चिंता न करें। मैं नीचे बैठ जाऊंगा।'

इस विनम्रता ने सारी समस्या को हल कर दिया।

जहां संवेदनशीलता है, सहानुभूति है, संविभाग है, मृदुता है, विनम्रता है, वहां संबंध मधुर बनते हैं और अहिंसा का भी विकास होता है। हम इस पर गहराई से चिंतन करें और अपने जीवन में इन सूत्रों का अधिक से अधिक विकास करें, पारस्परिक संबंध मधुर एवं सरस बने रहेंगे।

१. संभव है सुखद संवास

व्यक्ति अकेला नहीं जीता, वह समाज में जीता है, समाज के साथ जीता है, इसलिए व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बन जाता है। साथ में रहते हैं, साथ में भोजन करते हैं, साथ में अर्जन करते हैं और साथ में कार्य करते हैं, यह है संवास।

संवास दो प्रकार का होता है–जन्मजात संवास और उत्तरकालीन संवास। बच्चा जिस परिवार में जन्मा, जीवन भर उसी परिवार में रहेगा और परिवार वालों के साथ रहेगा। यह जन्मजात संवास है। एक वधू घर में आती है, यह उत्तरकालीन संवास है। उसका जन्म भिन्न कुल में हुआ और वर्तमान में वह भिन्न कुल में रहती है।

एक समझौते का भी संवास होता है। दो व्यापारियों ने साथ में समझौता किया कि हम साझे में काम करेंगे। एक साथ उन्होंने काम शुरू किया, यह समझौते का संवास है। यह दूसरी बात है कि समझौता कभी टूट जाए और वे दोनों अलग हो जाएं, किंतु जब तक साथ रहते हैं, उनके बीच समझौते का संवास होता है।

एक होता है अतिथियों का संवास। कोई अतिथि अथवा मेहमान बनकर किसी के यहां आता है और कुछ दिन रहकर वापस चला जाता है।

कर्मचारियों और नौकरों का भी संवास होता है। वे सेवा करने के उद्देश्य से आते हैं और पारिश्रमिक या वेतन के आधार पर मालिक की सेवा करते हैं। मालिक के साथ रहते हैं।

इस प्रकार संवास के कई प्रकार बन जाते हैं। इस पर भी चिंतन किया गया कि संवास कैसा होता है? प्रिय होता है या अप्रिय होता है? सुखद होता है अथवा दुःखद? इन प्रश्नों पर विमर्श करने के बाद चार विकल्प सामने आए–

१. कुछ पुरुष आपातभद्र होते हैं, संवासभद्र नहीं होते–प्रथम मिलन में भद्र होते हैं, चिर सहवास में भद्र नहीं होते।

२. कुछ पुरुष आपातभद्र नहीं होते, संवासभद्र होते हैं।

३. कुछ पुरुष आपातभद्र भी होते हैं और संवासभद्र भी होते हैं।

४. कुछ पुरुष न आपातभद्र होते हैं और न संवासभद्र।

वह होता है आपातभद्र

पहला विकल्प है–आपातभद्र होते हैं, संवासभद्र नहीं। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जो प्रथम मिलन में बहुत अच्छे लगते हैं। कुछ समय बाद वे अप्रिय बन जाते हैं, दुःखद बन जाते हैं, समस्या पैदा करने वाले बन जाते हैं। वे आपातभद्र हैं, किंतु संवास में भद्र नहीं है। इंटरव्यू के द्वारा जो नियुक्तियां की जाती हैं, उनमें ऐसा ही होता है। प्रथम दर्शन में बहुत अच्छा लगता है, किंतु स्वल्प संवास के बाद वे उतने अच्छे दिखाई नहीं देते। उनकी ओर से कठिनाइयां शुरू हो जाती हैं।

विवाह आदि संबंधों में भी कुछ ऐसा ही होता है। बहू शादी के बाद ससुराल आती है। कुछ दिनों तक उसका व्यवहार, कार्य आदि अच्छे और संतोषजनक होते हैं, किंतु समय के साथ-साथ व्यवहार में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। संवास अच्छा नहीं रहता भद्र नहीं रहता, कल्याणकारी और सुखद नहीं रहता।

वह होता है संवासभद्र

दूसरा विकल्प है–संवासभद्र होते हैं, आपातभद्र नहीं। पहली बार मिलते हैं तो व्यवहार अच्छा नहीं लगता। सोचते हैं, शायद निर्णय गलत ले लिया, निर्वाह नहीं होगा, किंतु जैसे-जैसे समय बीतता है, संवास की अवधि बीतती है, जीवन सुखद होता जाता है। समझ बढ़ जाती है, परस्परता बढ़ जाती है, घनिष्ठता हो जाती है। प्रथम क्षण में बहुत प्रियता नहीं होती, किंतु समय के साथ-साथ प्रियता बढ़ जाती है।

एक लड़की की शादी हुई। बड़े सेठ की लड़की थी, लाड़-प्यार में पली थी। अधिक लाड़-प्यार भी व्यक्ति की वृत्तियों को बिगाड़ देता है। अहं की वृत्ति आ जाती है। अहंकारी व्यक्ति अपने आपको ही सबकुछ मानता है। वह शादी के बाद ससुराल गई। ससुराल वालों के लिए एक बड़ी समस्या खड़ी हो

गई। दूसरे की बात पर ध्यान देना तो उसने सीखा ही नहीं था। केवल अपना आग्रह प्रबल रहता। परिणामस्वरूप बात-बात पर झुंझलाहट, तीखे स्वर और कभी-कभी अपशब्दों का प्रयोग भी हो जाता। कलह का वातावरण परिवार की शांति को भंग करने लगा। पूरे परिवार में तनाव व्याप्त हो गया।

पिता अपनी पुत्री के स्वभाव को, उसकी वृत्तियों को जानता था। विवाह के तीन सप्ताह बाद वह बेटी के यहां आया और ससुराल वालों के सामने अपनी पुत्री को अपने साथ ले जाने की बात कही। कहने भर की देर थी। पूरा परिवार उसके जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। औपचारिकतावश झूठी मनुहार भी नहीं की। प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दी।

पिता बेटी को लेकर घर आया। पुत्री की व्यथा पिता से छिपी कैसे रह जाती? पिता ने पूछा–'बताओ, ससुराल कैसा है?

पुत्री ने अपना दुःख-दर्द व्यक्त करते हुए कहा–'आपने मुझे कहां ले जाकर डुबो दिया? उसे आप ससुराल कहते हैं? वह तो बना-बनाया नरक है, जिसमें एक-एक क्षण मैंने यातना झेली है।'

'बेटी! तुम्हारा पति तो अच्छा है?'

'पति! नहीं, वह तो साक्षात् यमदूत है।'

'श्वसुर तो भला होगा?'

'श्वसुर! वह तो राक्षस है।'

'सास तो देखने में बड़ी भली लगती है।'

'ओह, पिताजी! वह तो डायन है।'

पिता पुत्री के स्वभाव से परिचित था। पिता ने गंभीरता से कहा–'बेटी! शादी के बाद तो अब वही तुम्हारा घर है। तुम्हें जिंदगी वहीं व्यतीत करनी है। मैं तुम्हारी परेशानी और समस्या को समझ गया। लो, मैं तुम्हें एक मंत्र सिखाता हूं। इसे सीख लो, फिर तुम्हारे घर का सारा वातावरण बदल जाएगा।'

पुत्री को विश्वास नहीं हुआ कि किसी मंत्र से ससुराल के वातावरण में कोई बदलाव आ जाएगा, किंतु पिता ने उसे आश्वस्त करते हुए मंत्र देने की बात कही। पिता ने पुत्री को नमस्कार महामंत्र सिखाया और कहा–'मंत्र तो ज्यादा कठिन नहीं है, किंतु इसका पथ्य बहुत कठिन है। तुम यह भी जानती हो कि पथ्य के बिना कोई भी दवा ठीक से अपना काम नहीं करती। इस मंत्र का

पथ्य यह है कि कोई तुम्हें कुछ कहे तो तुम तत्काल मानसिक रूप से मंत्र का जप शुरू कर दो और दस मिनट के लिए पूर्ण मौन धारण कर लो, किसी से मत बोलो, फिर देखो, कैसा चमत्कार दिखाता है यह मंत्र।'

पुत्री के लिए दस मिनट का मौन बहुत दुष्कर काम था। एक बात के उत्तर में वह दस बात सुनाती थी। सहना उसकी प्रकृति में ही नहीं था, किंतु ससुराल के वातावरण से वह इतनी परेशान और त्रस्त हो चुकी थी कि पिता की इस कड़ी शर्त को भी उसने स्वीकार कर लिया।

बहुत दिनों तक ससुराल से कोई लेने ही नहीं आया। टली हुई बला को फिर कौन लाता? अंततः पिता स्वयं ही उसे ससुराल पहुंचाने गया। उसे देखते ही ससुराल वालों के चेहरे बदल गए। उन्होंने अन्यमनस्क भाव से कहा– 'आपने क्यों तकलीफ की, हम स्वयं आ जाते।' इस तरह कुछ औपचारिक बातें हुईं और पिता पुत्री को ससुराल में छोड़कर लौट गया।

वही ससुराल, वही लोग और वही दिनचर्या। ससुराल वाले तो मान ही चुके थे कि बुरे दिन अब लौट आए हैं। घर में महाभारत शुरू हो जाएगा, किंतु बहू के स्वभाव में हल्का-सा परिवर्तन साफ दिखाई दे रहा था। सास ने किसी घरेलू काम के बारे में आदेश की भाषा में कुछ कहा। प्रत्युत्तर में बहू ने हाथ जोड़ दिए और पिता के बताए मंत्र का जाप करते हुए चुप्पी साध ली, मौन धारण कर लिया। वह सास द्वारा निर्दिष्ट कार्य में प्रवृत्त हो गई।

सास को सुखद आश्चर्य हुआ। ऐसा पहली बार हुआ था कि उसने कुछ कहा और उत्तर में बहू मौन रह गई थी। सास के मन में प्रश्न उठा कि दो महीने में यह क्या हो गया? इसकी चर्चा सास ने अपने परिवार के हर सदस्य से की। सबने आशातीत परिवर्तन देखा।

परिणाम यह हुआ कि पांच-सात दिन में ही घर का सारा वातावरण बदल गया। अब परिवार में प्रायः सभी उससे बात करने को लालायित रहने लगे। किसी बात का कठोरता से उत्तर देना तो जैसे वह भूल ही गई थी।

दो महीने बाद उसका पिता पुनः आया और बेटी को घर भेजने का निवेदन किया। श्वसुर ने कहा–'इतनी जल्दी नहीं भेजेंगे। बहू यहां कम से कम साल भर रहेगी।' सास ने कहा–'अब मैंने इसे घर का सारा भार संभला दिया है। इसके जाने से सारा काम ठप्प हो जाएगा। अब यह घर की मालकिन है।' पति ने भी भेजने में आनाकानी की।

पिता के प्रबल आग्रह पर ससुराल वालों ने तीन दिन के लिए उसे पीहर जाने की अनुमति दे दी। घर आकर पिता ने बेटी से पूछा–'मेरे मंत्र की क्या प्रतिक्रिया रही?' पुत्री ने कहा–'पिताजी! वह तो बड़ा चमत्कारी मंत्र है। मेरे घर-परिवार का तो जैसे कायापलट हो गया। घर अब स्वर्ग जैसा बन गया। मेरा पति तो देवता है। श्वसुर परमपिता जैसे हैं और सास मां से भी ज्यादा ममतामयी, बिल्कुल देवी जैसी है।'

दोनों स्थितियों को हम सामने रखकर चलें कि आपात में क्या था और संवास में कैसी परिस्थिति बनी? कभी-कभी तत्काल प्रतिक्रिया होती है और तत्काल तलाक की भी तैयारी हो जाती है। रात को शादी हुई, दिन में असंतोष बढ़ा और शाम तक तलाक के कागजात बनने लगे। इस तरह की परिस्थितियां जीवन की शांति को लील जाती हैं।

अगर हम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो पाएंगे कि एक व्यक्ति प्रथम दृष्टि में अच्छा नहीं लगता, किंतु साथ रहते-रहते वह बहुत अच्छा बन जाता है। उसका चिंतन बदल जाता है, परिस्थितियां बदल जाती हैं।

केवल आपात को मत देखो, संवास की भी प्रतीक्षा करो और देखो कैसी परिस्थितियां बनती हैं? परिवर्तन की कितनी संभावना है? बहुत बार ऐसा होता है कि जो प्रारंभ में बहुत उद्दंड, गैर जिम्मेदार और अनुदार होता है, वह संवास में रहते-रहते शांत स्वभाव का और समझदार बन जाता है।

आपातभद्र भी : संवासभद्र भी

तीसरा विकल्प है–आपातभद्र भी होते हैं और संवासभद्र भी। उनका प्रथम मिलन भी सुखद होता है और आजीवन उनका स्वभाव सुखद बना रहता है। यह बहुत बड़ी बात है कि दीर्घकाल तक कोई सुखद संबंधों को बनाए रखे, जीवनभर शांत और मृदु स्वभाव का बना रहे। जीवन की सबसे बड़ी सफलता है साथ में रहना और शांति से रहना। परिवार में दस व्यक्ति हैं, उनका परस्पर में प्रमोदभाव रहे, वात्सल्य और प्रेमभाव रहे। सबमें उल्लास और अच्छी भावना जागे।

आपातभद्र और संवासभद्र व्यक्तियों की कुछ कसौटियां हैं। सुखद संवास की पहली कसौटी है–जो अहंकारी नहीं है, वह दीर्घकाल तक सुखद सहवास कर सकता है। जिसमें अहंकार है, वह दूसरे के साथ हिल-मिलकर

नहीं रह सकता। उसका टकराव किसी न किसी से होता रहेगा। दीर्घकाल तक सुखद संवास उसी व्यक्ति का हो सकता है, जो विनम्र है, जो निगर्वी है, शांत प्रकृति का है।

विनम्र होना कोई मामूली बात नहीं है। विद्या में, बुद्धि में, बल में, धन में जिसने थोड़ी-सी भी प्रगति कर ली, उसमें कुछ न कुछ अहंकार की भावना जरूर आ जाएगी, फिर उसका संतुलित रह पाना बहुत कठिन है।

रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने कहा–

प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।

प्रभुता और ऐश्वर्य प्राप्त कर कौन अहंकारी नहीं बन जाता। थोड़ा-सा अध्ययन करते ही अहंकार आ जाता है। सी. ए. कर लिया, डॉक्टर या इंजीनियर हो गया, आई. ए. एस. या आई. पी. एस. कर लिया, ये शाखाएं हैं प्रोफेशनल की। मेरी दृष्टि में ये सब एक स्पर्श हैं, मंजिल तो बहुत आगे है। ये प्रारंभिक पड़ाव हैं, लेकिन आज अहंकार के हेतु बन रहे हैं। उच्च पद प्राप्त कर आदमी अपने को दूसरे से थोड़ा भिन्न समझने लगता है।

सुखद लंबा पारिवारिक जीवन वही बिता सकता है जो अहंकार नहीं करता, विनम्र और शालीन रहता है। विनम्रता सुखद संवास का पहला लक्षण है।

सुखद संवास की दूसरी कसौटी है–अप्रिय वचन बोलने से बचना। अप्रिय और कटु बोलने वाले का संवास सुखद नहीं हो सकता। जिस व्यक्ति के मुंह से कभी अपशब्द नहीं निकलता, जिस व्यक्ति के मुंह से दूसरों के मन में हीनता पैदा करने वाला शब्द नहीं निकलता, मेरी दृष्टि में वह सबसे बड़ा मौनी है। अगर मुझसे कोई पूछे कि सबसे बड़ा मौनी कौन? मेरा उत्तर होगा–जिसकी वाणी में मिठास है, जो अपनी वाणी से सबको प्रसन्न और सुखी रखता है, वह सबसे बड़ा मौनी है। ऐसे बहुत से लोग मिल जाएंगे जो महीनों, वर्षों तक मौन रहे, किंतु जब मौन तोड़ा तो एक महीने में ही सारी कसर निकाल दी। हिमालय की गुफाओं और कंदराओं में पांच-दस वर्ष तक मौन रहे। जब गांव और बस्ती में आए तो समाज के बीच उनका व्यवहार कुछ ऐसा लग रहा था जैसे मैदान की गर्मी पहाड़ की बर्फ को पिघला रही हो। जो कटु शब्द नहीं बोलता, वह सबसे बड़ा मौनी है। उसका संवास भी सुखद होता है।

सुखद संवास की तीसरी कसौटी है–सहिष्णुता। जो व्यक्ति दूसरे को सहन करना जानता है, उसका संवास सुखद होता है। इस संदर्भ में एक पुरानी घटना प्रस्तुत कर रहा हूं।

चीन के सम्राट का प्रधानमंत्री वृद्ध होने के बाद सेवानिवृत्त हो गया। उसका परिवार बहुत बड़ा था। प्राचीनकाल में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। वह प्रथा बहुत सुखद और उपयोगी थी। आज वह प्रथा लुप्त-सी होती जा रही है। संयुक्त परिवारों का तेजी से विघटन हो रहा है।

सम्राट ने सोचा–प्रधानमंत्री ने दीर्घकाल तक राज्य को अपनी सेवाएं दी हैं। आज भी वे अपने विशाल परिवार को एक सूत्र में बांधे हुए हैं। ऐसे अनुभवी आदमी से मिलना चाहिए। वे स्वयं चलकर प्रधानमंत्री के निवास पर पहुंचे। निवर्तमान प्रधानमंत्री ने सम्राट का स्वागत किया। प्रधानमंत्री के भवन के विशाल प्रांगण को देखकर सम्राट को आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसकी उपयोगिता पूछी तो प्रधानमंत्री ने कहा–'राजन्! परिवार बड़ा है। एक हजार सदस्य हैं। यह प्रांगण उनके एक साथ बैठकर भोजन करने के लिए है।'

राजा ने घूम-घूमकर पूरे भवन का अवलोकन किया। बहुत बड़ी रसोई, उसी के अनुपात में बर्तन भंडार, सब सदस्यों के शयनकक्ष। सम्राट प्रधानमंत्री के परिवार की व्यवस्था को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। सम्राट ने कहा–'प्रधानमंत्री! आपके इतने बड़े परिवार की एकता का राज क्या है? मैं कारण जानना चाहता हूं।'

वृद्ध प्रधानमंत्री सम्राट की बात सुनकर कुछ क्षण तक मौन रहा। कुछ क्षण सोचकर उसने अपने एक पुत्र को कागज और पेंसिल लाने का संकेत किया। कागज आ गया तो उसने लिखना शुरू किया और बड़ी देर तक लिखता रहा। पन्ना पूरा लिख डालने के बाद उसे सम्राट के हाथ में दे दिया। सम्राट ने उसे पढ़ा। उस पूरे पन्ने में एक शब्द 'सहिष्णुता' को सौ बार दोहराया गया था। दूसरा कोई शब्द नहीं था।

प्रधानमंत्री ने धीरे से कहा–'सम्राट! शांतिपूर्ण सहवास का एकमात्र कारण है सहिष्णुता। मेरे परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे को सहन करना जानता है।'

अधिकांश लोगों में सहन करने की शक्ति नहीं होती। मन के प्रतिकूल कोई बात होती है तो उबल पड़ते हैं। पानी को गर्म करने में कुछ समय लगता

है, किंतु आदमी को गर्म करने में क्षणमात्र की भी देर नहीं लगती। पानी को गरम करने के लिए यत्न करना पड़ता है। चूल्हा, ईंधन, पात्र–इन सब चीजों का इंतजाम करना पड़ता है, किंतु आदमी को गरम करने के लिए किसी चूल्हे या हीटर की जरूरत नहीं पड़ती। कुछ अप्रिय शब्द ही पर्याप्त हैं उसे उबाल देने के लिए। पारा सीधा सौ डिग्री पर पहुंच जाता है।

अप्रिय बात को सहा जाए, यह जीने की कला है। सुख से जिंदगी बिताने की कला है, प्रगति करने की कला है। मघवा शताब्दी वर्ष के प्रसंग में एक बार आचार्य तुलसी ने कहा था–'तेरापंथ एक विशाल संगठन है। वह मात्र तीन बातों के आधार पर चल रहा है–समता, ममता और क्षमता। यही वजह है कि यह संगठन अक्षुण्ण बना हुआ है, अविच्छिन्न रूप से प्रगति कर रहा है।'

आचार्यश्री ने इसी प्रसंग में कहा–'दूसरे लोग तो यह सोचते हैं कि शिष्यों को सहन करना पड़ता है। मैं कहता हूं कि आचार्य को जितना सहना पड़ता है, उतना किसी को सहन नहीं करना पड़ता। आचार्य को संघ के सभी सदस्यों को सहना पड़ता है। आचार्य में असहिष्णुता आ जाए तो संगठन को टूटने में समय नहीं लगता।'

बीती ताहि बिसारि दे

सुखद संवास की चौथी कसौटी है–उपशांत कलह की उदीरणा न करना। आज सहन करने की शक्ति कम होती जा रही है। पाचन इतना कमजोर हो गया कि मामूली-सी बात को भी लोग पचा नहीं पाते। कोई बात पकड़ ली और फिर गांठ बांध ली। बातों को भुलाना भी सीखो। कोई बात हुई, वह चाहे अप्रिय बात ही हो, उसे सुनो और कुछ देर बाद उसे भुला दो, जैसे कुछ सुना ही न हो, कुछ हुआ ही न हो।

इतनी सारी बातों को दिमाग में रखोगे तो जीना दुर्लभ ही जाएगा। जो बात को भुलाना नहीं जानते, सहन करना नहीं जानते, वे संगठन के लिए उपयुक्त और उपयोगी नहीं बन सकते। वे हमेशा समस्या पैदा करते रहेंगे। वे ही आदमी समूह के लिए, संगठन के लिए उपयोगी, कल्याणकारी हो सकते हैं, जो घटना को भुलाना जानते हैं।

'बीती ताहि बिसारि दे'–यह लोकोक्ति बहुत विश्रुत है। परिवार में शांति का बहुत बड़ा हेतु बनता है–बीती बातों को भुलाना, उपशांत कलह की उदीरणा न करना। आज की एक बड़ी समस्या है कि कलह और झगड़ा शांत

हो गया तो कुछ लोग उसे फिर से हवा देने लगते हैं। उस बुझी हुई आग को फिर से भड़काने के लिए ईंधन देना शुरू कर देते हैं। शांत-सहवास उस व्यक्ति का होता है, जो उपशांत कलह की उदीरणा नहीं करता।

एक कहानी बहुत मार्मिक है, जिसे हमारे साधु-साध्वियां बहुधा सुनाते हैं। घर के आंगन में भोजन कर रहे श्रेष्ठी के सामने धूप आ गई तो पत्नी ने आंचल से आड़ कर दी, जिससे धूप का बचाव हो जाए। घर में चार ही प्राणी थे–सेठ, उसकी पत्नी, बेटा और पुत्रवधू। पत्नी द्वारा आंचल से धूप का बचाव करते देख सेठ को हंसी आ गई। रसोई में बैठी पुत्रवधू को श्वसुर के हंसने पर आश्चर्य हुआ। उसने सास-श्वसुर से तो कुछ नहीं कहा, किंतु शाम को सारी बात पति को बताई और पिता के हंसने का कारण पूछा। पति ने पत्नी से कहा–'पिताजी क्यों हंसे? यह जानकर तुम क्या करोगी?

पत्नी का आग्रह प्रबल हो गया। उसने कारण जानने की हठ पकड़ ली। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब कारण बताने में कोई टालमटोल करता है तो कारण जानने की जिज्ञासा और बढ़ जाती है। पति ने कहा–'कारण तो पिताजी ही बता सकेंगे। तुम चाहो तो मेरे सामने ही उनसे पूछ लो।'

पुत्रवधू ने संकोच के साथ श्वसुर से पूछा–'पिताजी! आज खाना खाते समय जब मांजी आपको धूप से बचाने का प्रयत्न कर रही थी तब आप अचानक हंस पड़े थे। मैं आपके हंसने का कारण नहीं समझ सकी। क्या हंसी का कारण आप बताएंगे?'

सेठ ने कहा–'मुझे अतीत की स्मृति हो आई। मुझे अपना वह दिन याद आया जब मैं गरीबी से जूझ रहा था। कठिनाई भरे दिन थे। तब घर में हम पति-पत्नी दो ही प्राणी थे। गरीबी अपने साथ और भी कई अवांछित चीजें लेकर आती है। उनमें से एक है कलह। आर्थिक तंगी से परेशान हम पति-पत्नी में आए दिन झगड़ा होता रहता था। कोई ऐसा दिन नहीं जाता था जब हम दोनों में किसी बात पर झगड़ा न होता।

एक दिन जब मैं घर के सामने स्थित कुएं में रस्सी लटकाए पानी खींच रहा था, आवेश में भरी तुम्हारी सास आई और मुझे धक्का दिया कि मैं सीधा कुएं में जा गिरा। यह तो मेरा सौभाग्य था कि लोगों ने तत्काल मुझे कुएं से खींच लिया, अन्यथा आज मैं दुनिया में न होता।

समय बदला, परिस्थितियां बदलीं और मेरा भाग्य भी बदला। आज मैं करोड़ों का मालिक हूं। एक स्थिति वह थी कि दाने-दाने का मोहताज था और एक स्थिति आज है कि मेरे पास सबकुछ है। पत्नी का व्यवहार भी पूरी तरह से बदल गया है। तुमने देखा ही होगा कि मेरे ऊपर थोड़ी-सी धूप भी वह अब बर्दाश्त नहीं कर पाती। समय के इस उलटफेर पर ही मुझे हंसी आ गई।'

पुत्रवधू को श्वसुर की हंसी के कारण का पता क्या चला, मानो उसके हाथ में ब्रह्मास्त्र आ गया। पुत्रवधू अवसर की तलाश में रहने लगी। अवसर भी जल्दी ही आ गया। एक दिन सास ने बहू की किसी बात पर अप्रसन्नता व्यक्त की तो बहू ने तमक कर कहा–'मुझे संस्कार देने की जरूरत नहीं, वह मैं अपने मां-बाप से लेकर आई हूं। मैं कम से कम उन लोगों में तो नहीं हूं, जो समय के साथ रंग बदलते हैं। पति को कुएं में धक्का देने की परंपरा मेरे पीहर में नहीं है और न मेरे मां-बाप ने मुझे इस तरह की शिक्षा दी है। पति के साथ हर परिस्थिति में प्रसन्न रहने की क्षमता मुझमें है। साथ रहने में अगर आपको कोई दिक्कत है तो उसके लिए आप सोचें। बात-बात पर सीख देने की आवश्यकता नहीं है।'

हमेशा चुप रहने वाली बहू का यह मुंहतोड़ जवाब सुनकर सेठानी सन्न रह गई। उसके मन को एक तीव्र आघात लगा। वर्षों की भूली-बिसरी बात और कड़वा प्रसंग उसकी आंखों में प्रत्यक्ष हो गया। किसने बताई बहू को यह बात? वह तनाव से भर गई। बहू का करारा व्यंग्य उसे बींधने लगा। अत्यधिक तनाव में भरकर उसने कुएं में कूदकर आत्महत्या कर ली। सेठ भी पत्नी का वियोग बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने भी जहर खाकर अपनी जान दे दी। मां और पिता की आत्महत्या का समाचार सुनकर पुत्र स्तब्ध रह गया। उसके दुःख का कोई पार नहीं था। उसका मन इस व्यथा से भर उठा कि इस घटना का कारण मैं हूं। उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगा। उसने भी जहर खाकर आत्महत्या कर ली। पुत्रवधू ने सोचा–जब पूरा परिवार ही समाप्त हो गया तो मैं अकेली जीकर क्या करूंगी? उसने छत से लटक रहे पंखे से रस्सी बांधी और गले में फंदा डालकर झूल गई। पूरा परिवार समाप्त हो गया। कारण एक ही बना–उपशांत कलह की उदीरणा।

जो कुछ अतीत में हो चुका, उसे भुला देना चाहिए। जो भुलाना जानता है, वह कभी अशांत नहीं बनता, उसका परिवार कभी बिखराब की त्रासदी

नहीं झेलता। परिवार में टूटन और बिखराव इसलिए होता है कि हम दूसरों की भूलों को भुलाना नहीं जानते। वह चिरकाल तक शांत सहवास का अनुभव कर सकता है, जो भुलाना जानता है, जो उपशांत कलह की उदीरणा नहीं करता। दूसरे की भूलों को क्षमा करना और उसे भुला देना शांति का रहस्य सूत्र है। पश्चिम के किसी धनपति ने एक कार्ययोजना बनाई और उस संदर्भ में एक विज्ञापन निकाला। विज्ञापन में 'फॉरगिवनेस' पर अनुसंधान या रिसर्च करने के लिए दस लाख डालर का एक कोष बनाया। हमें क्षमा के संस्कार विरासत में मिले हैं। हमारे यहां 'खमतखामणा' शब्द का बहुत प्रयोग होता है। मैं तुम्हें सहन करूं और तुम मुझे सहन करो। परस्पर की इस सहनशीलता को खमतखामणा कहा जाता है। यह जीने की सबसे सुंदर कला है और यही कला परिवार, संस्था, संगठन और संघ को दीर्घजीवी बनाती है।

गम खाना सीखें

सुखद संवास की पांचवीं कसौटी है–गम खाना। उपशांत कलह की उदीरणा न करें, यह जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही शांत सहवास के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि उत्तेजना के प्रसंग में शांत रहें। अप्रिय स्थिति में भी अनुद्विग्न बने रहें।

अकबर ने फतेहपुर सीकरी के एक सेठ के बारे में बीरबल से पूछा–'मैं इस सेठ को हमेशा प्रसन्न और स्वस्थ देखता हूं। इसके चेहरे पर शांति और प्रसन्नता का अपूर्व भाव दिखाई देता है। बीरबल! क्या तुम बता सकते हो कि यह क्या खाता है? मुझे इस धरती की हर बहुमूल्य चीज सुलभ है। महंगी से महंगी औषधि मेरे एक इशारे पर हाजिर हो सकती है, किंतु इतना ओज और तेज तो मेरे चेहरे पर भी देखने को नहीं मिलेगा। यह आदमी जरूर कोई विशिष्ट चीज खाता है। तुम बताओ, वह क्या खाता है?'

बीरबल ने बहुत गंभीर स्वर में कहा–'जहांपनाह! यह 'गम' खाता है।'

'कैसे?'

'किसी दिन गम खाते दिखा दूंगा।' बीरबल ने कहा।

एक दिन बादशाह और बीरबल छद्मवेश में उसकी दुकान के सामने से गुजर रहे थे। सेठ एक आदमी से बात कर रहा था। अचानक वह आदमी उत्तेजना में आ गया और सेठ के गाल पर चांटे जड़ दिए। इस घटना से सेठ

अप्रभावित रहा। उसे इतना ही कहते सुना–'कोई बात नहीं, दूसरी जगह भी भाव पूछ लेना। अगर तुम्हारे जचे तो फिर आ जाना और मेरी दुकान से यह चीज ले जाना।'

बीरबल ने अकबर से कहा–'हुजूर! मैंने आपसे कहा था कि यह आदमी गम खाता है। उत्तेजना और आवेश के क्षणों में भी उसका धैर्य अभी आपने देखा। सेठ के सामने वह आदमी कुछ भी नहीं है। चाहता तो अभी अपने आदमियों से इसे पिटवा देता, पर उसने ऐसा नहीं किया। यह गम बहुत बड़ा टॉनिक है। जो इसका सेवन करता है, वह कभी अशांत, अस्वस्थ हो ही नहीं सकता।'

अच्छा है तीसरा विकल्प

आपातभद्र और संवासभद्र व्यक्ति परिवार एवं संगठन के लिए सौभाग्य के सूचक होते हैं। वे पचास वर्ष और शताब्दी तक साथ रहें, तब भी भावों और विचारों में कोई अंतर नहीं आता, मन में कलुषता नहीं आती। आचार्य तुलसी के साथ मैंने ६७ वर्ष का जीवन बिताया। इतने लंबे अंतराल में प्रारंभ से लेकर अंत तक हमारे जीवन की सरसता बढ़ती ही गई, कभी घटी नहीं। मुनि जीवन के प्रारंभ में कोई गलती भी हो जाती तो आचार्य तुलसी उसे सहन कर लेते। उनकी ओर से कड़ा अनुशासन होता तो मैं सहन कर लेता। इस सहिष्णुता के सूत्र के कारण गुरु-शिष्य संबधों में कभी कोई नीरसता, कभी कोई कटुता नहीं आई । कभी कोई अप्रियता का भाव पैदा नहीं हुआ। बल्कि उत्तरोत्तर श्रद्धा, भक्ति, विनय और वत्सलता के भाव वृद्धिंगत होते रहे। आनंद का जीवन रहा।

वे लोग जो जीने की कला को सीखना चाहते हैं, इसका अनुभव करें, इसे सीखें। क्रोध, तनाव और लड़ाई-झगड़े के जीवन का कोई महत्त्व नहीं होता, उसमें कोई आनंद नहीं होता। निंदा, चुगली, आलोचना और कटुता का जीवन जीने वालों से पूछें कि जीवन का कितना रस उन्हें मिल रहा है? अगर ईमानदारी से बताएंगे तो उनका उत्तर पोजिटिव नहीं होगा। जीवन का रस उन्हें मिलता है, जो आपातभद्र और संवासभद्र होते हैं।

'आपातभद्र और संवासभद्र' यह एक अच्छा विकल्प है, अच्छी कला है। इस पर हम ध्यान दें तो बहुत आनंद का जीवन जी सकते है।

१०. शांतिपूर्ण जीवन और समन्वय का दृष्टिकोण

दुनिया में अनंत-अनंत प्राणी हैं। विश्व का एक-एक कण, आकाश का एक-एक प्रदेश जीवों से भरा हुआ है। इतने जीव हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, जिन्हें नापा नहीं जा सकता। असंख्य नहीं, अनंत-अनंत जीव हैं इस संसार में। इन सब जीवों में मनुष्य एक प्राणी है। उसकी अपनी मौलिक विशेषताएं हैं। जो विशेषताएं मनुष्य में हैं, वे दूसरे प्राणियों में नहीं हैं। अंतर्ग्रहीय या अंतर्नक्षत्रीय किसी भी भूखंड में रहने वाले प्राणी में मनुष्य जितनी विशेषता नहीं है। मनुष्य की तीन मौलिक विशेषताएं हैं–विचार, वचन और व्यवहार।

* विचार करने की जो क्षमता मनुष्य में है, वह किसी दूसरे प्राणी में नहीं है।
* वचन की जो शक्ति मनुष्य में है, वह किसी दूसरे प्राणी में नहीं है।
* व्यवहार की क्षमता भी जैसी मनुष्य में है, वैसी किसी प्राणी में नहीं है।

ये तीन ऐसी विशेषताएं हैं, जो मनुष्य को शेष सारे जगत के प्राणियों से विभक्त कर देती हैं। उसके अस्तित्व को विभक्त कर देती हैं, उसकी अलग पहचान बनाती हैं।

विकास का कारण

चिंतन मनुष्य की अपनी विशेषता है। अपने चिंतन के बल पर उसने बहुत विकास किया है। उसने अपने चिंतन से जगत को बदल दिया। वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में आदमी कहां से कहां पहुंच गया है। विचार ने साहित्य को जन्म दिया, कला को जन्म दिया, सैकड़ों-सैकड़ों नई शाखाओं को जन्म दिया। सबकुछ विचार के कारण हुआ। विचारशक्ति ने एक नई सृष्टि की और वह मनुष्य की मौलिक विशेषता बन गई।

समृद्ध शब्दकोश

मनुष्य की दूसरी विशेषता है वचन। पशु-पक्षी भी बोलते हैं, किंतु उनकी कोई विशेष भाषा नहीं है। उनका शब्दकोश बहुत सीमित है। उनके शब्दकोश से एक पृष्ठ भी पूरा नहीं भर पाता। किसी की भाषा में छह शब्द हैं, किसी की भाषा में पांच शब्द हैं और किसी की भाषा में दस शब्द हैं। मनुष्य ने भाषाकोश, शब्दकोश का इतना विस्तार किया कि लाखों-लाखों शब्दों का कोष बन गया। अगर संयोगी शब्दों का संग्रह करें तो करोड़ों शब्दों का कोश बन जाए। केवल हिन्दी भाषा का ही नहीं, अपितु संस्कृत, प्राकृत, जर्मन, अंग्रेजी, रशियन आदि दुनिया की अनेक भाषाओं के बहुत विशाल शब्दकोश हैं। मनुष्य की वचन-शक्ति के कारण ये संभव बने हैं। उसने बोलने के तरीकों का विकास किया है। कैसे बोलना चाहिए? कैसे गाना चाहिए? इन सबमें मनुष्य ने अपनी विशिष्टता और दक्षता का परिचय दिया है।

व्यवहार में निरंतर परिष्कार

मनुष्य की तीसरी विशेषता है व्यवहार। एक भैंसा हजार वर्ष पहले जैसा व्यवहार करता था, आज भी वैसा ही व्यवहार करता है। हजारों वर्ष पहले भी वह गाड़ी में जुतता था, आज भी वह गाड़ी में जुतता है। व्यवहार में कोई अंतर नहीं आया। गुस्सा आता है तो गुस्से का प्रदर्शन करता है और किसी को मार डालता है। सांप हजार वर्ष पहले भी फुफकारता था, आज भी फुफकारता है। हजार वर्ष पहले भी डंक मारता था, आज भी मारता है। व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसने अपने व्यवहार में परिवर्तन किया है, परिष्कार किया है। आज व्यवहार की कितनी शाखाएं बन गईं, व्यवहार के कितने शास्त्र बन गए, व्यवहार का मनोविज्ञान बन गया। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए–इन दो शब्दों-विधि और निषेध पर विशाल साहित्य रचा गया। विधिशास्त्र और निषेधशास्त्र का व्यापक विकास हुआ।

व्यवहार होता है त्रयात्मक

सन्मति तर्क की टीका में एक सुंदर प्रसंग आता है व्यवहार का। पूछा गया कि व्यवहार क्या है? उत्तर दिया गया–व्यवहार त्रयात्मक होता है। उसके तीन अंग हैं–प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा। किसी कार्य में प्रवृत्ति, किसी कार्य से निवृत्ति और किसी कार्य की उपेक्षा–व्यवहार के ये तीन आधार हैं। मनुष्य ने अपने सारे व्यवहार को तीन भागों में विभक्त कर दिया। वह किसी कार्य

में प्रवृत्त होता है, किसी कार्य से निवृत्त होता है और किसी कार्य की उपेक्षा करता है। जो अच्छा नहीं है, उसे छोड़ता है। जो उपादेय है, उसमें प्रवृत्ति करता है। जो उपेक्षणीय है, उसकी उपेक्षा करता है। प्रत्येक व्यवहार के ये तीन आधार बनते हैं। यदि सारे व्यवहार का समीकरण करें तो वह इन तीनों में समाहित हो जाएगा।

चिंतन का नया संदर्भ

विचार स्वगत होता है। व्यवहार अपने तक सीमित नहीं रहता। वचन और व्यवहार प्रसरणशील हैं, बाहर जाते हैं। हमारा वचन दूसरे तक पहुंचता है। हमारा व्यवहार दूसरे को प्रभावित करता है, दूसरे को छूता है।

विचार, वचन और व्यवहार–इन तीनों पर एक नई दृष्टि से विचार करना अपेक्षित है।

भगवान महावीर ने अनेकांत दृष्टि की प्रस्थापना की। इस विषय की विशद मीमांसा हुई कि हम अपने विचार, वचन और व्यवहार को पहले अनेकांत दृष्टि से देखें, फिर उसका प्रयोग करें। अनेकांत दृष्टि से देखने पर तीन बातें प्रतिफलित होंगी–

१. विचार का आग्रह न हो।

२. वचन का विवाद न हो।

३. व्यवहार का असंतुलन न हो।

विचार का आग्रह : एक आदत

सामान्यतः प्रत्येक आदमी में अपने विचार को अंतिम मान लेने की मनोवृत्ति होती है। यह वृत्ति एक आदमी में नहीं है, दुनिया के प्रायः सभी लोगों में है। किसी में कुछ कम है, किसी में कुछ अधिक। प्रत्येक आदमी सोचता है कि मैं जो सोचता हूं, वह बिल्कुल ठीक है, सही है। जिसमें विचार का आग्रह नहीं होता, उसके चिंतन में नित नए उन्मेष आते हैं। जिनमें विचार करने की क्षमता कम है, वे अल्पज्ञ हैं। प्रायः देखा जाता है कि जो व्यक्ति चिंतन से दरिद्र होते हैं, वे अपने विचार को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। वे सोचते हैं, उनका विचार किसी सर्वज्ञ से कम नहीं है। सर्वज्ञ भी शायद कहीं सोचने में भूल कर सकते हैं, किंतु वे जो सोचते हैं, उसमें कहीं भूल नहीं हो सकती। विचार का आग्रह एक आदर्श बन गया। यह आदर्श आनुवंशिक भी हो सकता है, पारंपरिक भी,

किंतु विचार का आग्रह मनुष्य की एक आदत बन गई है, यह स्पष्ट तथ्य है। जहां विचार मनुष्य की मौलिक विशेषता है, वहां विचार का आग्रह मनुष्य की मौलिक समस्या भी बना हुआ है।

वचन भी बनता है समस्या

वचन भी मनुष्य की विशेषता के साथ एक समस्या बना हुआ है। आदमी जल्दी ही विवाद खड़ा कर देता है। हर बात विवाद बन जाती है। सुजानगढ़ से लाडनूं कितनी दूर है? एक व्यक्ति कहेगा–बारह किलोमीटर दूर है। दूसरा कहेगा–बारह नहीं, तेरह किलोमीटर दूर है। आस-पास दस व्यक्ति खड़े हैं, किंतु उन सबका कथन भी अलग-अलग ही होगा। वचन एक जैसा निकल जाए–यह भाग्य से ही कहीं मिलता है। एक व्यक्ति कहेगा कि आज भोजन अच्छा बना है। दूसरा तत्काल प्रतिवाद करेगा कि क्या खाक अच्छा बना है, बिल्कुल खराब बना है। कोई कहेगा–नमक नहीं है। कोई कहेगा–नमक बहुत ज्यादा है और बात-बात में एक विवाद खड़ा हो जाएगा।

वचन हो और विवाद न हो–यह भाग्य से ही कहीं-कहीं खोजा जा सकता है। प्रत्येक वचन के साथ विवाद जुड़ा हुआ है और मनुष्य इस मौलिक समस्या से आक्रांत है।

समन्वय का दृष्टिकोण

व्यवहार भी एक समस्या है। कोई आदत बन गई और कहा जाए कि इस आदत को छोड़ो। यह आदत बुरी है। तंबाकू पीते हो, शराब पीते हो, मादक वस्तु का सेवन करते हो, पान-पराग खाते हो, जर्दा खाते हो, यह अच्छा नहीं है।

मनुष्य कहता है कि ये कैसे छूट सकते हैं? मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता। प्रायः ९० व्यक्ति यही कहेंगे कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। किसी की आदत है झगड़ा करना। उसे कहा जाए कि एक परिवार में साथ रहना है तो झगड़ा मत करो। उसका कथन होगा–नहीं, मैं नहीं बदल सकता। पूरा जीवन इसी प्रकार बिता दिया, इतने साल हो गए, अब क्या बदलूंगा? मैं नहीं बदल सकता, मैं नहीं बदलूंगा।

जब तक समन्वय का दृष्टिकोण विकसित नहीं होता, तब तक आदत को बदला नहीं जा सकता। छोड़ना, लेना और उपेक्षा करना–इन तीनों के

योग का नाम है समन्वय। अगर मनुष्य के व्यवहार में ये तीनों बातें नहीं हैं तो वह शांतिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। यदि हम पुरानी आदत को छोड़ना नहीं जानते, नई आदत का निर्माण करना नहीं जानते और कुछ बातों की उपेक्षा करना नहीं जानते तो झगड़ों और विवादों से बचा नहीं जा सकता।

पसंद नहीं है आदत को छोड़ना

समस्या यह है कि लोग जिस बात को पकड़ लेते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते। जिसकी जो आदतें बन गईं, वे बन ही गईं, उन्हें छोड़ना किसी को पसंद नहीं है। सबसे ज्यादा अगर कोई नापसंद चीज है तो वह है अपनी आदत को छोड़ने की बात। पसंद है टी.वी. देखना, पसंद है स्वादिष्ट भोजन करना और गप्पे हांकना। सब बातें पसंद आती हैं एक को छोड़कर। यदि अपनी आदत को कोई बदलने की बात कहे तो वह पसंद नहीं है। अपनी आदत से इतना मोह और इतना चिपकाव हो गया कि उसे छोड़ना ही नहीं चाहते।

एक दरिद्र आदमी था। उसने निश्चय किया कि कहीं बाहर चला जाऊं और कमाई कर पेट भरूं। फिर उसने सोचा कि चला तो जाऊंगा, पर यह दारिद्र्य साथ ही चलेगा तो फिर जाने से फायदा क्या होगा? वह एकांत में बैठा। एक योजना बनाई। उसने दारिद्र्य से कहा–दारिद्र्य! तुम बहुत अच्छे आदमी हो। मेरी बात सुनो। दारिद्र्य ने कहा–बोलो, क्या बात है? बात यह है कि मैं परदेश जाना चाहता हूं। तुम मेरा एक काम करो, यहां बैठे रहो और मेरे घर की रखवाली करो। यह बात मान लो और मुझे विदा करो। दारिद्र्य बोला–तुमने यह कैसी बात कही? सज्जन आदमी तो चले जाएं और मैं यहां रह जाऊं। यह नहीं हो सकता। तुम परदेश जाओगे तो मैं तुमसे आगे पहुंचूंगा। तुम्हारा संग छोड़ना मुझे कभी पसंद नहीं।

पहले है अपनी शांति

दारिद्र्य सज्जन को छोड़ना नहीं चाहता और आदत शायद आदमी को छोड़ना नहीं चाहती। वह आदत को बदलना नहीं चाहता। जब तक हमारी प्रवृत्ति और हमारे व्यवहार के साथ इन तीनों का समन्वय नहीं होगा, तब तक शांति की चर्चा सार्थक नहीं बनेगी। कहां प्रवृत्ति करना है, कहां निवृत्ति करना है और कहां उपेक्षा करना है–यह विवेक प्रखर होना चाहिए। हमें बुरी आदतों को छोड़ना है, अच्छी आदतों का निर्माण करना है और अपने आपमें संतुलित और मध्यस्थ रहना है। उपेक्षा का मतलब है मध्यस्थता। जब तक यह समन्वित

व्यवहार नहीं होता, तब तक हमें अपनी शांति की बात करने का भी अधिकार नहीं होता। सबसे पहले अपनी शांति का प्रश्न है, उसके बाद परिवार की शांति का प्रश्न पैदा होता है।

बड़ा जटिल प्रश्न है व्यवहार का। एक समाधान दिया गया कि सबसे पहले विचार का आग्रह छोड़ें। विचार के आग्रह को छोड़ने का उपाय निर्दिष्ट करते हुए कहा गया–

सह-अस्तित्व का बोध जितना प्रखर होगा, वैचारिक आग्रह छूटता चला जाएगा। सापेक्षता का दृष्टिकोण जितना प्रखर होगा, विचार का आग्रह छूटता चला जाएगा। विकसित हो सापेक्षता की समझ। जैन न्याय के दो प्रसिद्ध शब्द हैं–नय और दुर्नय। अनेक सत्यांशों को सापेक्षदृष्टि से देखना नय है और उन्हें निरपेक्ष सत्य मानना दुर्नय है। हमारा सारा व्यवहार। वचन और विचार सापेक्ष है। कोई भी विचार निरपेक्ष नहीं है कि इसका अर्थ है कि कोई भी विचार परिपूर्ण नहीं है। कोई भी वचन निरपेक्ष नहीं है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक वचन सत्यांश का वाचक है, पूर्ण सत्य का वाचक नहीं है। प्रत्येक व्यवहार सापेक्ष है, इसका अर्थ है कि देश, काल के अनुसार व्यवहार बदलता रहता है।

सापेक्षता की समझ विकसित होने पर विचार में अनाग्रह का विकास होता है, वचन विवाद से मुक्त हो जाता है और व्यवहार में बन जाता है प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा का संतुलन। इससे साधना का एक सूत्र हाथ लगता है कि हम प्रवृत्ति करने में स्वतंत्र हैं। अपेक्षित नई आदत का निर्माण कर सकते हैं। हम निवृत्ति करने में भी स्वतंत्र हैं। हम अवांछनीय पुरानी आदत को छोड़ सकते हैं। उपेक्षणीय क्षणों का मूल्यांकन करने में भी हम स्वतंत्र हैं। यह साधना का सूत्र नयवाद की बहुत बड़ी देन है। यह सूत्र स्वस्थ पारिवारिक और सामाजिक जीवन की आधारशिला बन सकता है।

११. पारिवारिक शांति का महामंत्र

एक डॉक्टर ने कहा–'महाराज! चंचलता बहुत है, क्रोध भी बहुत आता है।' मैंने कहा–'चंचलता अधिक है तो क्रोध तो आएगा ही।' उसने पूछा–

'यह क्यों होता है?' मैंने कहा–

'चंचलता का मुख्य कारण भीतर की वृत्तियों का दबाव है और क्रोध का मुख्य कारण है अहंकार।' उसने प्रतिप्रश्न किया–

'महाराज! क्रोध और अहंकार का क्या संबंध है?' मैंने कहा–'तुम्हारी पत्नी है। तुम उसे कुछ कहते हो और वह नहीं मानती है तब तुम्हारा चिंतन यह होता है कि मेरी पत्नी मेरी बात नहीं मानती। बस, इस बात से अहंकार इतना फुफकारने लगता है कि क्रोध उभर आता है।' डॉक्टर बोला–'महाराज! यही होता है, ऐसा ही होता है।'

पारिवारिक झगड़ों में क्रोध की मुख्य भूमिका है और क्रोध की पृष्ठभूमि में रहता है अहंकार। जितना प्रबल अहंकार, उतना प्रबल आवेश और जितना प्रबल आवेश, उतना ही संघर्ष। लोभ भी पारिवारिक कलह का एक कारण बनता है। दो भाई बंटवारा कर रहे हैं। बंटवारे में थोड़ा इधर-उधर हो गया। पिता ने किसी को अधिक दे दिया, किसी को कम दे दिया। जिसको कम मिलता है, उसका मन आक्रोश से भर जाता है।

क्रोध और लोभ–ये दोनों संघर्ष के बड़े कारण बनते हैं। रुचियां अलग-अलग, विचार अलग-अलग, सोचने के भिन्न-भिन्न प्रकार। अपने से भिन्न विचार के प्रति अरुचि पैदा हो गई, अप्रीति पैदा हो गई और समस्या की शुरुआत हो गई।

एक बहिन ने कहा–मुझे कुछ उपाय बताओ, मार्गदर्शन दो। वह यह

कहते हुए रोने लगी। मैंने उसकी दयनीय मुद्रा को देखा, दया आ गई। उसने कहा–क्या करूं? घर की स्थिति दुःखद है। श्वसुर का जैसा व्यवहार है, पति का भी वैसा ही व्यवहार है। बहुत बार इच्छा होती है आत्महत्या करने की।

ऐसा लगता है–पारिवारिक जीवन में समस्याएं कम नहीं हैं। यह स्वाभाविक है कि जहां एक से दो हुए, वहां समस्याओं का अनचाहा ढेर लग जाता है। जब घरों में जाते हैं, देखते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि कितना बढ़िया मकान है, कितनी साज-सज्जा है, सुख-सुविधा की पर्याप्त सामग्री है, किंतु जब उनकी समस्या सुनते हैं तब ऐसा लगता है कि बाहर जितना आकर्षण है, भीतर उतना ही क्रंदन है। बाहर से हंस रहे हैं, भीतर रो रहे हैं। यह दुःख कहीं बाहर से नहीं आया है, स्वयं आदमी पैदा कर रहा है। कारण स्पष्ट है–चित्त की पवित्रता नहीं है।

वहां होता है कलह

ध्यान के मुख्य दो परिणाम हैं–एकाग्रता और चित्त की निर्मलता। ध्यान से चित्त की मलिनता धुलती है, निर्मलता आती है। जहां निर्मलता होती है, वहां झगड़ा नहीं होता। सारे संघर्ष और झगड़े मलिनता में पैदा होते हैं। चंचलता में समस्याएं उलझती हैं। एकाग्रता आती है, समस्याएं सुलझना शुरू हो जाती हैं। जहां मलिनता है, वहां समस्याएं हैं। जहां निर्मलता है, वहां समस्याएं मिटती चली जाती हैं। जहां मलिनता है, वहां निषेधात्मक भाव ज्यादा होते हैं। जहां विधायक भाव हैं, वहां झगड़े नहीं होते, कलह नहीं होता, शांतिपूर्ण सहवास होता है। जहां निषेधात्मक विचार हैं, वहां कलह, संघर्ष और अशांति जन्म लेती है।

पौराणिक कहानी है–एक बार नारदजी जा रहे थे। मित्र ने पूछा–'ऋषिवर! कहां जा रहे हैं?'

'मैं अभी स्वर्ग में जा रहा हूं।'

'स्वर्ग तो मुझे भी दिखा दें। आज सहज मौका मिल गया है। आप मुझे भी ले चलें।'

'अच्छा मित्र! आओ, चलो।'

नारदजी ने मित्र को साथ ले लिया। स्वर्ग में पहुंचने के बाद नारदजी ने कहा–'देखो, यह सामने कल्पवृक्ष है। इसकी छांव में बैठ जाओ। मुझे काम है,

मैं दूसरी जगह जाकर आता हूं। तुम यहीं बैठे रहना। तुम्हें कोई भी आवश्यकता हो, मांग लेना, उसकी प्रार्थना करना। तुम जो चाहोगे, तुम्हें मिल जाएगा।'

नारदजी निर्देश देकर चले गए। वह व्यक्ति कल्पवृक्ष की छांव में बैठ गया। उसने सोचा–भूख लग गई। कितना अच्छा हो, खाने को भोजन मिल जाए। सोचने के साथ ही भोजन तैयार था। उसने भोजन कर लिया, सोचा–कितना अच्छा हो कि शय्या मिल जाए, सुखद फूलों की कोमल-कोमल शय्या। वैसे कोमल शय्या काम की नहीं होती, रीढ़ की हड्डी को बिगाड़ने वाली होती है, फिर भी बहुत सारे लोग कोमल गद्दों पर सोना चाहते हैं, भले ही रीढ़ की हड्डी की बीमारी को भोगते रहें। जैसे ही उसने सोचा, कोमल-कोमल फूलों की शय्या प्रस्तुत थी। वह सो गया। एक के बाद एक आकांक्षा जागती चली गई। सोचा कि अब कोई पगचंपी करने वाली अप्सराएं आ जाएं तो बहुत अच्छा हो। सोचने की जरूरत थी, अप्सराएं आईं और पगचंपी करने लग गईं।

सम्पूर्णानन्दजी ने लिखा-'खाकर सोता हूं तो पहले कुछ होता हूं और जब कोई पग दबाता है तब संपूर्णानन्द बन जाता हूं।' वह व्यक्ति सम्पूर्णानन्द बन गया।

वह सोचता है कि बहुत अच्छी पगचंपी हो रही है। इतने में मन में एक विकल्प जागा–अरे! मैंने यह क्या कर लिया? अगर घरवाली आ गई तो जरूर मुझे झाड़ू लेकर पीटेगी। बस सोचने की देरी थी, घरवाली हाथ में झाड़ू लिए तैयार थी। उसने झाड़ू से पीटना शुरू किया। वह शय्या से उठा और भागने लगा। आगे वह भागता जा रहा है और पीछे घरवाली दौड़ती चली जा रही है। दौड़ते-दौड़ते बहुत दूर चले गए। रास्ते में नारदजी मिल गए।

नारद ने देखा–अरे! स्वर्ग में यह क्या नाटक हो रहा है? यह तो वह मेरा मित्र लग रहा है। नारद ने कहा–'अरे! रुको। क्यों दौड़ रहे हो? क्या हुआ?'

'आप देखते नहीं, यह कर्कशा पीछे आ रही है। जहां मौका मिलता है, झाड़ू जमा देती है।'

नारदजी ने कहा–'अरे! यहां कहां से आई तुम्हारी पत्नी।'

'ऋषिवर! आपने कहा था–जो मुंह से मांगोगे, वह मिल जाएगा। मैंने भोजन की कल्पना की, भोजन मिल गया। शय्या चाही तो शय्या तैयार। सो गया। मन में आया, कोई पगचंपी करे तो अच्छा रहे। अप्सराएं तैयार थीं।

सोते-सोते मन में यह विचार आया–अगर पत्नी ने यह देख लिया तो मुझे झाड़ू से पीटेगी। इतने में तो पत्नी भी तैयार और झाड़ू भी तैयार। जब से यह आई है, तब से मैं डरकर भाग रहा हूं। मैं आगे और यह मेरे पीछे दौड़ रही है।'

नारद ने कहा–'मूर्ख! स्वर्ग में आ गया, कल्पवृक्ष के नीचे आ गया, फिर ऐसा बुरा विचार तुमने किया ही क्यों?'

नकारात्मक दृष्टिकोण व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़ता। अनेक व्यक्ति आते हैं और कहते हैं कि बुरे विचार आते हैं। पता नहीं, कितनी व्यापक बीमारी है। कुछ लोग कहते हैं कि बार-बार आत्महत्या का विचार आता है। कोई कहता है–किसी को मारने का विचार आता है। कोई कहता है–दुर्घटना का विचार आता है। भय, घृणा आदि बुरे विचार बहुत सताते हैं। यह नकारात्मक दृष्टिकोण, नकारात्मक विचार का भूत पीछे लगा हुआ है। शायद भूत कहीं पीछा भी छोड़ दे, पर नकारात्मकता का भूत पीछा नहीं छोड़ रहा है।

पैदा करें विधायक भाव

नकारात्मक दृष्टिकोण को बदलने का, नकारात्मक विचारों से बचने का उपाय है सकारात्मक भावों को पैदा करना। विधायक भावों की उत्पत्ति का मुख्य कारण बनता है ध्यान। ध्यान केवल एकाग्रता के लिए नहीं है। ध्यान वह है, जो चित्त की निर्मलता पैदा करे, क्रोध, मान, माया, लोभ का अल्पीकरण करे, जिसके द्वारा पुराने संस्कारों की निर्जरा हो।

जैन तत्त्वविद्या में नौ तत्त्व बतलाए गए हैं। उसमें दो महत्त्वपूर्ण हैं–संवर और निर्जरा। संवर का काम है–बाहर से जो गंदगी आ रही है, उसे रोक देना, दरवाजा बंद कर देना। जब-जब आंधियां आती हैं, मकानों के दरवाजे बंद हो जाते हैं, खिड़कियां बंद हो जाती हैं। दरवाजों को बंद कर देना, इसका नाम है संवर। भीतर जो कचरा जमा हुआ है, विजातीय तत्त्व है, उसे निकाल देना, उसका शोधन करना, इसका नाम है निर्जरा। सर्दी के मौसम में शीतलहर से बहुत लोग ग्रस्त होते हैं, टाइफाइड भी होता है। टाइफाइड का मुख्य कारण बनता है आंतों में जमा हुआ कचरा। प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा में कारण है विजातीय तत्त्व। जितना विजातीय तत्त्व जमा हुआ है, उतना ही आदमी ज्यादा बीमार पड़ता है। उसकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है।

जरूरत है विरेचन की

हर आदमी के भीतर कर्मों का, संस्कारों का विजातीय तत्त्व जमा हुआ है। उसका तब तक शोधन नहीं होगा, जब तक निषेधात्मक विचार आते रहेंगे। बहुत बुरे विचार आते हैं तो समझना चाहिए कि भीतर में बहुत कचरा जमा हुआ है, जुलाब लेने की जरूरत है, पेट की सफाई करने की जरूरत है, रेचन-विरेचन की जरूरत है। उसके बिना बुरे विचारों का आना बंद नहीं होगा। विरेचन करने के लिए ध्यान करना बहुत जरूरी है। ध्यान के द्वारा कर्मों की विरेचना होती है, निर्जरा होती है। ध्यान एक ऐसी अग्नि है, जो कर्म को जला डालती है। गीता में ज्ञान को अग्नि माना गया–**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः तमाहुः पण्डितं बुधाः**–ज्ञानी मनुष्य ज्ञान की अग्नि से कर्मों को दग्ध कर देता है, जला देता है। ध्यान ज्ञान से अधिक शक्तिशाली है। ज्ञान में थोड़ी चंचलता रहती है, किंतु ध्यान में एकाग्रता की स्थिति बन जाती है। चेतना का ध्यान, अपनी आत्मा का ध्यान मलिनता पैदा करने वाला ध्यान नहीं है। यह निर्मलता, ज्योति और प्रकाश का ध्यान है।

जो व्यक्ति आत्मा का ध्यान करता है, उसका चित्त निर्मल बन जाता है, मैल सारा छंट जाता है। व्यक्ति इस बात को लेकर ध्यान में बैठ जाए कि मैं चैतन्यमय हूं, राग और द्वेष करना मेरा स्वभाव नहीं है, प्रियता और अप्रियता मेरा स्वभाव नहीं है, लड़ाई करना मेरा स्वभाव नहीं है। मैं केवल ज्ञाता-द्रष्टा हूं। जिस व्यक्ति ने इस प्रकार अपने स्वभाव पर ध्यान करना शुरू कर दिया, उसके मन में बुरे विचार नहीं आते। बुरा विचार आने का रास्ता बंद हो जाता है। जो आत्मा का ध्यान नहीं करता, अपनी चेतना का ध्यान नहीं करता, रात-दिन सोते-उठते प्रिय-अप्रिय विचारों में उलझा रहता है, उसे बुरे विचार नहीं आएंगे तो और क्या आएगा? यह निश्चित मानें, जिस व्यक्ति में निरंतर पदार्थ की लालसा, सबकुछ पा लेने की भावना, ऐशो-आराम की भावना, नशे की वृत्ति है, वह नकारात्मक विचारों के प्रवेश को रोक नहीं सकता।

बुराई और पदार्थपरकता

हमने ऐसे हजारों-हजारों व्यक्तियों को देखा है, जिनके पास सबकुछ है, पर उनके जीवन में सुख नहीं है, शांति नहीं है। वे बुरे विचारों से दबे हुए हैं। कोई आत्महत्या की बात सोचता है, कोई घर से भाग जाने की बात सोचता है और कोई परहत्या की बात सोचता है। कोई किसी को लेकर भाग रहा है और

कोई किसी के पीछे पड़ रहा है। यह सारा क्यों हो रहा है? पदार्थपरक दृष्टिकोण बनेगा तो बुरा विचार अवश्य आएगा।

पदार्थपरकता और बुराई में गहरा संबंध है। जो व्यक्ति इन बुरे विचारों से अपने आपको बचाना चाहता है, उसके लिए निर्जरा करना बहुत आवश्यक है। पारिवारिक जीवन में जो बहुत सारे झगड़े चलते हैं, उनका कारण यही पदार्थपरकता बनती है। उसने वह चीज उसे दे दी और मुझे नहीं दी। उसने मुझे यह दे दिया और यह छीन लिया। अपने लड़के को नहीं दिया, दूसरों के लड़कों को मिल गया। ये सारी पदार्थ से जुड़ी बातें सुखद पारिवारिक जीवन को दुःखमय बना देती हैं।

पिता और पुत्र भोजन कर रहे थे। इतने में जोरदार आवाज हुई। पिता ने कहा–'कोई बर्तन फूटा है।'

पुत्र बोला–'हां, कोई कांच का बर्तन फूटा है और वह मेरी मां के हाथ से फूटा है।'

यह सुनते ही पिता को आवेश आ गया–'तेरी क्या आदत पड़ गई है। हमेशा अपनी मां की बुराई देखता है।'

'पिताजी! मैं ठीक कह रहा हूं।'

'जाओ, पहले पता करके आओ।'

लड़का भीतर गया और सारी स्थिति को जानकर बाहर आया, बोला–'पिताजी! मां कांच का बर्तन ला रही थी। वह मां के हाथ से गिरा और गिरते ही फूट गया। मां स्वयं यह बता रही थी।'

'बिना देखे तुम्हें पता कैसे चला?' पिता का आवेश विस्मय में बदल गया।

'अरे! इसमें आश्चर्य की क्या बात है? यह तो बिल्कुल साधारण बात है। मां के हाथ से फूटा और एक मिनट में आवाज बंद हो गई। अगर मेरी पत्नी के हाथ से फूटता तो घंटा भर तक वह आवाज बंद ही नहीं होती। उस टंकार के साथ झंकार भी होता रहता।'

बर्तन फूटने की टंकार तो एक मिनट में ही बंद हो जाती है, किंतु जो गालियां देने की झंकार है, वह घंटों तक चलती रहती है। यह सारा क्यों होता है? इसमें पदार्थ ही निमित्त बनता है। बड़े के हाथ से फूट जाए तो छोटा चुप

रह जाए और छोटे के हाथ से फूट जाए तो बड़े की झंकार कभी बंद नहीं होती। पदार्थ जगत में ये सारे झगड़े पैदा होते हैं।

हम इस सचाई को जान लें कि परिवार में जितना कलह और संघर्ष होता है, उसका एक प्रमुख कारण है पदार्थ। जो लोग पदार्थ का जीवन जीते हैं, रात-दिन पदार्थ के बारे में सोचते रहते हैं, वहां इनका होना अनिवार्य और अपरिहार्य है। इन्हें टालने का उपाय है आत्मा का ध्यान। जिसने चेतना का ध्यान किया, उसका पारिवारिक जीवन सुधर गया।

जैन साहित्य की एक प्रसिद्ध कथा है–अतुंकारी भट्टा। जब तक वह पदार्थ के प्रति प्रतिबद्ध रही, घर से निकाल दी गई, लोग उठाकर ले गए। खून निकाला गया। उसने बहुत पीड़ा का अनुभव किया। क्रोध के कारण, अशांति के कारण असह्य दुःख भोगा। जब उसे भान हुआ, वह संभल गई। पदार्थ से हटकर आत्मा की स्थिति में आ गई। पारिवारिक जीवन सुखद बन गया। वह शांति और क्षमा की मूर्ति बन गई। कहा जाता है कि देवता उसे विचलित करने आया, फिर भी वह विचलित नहीं हुई। उसके जीवन का एक चित्र यह था कि यदि उसे कोई तुंकारा दे दे तो वह उसका सिर फोड़ देती और एक चित्र यह बना कि वह सचमुच अतुंकारी बन गई। उसे तुंकारा देने वाला मिला ही नहीं।

पारिवारिक शांति का महामंत्र

हम आत्मा का ध्यान करें, आत्मा के बारे में सोचें कि मैं जड़ नहीं हूं, मैं पैसा नहीं हूं, मैं मकान नहीं हूं, मैं कपड़ा नहीं हूं, मैं आत्मा हूं। जैसे ही यह दृष्टिकोण बनेगा, जीवन का क्रम बदल जाएगा, सुख और शांति का स्रोत फूट पड़ेगा। जब तक यह दृष्टिकोण नहीं आएगा, तब तक अशांति और दुःख का जीवन बना रहेगा।

दोनों बातें हमारे सामने स्पष्ट हैं। एक ओर पारिवारिक जीवन की समस्याएं हैं और वे समस्याएं पदार्थपरक दृष्टिकोण के द्वारा उत्पन्न हुई हैं। उन्हें भोगना पड़ेगा, चाहे व्यक्ति कितना ही बड़ा बन जाए। जो व्यक्ति पदार्थ जगत से हटकर आत्मा के जगत में थोड़ा-सा भी प्रवेश पा गया, उसने अपने लिए सुख और शांति का मार्ग खोज लिया। ये दो रास्ते हैं, आप जिसे चाहें, उसे स्वीकार करें। शांतिकामी कभी इस सचाई की उपेक्षा नहीं कर सकता कि पदार्थाभिमुखता से आत्माभिमुखता की ओर प्रस्थान करना ही पारिवारिक शांति का महामंत्र है।

१२. आध्यात्मिक परिवार का मानचित्र

प्राचीन काल की बात है। एक राजा आखेट खेलने जंगल में गया। घने जंगल में पहुंचकर राजा ने देखा कि एक तेजस्वी साधु वृक्ष के नीचे आसन लगाए ध्यान-मग्न बैठा है। राजा साधु के निकट गया, प्रणाम कर पूछा– 'महाराज! हिंस्र पशुओं से भरे इस भयानक जंगल में आप अकेले कैसे? क्या आपको डर नहीं लगता?'

'मैं अकेला कहां हूं? मेरा परिवार मेरे साथ है।' ध्यानी साधु ने उन्मीलित नेत्रों से कहा।

राजा ने आसपास नजर दौड़ाई, लेकिन वहां कोई दूसरा दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने फिर पूछा–'कहां है आपका परिवार? यहां तो कोई भी दिखाई नहीं देता।'

साधु ने उसी धीर-गंभीर वाणी में कहा–'राजन्! हर चीज दिखाई नहीं देती। कुछ दृश्य है तो बहुत कुछ अदृश्य भी है।'

राजा ने कहा–'महात्मन्! मैं आपका आशय समझा नहीं। कृपया अपने परिवार का परिचय दें।'

साधु ने कहा–

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शांतिश्चिरं गेहिनी
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्
एते यस्य कुटुंबिनो वद सखे! कस्माद् भयं योगिनः॥

धैर्य मेरा पिता है, क्षमा मेरी जननी है, शांति मेरी सहचरी और संगिनी है। सत्य मेरा पुत्र है, दया मेरी भगिनी है, दिशाएं मेरा वस्त्र है और

ज्ञान मेरा आहार है। राजन्! जिसके ये स्वजन हैं, कुटुंबीजन हैं, उसे किस बात का भय?

सुंदर मार्गदर्शन

संन्यासी ने अपने परिवार का परिचय दिया। धैर्य, क्षमा आदि को परिवार के सदस्यों के रूप में बताया। परिचय बड़ा रहस्यपूर्ण था, लेकिन जो निस्पृह है, कामनाओं से दूर है और हर समय अपनी आत्मा में रमण करता है, वही ऐसी बात कह सकता है। राजा साधु की ओर देखता रह गया।

यह एक सुंदर मार्गदर्शन है। हर व्यक्ति के लिए दो परिवार चाहिए। एक परिवार से काम नहीं चलता। पिता परिवार का मुखिया होता है, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से एक पिता और होना चाहिए और वह है धैर्य। एक लौकिक पिता और दूसरा आध्यात्मिक पिता। लौकिक पिता वह है, जो जन्मदाता है। आध्यात्मिक पिता है धैर्य।

व्यक्ति को बचाने वाला इस दुनिया में कोई तत्त्व है तो वह धैर्य है। जल्दबाजी ठीक नहीं होती। आपत्तिकाल में भी धैर्य रखने की सीख दी गई है। विपत्तिकाल में आदमी का धैर्य जवाब दे जाता है, बुद्धि और विवेक कुंठित हो जाते हैं। उस समय आदमी बिना कुछ सोचे, जो मन में आता है, कर लेता है। यह उसके लिए हर तरह से नुकसानदायक होता है। जिसमें धैर्य नहीं होता, वह न तो समय की प्रतीक्षा करता है, न किसी दूसरे की प्रतीक्षा करता है, मनचाहा कर लेता है।

लाख रुपए से भी अधिक मूल्यवान श्लोक

संस्कृत साहित्य की एक प्रसिद्ध कहानी है। महाकवि भारवि ने अपने जीवन के अंतिम क्षण में अपने पुत्र से कहा–'कवि होने के कारण मेरे पास बहुत बड़ी संपदा नहीं है। जाते समय एक श्लोक तुम्हें दे रहा हूं। जब कभी तुम्हें जरूरत पड़े। एक लाख रुपये में इसे बेच देना। ध्यान रहे–इससे कम में मत बेचना।'

वह समय ऐसा था, जब भारतवर्ष में संस्कृत-प्राकृत भाषा और उसके काव्य का मूल्य हुआ करता था। कालिदास के समय में राजा भोज संस्कृत कवियों की रचनाओं से प्रसन्न होकर कभी-कभी उन्हें रत्नों से तोल दिया करते थे।

मैंने स्वयं कालूगणी का युग देखा। उस समय भी संस्कृत के कवियों का अपना महत्त्व होता था। पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी और दूसरे साधु संस्कृत कवियों में शामिल थे।

उस समय कोई अपनी नई रचना सुनाता तो अक्सर कहता–'अब सुनो, मैं लाख रुपये का एक श्लोक सुनाता हूं। रुपया तो नहीं था, किंतु उस श्लोक का मूल्य एक लाख रुपये होता था। महाकवि भारवि ने श्लोक पुत्र को देते हुए कहा–'इसे एक लाख से कम में मत बेचना।'

कालचक्र का योग, महाकवि के पुत्र की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई। कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। तभी पिता द्वारा दिए गए उस श्लोक की स्मृति आई, लेकिन श्लोक के एक लाख कौन दे? ग्राहक कहां मिले? उस समय साप्ताहिक बाजार की प्रथा थी। सप्ताह में एक दिन बहुत बड़ा बाजार लगता। तरह-तरह की चीजों को लेकर व्यापारी आते। अपना माल बेचते। संध्या के समय बाजार बंद होता। यह नियम था कि जिसकी जो चीज बिक नहीं पाती, उसे नगरसेठ खरीद लेता।

भारवि-पुत्र भी अपने पिता द्वारा रचित उस श्लोक को लेकर बाजार में गया। दिनभर बैठा रहा। ग्राहक श्लोक को देखते, मूल्य पूछते और एक लाख रुपया मूल्य सुनते ही उठकर चले जाते। शाम हो आई, श्लोक नहीं बिका। नियम के अनुसार वह श्लोक नगरसेठ ने खरीद लिया। उस श्लोक को उसने मंडित कर अपने कमरे की दीवार पर लगा दिया।

कालांतर में नगरसेठ की आर्थिक स्थिति भी यथावत् न रह सकी। धनार्जन के लिए उसने दूसरे देश में व्यापार करने का निश्चय किया। उस समय व्यापारिक काम के लिए यात्रा इस तरह नहीं होती थी कि दिल्ली से प्लेन द्वारा तीन घंटे में मुम्बई पहुंच गए। उस समय यात्रा महीनों की नहीं, वर्षों की होती थी। दूर जाने, कमाने और वहां से आने में पूरा दशक लग जाता। इस बीच पत्र-व्यवहार आदि नहीं के बराबर होता था। मात्र संदेश भेजे जाते थे, वह भी अगर कोई दूसरा उस देश में जाने या आने वाला होता तो।

दस वर्ष की कमाई के बाद सेठ ने घर लौटने का निश्चय किया। प्रलंब यात्रा के बाद जब वह गांव में पहुंचा तब रात हो चुकी थी। उस समय प्रकाश की बहुत सुविधाएं नहीं थीं। घने अंधकार में डूबी अपनी हवेली के द्वार पर

आया। दरबान ने दरवाजा खोला। सेठ हवेली में दाखिल हुआ। अपने कमरे के सामने गया। उस समय उसने जो दृश्य देखा, उसके शरीर में मानो आग लग गई। उसने अंधेरे में विस्फारित आंखों से देखा कि एक शय्या पर दो व्यक्ति सो रहे हैं। एक तो उसकी पत्नी, जिसे उसने तत्काल पहचान लिया, दूसरा एक किशोर, जिसे वह पहचान नहीं सका। सेठ का दिमाग घूम गया। उसने सोचा कि दीर्घकाल तक उसकी अनुपस्थिति ने पत्नी को दुश्चरित्र बना दिया। उसकी भृकुटी तन गई, नेत्र लाल हो गए। तत्काल हाथ कमर पर बंधी तलवार पर गया।

क्रोधाविष्ट सेठ ने जैसे तलवार को हाथ में लिया, उसका ध्यान दीवार पर फ्रेम में मंढे इस श्लोक पर चला गया–

सहसा विदधीत न क्रियाम्
अविवेकः परमापदां पदम्।

सेठ ने तलवार सहित उठा हुआ हाथ नीचे कर लिया। आवाज देकर पत्नी को जगाया। पत्नी जगी, पति को देखकर बहुत प्रसन्न हुई, लेकिन पति के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही वह सहम गई। इतना ज्यादा नाराजगी का भाव। आखिर हुआ क्या?

पत्नी कुछ पूछती, इससे पूर्व ही सेठ की रोषपूर्ण आवाज सुनाई दी–'यह साथ में सोया हुआ कौन है?'

'स्वामी! आपका पुत्र! और कौन हो सकता है? आप गए थे तो पांच वर्ष का था, अब पंद्रह का हो गया है, किंतु सोता अभी भी मेरी ही गोद में हैं।

पत्नी के यह कहते ही सेठ का सारा क्रोध समाप्त हो गया। उसने दृष्टि ऊपर उठाकर कहा–'इस श्लोक ने आज स्वयं के हाथों से होने वाले महान अनर्थ से मुझे बचाया है। यह श्लोक एक लाख का नहीं, बल्कि एक करोड़ से भी अधिक मूल्य का है।' धैर्य के महत्त्व को इस कहानी से समझा जा सकता है।

क्षमा और अभय

क्षमा को जननी कहा गया। धरती या धरित्री को क्षमा कहा जाता है। वह मां की तरह अपनी संतानों का लालन-पालन करती है। मुनि के लिए दशवैकालिक सूत्र में कहा गया–**पुढवि समो मुणी हवेज्जा।** संस्कृत कोश में

भूमि या पृथ्वी का नाम क्षमा है। उपनिषद् में कहा गया–**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** भूमि माता है और मैं पृथ्वी का बेटा हूं। धरती जैसा सहनशील दूसरा कौन हो सकता है?

इस तरह लौकिक और आध्यात्मिक–इन दो परिवारों के साथ जो जीता है, वह कभी भयभीत नहीं हो सकता। यह युग भय का युग है। हर आदमी डरा हुआ है। यह डर कई तरह का है। सत्ता और ऊंचे पद पर है तो पद से हटा दिए जाने का भय। व्यापारी है तो आयकर, बिक्रीकर, छापे का डर। सरकारी कर्मचारी है तो अधिकारी के रुष्ट हो जाने का डर। धन को सुख देने वाला कहा गया है, किंतु यह दुःख भी बहुत देता है। यह भय भी कारण है। भय तनाव का सबसे बड़ा कारण है। जो क्षमाशील है, वह कभी भयभीत नहीं होता और उसे किसी तरह का तनाव भी नहीं होता।

शांति मेरी सहचरी है। वह छाया की तरह निरंतर मेरे साथ रहती है। मैं निरंतर शांति और आनंद का अनुभव करता हूं। तनाव शब्द मेरे जीवन के शब्दकोश में ही नहीं है।

संन्यासी ने कहा–सत्य मेरा पुत्र है। मैंने जीवन की सचाई को समझा है। मैंने यह अनुभव किया है कि इस दुनिया में कोई किसी को त्राण नहीं देता। अपनी आत्मा ही त्राण बनती है।

दया और अहिंसा मेरी भगिनी है। मैं दया और अहिंसा धर्म का निरंतर संरक्षण करता हूं। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्राणी को कष्ट देने की भावना भी नहीं उभरती। सबके साथ मैत्री और आत्मतुला की भावना का अनुशीलन करता हूं।

मन का संयम है भ्राता

मेरा भाई है मन का संयम। भारतीय साहित्य और विशेषकर संस्कृत साहित्य में 'बंधु' और 'भ्राता' शब्द को बहुत महत्त्व दिया गया है। आचार्य हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने महापुरुषों और तीर्थंकरों के लिए लिखा–**त्वं बंधुरबन्धूनाम्।** आप उनके बंधु हैं, जिनके कोई भाई नहीं है। सहयोग करने में भाई से बड़ा कोई नहीं। भाई को 'भुजा' कहा गया है। भाई के चले जाने पर अक्सर लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं–'मेरा तो हाथ ही कट गया।' हर परिस्थिति में भाई का बड़ा सहारा होता है।

समस्या पैदा करने वाला है कि मन का असंयम। इन्द्रियां भी समस्या पैदा करती हैं, लेकिन मन समस्या पैदा करने में उनसे भी कहीं आगे है। जिसने मन का संयम करना सीख लिया, इन्द्रियों और मन की मांग में विवेक करना सीख लिया, वह कभी भयभीत नहीं होता। यह आध्यात्मिक परिवार हर किसी को नहीं मिलता, किंतु जिसे मिलता है, उसे फिर चारों ओर से अभय का कवच प्राप्त हो जाता है।

आध्यात्मिक परिवार बनाएं

आपके सामने प्रश्न है कि आपने अपना आध्यात्मिक परिवार बनाया या नहीं? अगर आध्यात्मिक परिवार आपने बनाया है तो फिर आपको किसी चीज का डर नहीं होना चाहिए, बिना तनाव के आप जी सकेंगे। आध्यात्मिक परिवार नहीं बनाया, केवल लौकिक परिवार के भरोसे रह रहे हैं तो फिर आप निश्चिंत नहीं रह सकते। किसी के द्वारा कभी भी आपको धोखा दिया जा सकता है। आज के युग में लौकिक भाई, पत्नी, पुत्र किसी का भी भरोसा नहीं किया जा सकता। ये सब समय के साथी हैं। समय खराब आया तो एक-एक कर सभी साथ छोड़ देंगे। इसलिए हर समझदार व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह केवल लौकिक परिवार के भरोसे न रहे, अपना आध्यात्मिक परिवार भी बनाए। दायां और बायां–दोनों पक्ष मजबूत हैं तो आदमी शक्तिशाली होता है। दोनों में से एक भी पक्ष कमजोर हुआ तो शक्ति कमजोर हो जाएगी।

वे सदा सुखी रहते हैं, जिन्होंने अपना आध्यात्मिक परिवार बनाया है। आप इस सचाई का अनुशीलन करें और आज से ही अपना आध्यात्मिक परिवार बनाना शुरू कर दें। वर्तमान युग की समस्या यह है कि हमारा जितना ध्यान पदार्थ पर जा रहा है, उतना ध्यान चेतना पर नहीं है। भौतिकवाद इतना हावी हो गया कि व्यक्ति दुःख पाता हुआ भी पदार्थ को छोड़ नहीं पा रहा है। इसलिए भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का एक संतुलन बने, यह आवश्यक है।

विमर्शनीय प्रश्न

लौकिक चीजों का वियोग आदमी को संत्रस्त करता है, फिर भी व्यक्ति उसमें लिप्त हो रहा है, अपना आध्यात्मिक परिवार नहीं बना रहा है। यदि आध्यात्मिक परिवार विकसित होता तो पत्नी या पुत्र के चले जाने पर भी

आर्त्तध्यान नहीं होता। तिजोरी से लाखों रुपये और जवाहरात लूट लिए जाने पर भी व्यक्ति आंसू नहीं बहाता। दृश्य और अदृश्य की अद्‌भुत माया है। माल-खजाना सामने है, इसलिए उसके चले जाने का दुःख है, किंतु हर दिन हमारी आयु का एक-एक क्षण कोई चुरा रहा है, इसका दुःख नहीं है। हमारी वृत्तियों पर लोभ-लालसा, अहंकार जैसे विषैले जंतु अपना अड्डा जमाए बैठे हैं, हमसे मनचाहा करवा रहे हैं, इस परतंत्रता का दुःख नहीं है। क्या यह विमर्शनीय स्थिति नहीं है?

जिस व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना जाग जाती है, उसकी सारी दुनिया बदल जाती है। वह न कभी भयभीत होता है, न कभी शोक और मोह करता है। हम सब इस पर चिंतन करें कि हमें एक नए परिवार का निर्माण करना है और वह है आध्यात्मिक परिवार। लौकिक और अलौकिक–दोनों परिवारों के साथ जीने वाला कभी अशांत नहीं बनता। वह शांति और सुख के स्रोत को उपलब्ध कर लेता है।

१३. जरूरी है अपना घर

विश्व की प्रमुख समस्याओं का आकलन किया जाए तो तीन मुख्य समस्याएं सामने आएंगी–रोटी, कपड़ा और मकान। ये प्राथमिक समस्याएं हैं–खाने को रोटी, पहनने को कपड़ा और रहने को मकान चाहिए। आज संसार की समस्त सरकारों के सामने ये तीन बड़ी समस्याएं हैं।

इनकी व्यवस्था करना प्रत्येक सरकार का दायित्व होता है। आवास की व्यवस्था के लिए बहुत बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाई जाती हैं। कोई भी आदमी ऐसा न रहे, जिसका अपना घर न हो, हर व्यक्ति को अपना घर मिले।

घर जीवन का आधार होता है। इस आधार पर संसारभर के मनुष्यों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है–गृहस्थ और अनगार। इन दो वर्गों में सारे लोग समा जाएंगे। एक वर्ग में गृहस्थ हैं, जो घर में रहने वाले हैं। दूसरे वर्ग में अनगार हैं, जिनका अपना कोई घर नहीं है। अनगार शब्द मुनित्व या संन्यास का वाचक शब्द है। घर के आधार पर ये वर्ग बने हैं। एक ने घर को त्याग दिया और एक ने घर को अपना बना लिया।

जो व्यक्ति समझदार होता है और जिसके पास पैसा होता है, वह घर बनाने की बात सोचता है। उसके लिए ऐसा करना आवश्यक होता है। वह आखिर रहे कहां? व्यक्ति खुले आकाश में कैसे रहे? वर्षा आती है, धूप आती है, आंधी और लूएं चलती हैं। व्यक्ति इनसे कैसे बचे? खाने को रोटी चाहिए। बाजार से खरीद कर अनाज लाए तो उसे कहां रखे। रखने के लिए भी स्थान चाहिए।

घर बनाने की संज्ञा पशु-पक्षियों में भी है। पशु भी अपना घर बनाते हैं, मांद बनाते हैं। चूहे भी अपना बिल बनाते हैं। बहुत सारे पक्षी भी अपना घर बनाते हैं। बया का घर बहुत सुंदर होता है। आकाश में उड़ने वाले पक्षी और धरती पर रहने वाले पशु भी अपना घर बनाते है।

शृंखला समस्याओं की

मुनि के लिए घर कोई समस्या नहीं है, किंतु गृहस्थ के लिए आवास का प्रबंध एक बड़ी समस्या है। उपाध्याय विनयविजयजी ने गृहस्थ की समस्याओं का सुंदर आकलन किया है–

प्रथममशनपानप्राप्तिवांछाविहस्ताः
तदनुवसनवेश्माऽलङ्कृतिव्यग्रचित्ताः।
परिणयनमपत्यावाप्तिमिष्टेन्द्रियाऽथान्,
सततमभिलषन्तः स्वस्थतां क्वाऽश्नुवीरन्॥

पहली समस्या है–मनुष्य भोजन-पानी को उपलब्ध करने की इच्छा से व्याकुल है।

दूसरी समस्या है–वस्त्र, घर और अलंकार की प्राप्ति के लिए उसका चित्त व्यग्र बना हुआ है।

तीसरी समस्या है–उसमें विवाह, संतान-प्राप्ति और मनोज्ञ इन्द्रिय-विषयों को पाने की अभिलाषा बनी हुई है।

इस स्थिति में वह शांति को कैसे उपलब्ध हो सकता है?

जीवन में कितनी समस्याएं हैं? समस्याओं की एक लंबी शृंखला है। उपाध्याय विनयविजयजी ने आज से पांच सौ वर्ष पहले जिन समस्याओं को उभारा, वे आज के समाजवादी युग में भी बनी हुई हैं। आज का मनुष्य भी इन समस्याओं से आक्रांत है। इन समस्याओं में मकान की समस्या एक बड़ी समस्या है।

जरूरी है अपना घर

मैं अनेक बार यह प्रश्न पूछता हूं कि क्या आपने अपना घर बनाया या नहीं? जब तक आदमी का स्वयं का घर नहीं होता, तब तक वह आश्वस्त नहीं होता और दुःखी बना रहता है। खुले आसमान के नीचे वह रह नहीं सकता। धूप, सर्दी-गर्मी, वर्षा, आंधी और ओलों से बचाव के लिए हर आदमी को अपने सिर के ऊपर एक छत चाहिए। जैसे रहने के लिए घर जरूरी है, वैसे ही आनंदमय जीवन जीने के लिए एक आंतरिक घर जरूरी है। मिट्टी, ईंट-पत्थर का घर हमें बाहरी परिस्थितियों से बचाता है, किंतु जीवन में मौसमी तूफान ही नहीं, कभी-कभी विचारों का भयानक तूफान भी आता है। उस स्थिति में आदमी अपने आपको संभाल नहीं पाता।

मेरा दूसरा प्रश्न होता है–बाहर से सुरक्षा के लिए आपने घर और बंगले बनवा लिए, भीतर की सुरक्षा का कोई इंतजाम किया या नहीं? घर को बनाने के लिए जैसे मिट्टी, चूने और पत्थर की जरूरत होती है, वैसे ही आंतरिक घर के लिए भी आवश्यक मेटेरियल की जरूरत पड़ती है। जो आदमी अपने घर का निर्माण नहीं कर पाता, उसे विश्राम नहीं मिलता। पक्षी उड़ते हुए थक जाता है तो उसे भी अपने नीड़ में कुछ समय तक विश्राम करने की आवश्यकता पड़ जाती है। आदमी भी थकता है, काम करते समय भी थकता है, वातावरण के कारण भी थकता है, दूसरों के आक्रोश से भी थकता है, स्वयं के तनाव और क्रियाकलाप भी उसे थका देते हैं। वह कोई जड़ वस्तु नहीं है, हाड़-मांस का पुतला है। उसकी अपनी क्षमताएं हैं, सीमाएं हैं। एक सीमा के बाद वह शक्तिहीन हो जाता है। विश्राम के लिए जरूरी है कि व्यक्ति का अपना घर हो।

नमि राजर्षि अपने राज्य को छोड़कर मुनि बनने के लिए उद्यत हुए। उस समय किसी दिव्य आत्मा ने उनसे कहा-'राजर्षि! अभी तो आपको बड़े-बड़े भवनों का निर्माण कराना है। आप उन्हें बीच में अधूरा छोड़कर जा रहे हैं?'

नमि राजर्षि बोले–**जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा तत्थ कुव्वेज्ज सासयं**–इतने दिन मैंने जो भवन बनाए, उनकी स्थिति बीस-तीस, चालीस-पचास-सौ वर्ष बाद क्या होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। क्या वे भवन स्थायी रहेंगे या खंडहरों में परिवर्तित हो जाएंगे? ये अशाश्वत घर तो मैंने बहुत बना दिए। अब मैं शाश्वत घर के निर्माण का प्रयत्न कर रहा हूं। वह घर, जो कभी पुराना नहीं होता, कभी गिरता नहीं, कभी नष्ट नहीं होता।

केवल एक कमी है

एक राजा ने बड़ा प्रासाद बनाया। वह अत्यंत मजबूत और भव्य था। लोग आते, उसे देखते और साधुवाद देते, मकान की भव्यता की सराहना करते। चारों ओर से प्रशंसा के शब्द सुनकर राजा बहुत प्रसन्न होता। एक दिन एक अकिंचन, उदासीन संन्यासी आया। राजा स्वयं संन्यासी के साथ गया। उसे अपना मकान दिखाने लगा। एक-एक कर सारे कक्ष दिखाए, पर कहीं भी प्रशंसा का एक शब्द संन्यासी के मुंह से नहीं निकला। राजा ने सोचा–ये मुनि लोग कंजूस होते हैं, किसी की प्रशंसा करना जानते ही नहीं हैं। ऐसा बढ़िया मकान देखकर मुंह से कुछ बात निकलनी चाहिए, पर एक भी शब्द नहीं निकला। सारा मकान देखकर जैसे ही दोनों बाहर आए, राजा

बोला–'महाराज! आपने मकान देख लिया। आपको कैसा लगा मेरा मकान?'

संन्यासी ने कहा–'जैसा है वैसा लगा।'

राजा का काम बना नहीं। जब मन में प्रशंसा पाने की आकांक्षा जाग जाए और प्रशंसा से भरे शब्द व्यक्ति के कानों में न पड़े तो व्यक्ति बैचेन हो जाता है।

प्रशंसा सुनने के लिए व्याकुल राजा ने कहा–'महाराज! आप देखिए, इस मकान के खंभे कितने मजबूत हैं? सामने वाला हॉल हजारों खंभों वाला है।' वर्तमान युग में खंभा न होना शिल्प के महत्त्व का सूचक है। प्राचीन युग में खंभों का अधिक होना महत्त्वपूर्ण माना जाता था। राजा कहता चला गया–'इस मकान की छतें कितनी नक्कासीदार हैं, कितनी भव्य और आकर्षक हैं?'

संन्यासी सबकुछ सुनता रहा, किंतु उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। राजा से रहा नहीं गया। वह बोला-'महाराज! कुछ तो कहें। आपको यह सुंदर मकान कैसा लगा? यह सुनने के लिए मैं अत्यंत उत्सुक हूं।'

'राजन्! मकान जैसा है, वैसा लग रहा है। यह अच्छा बना है, मजबूत बना है। इसमें समय, शक्ति और धन का प्रचुर उपयोग हुआ है, पर इसमें एक कमी खटक रही है।'

'क्या कमी खटक रही है? मैं उसे तत्काल पूरी करवा दूंगा।'

'यह मकान चिरस्थायी हो सकता है, किंतु इसमें रहने वाला कोई स्थिर नहीं है।'

शाश्वत घर : स्वरूप एवं सामग्री

यह शाश्वत घर क्या है? इस पर विचार करें तो कुछ नए तथ्य सामने आते हैं। एक आचार्य ने मुनि की तुलना पांच तत्त्वों से की हैं। ये पांच तत्त्व हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। हमारी अंगुलियां भी पांच ही हैं। प्रश्न होगा–अंगुलियां पांच क्यों? इस संदर्भ में यह बात ज्ञातव्य है कि हमारे शरीर में पांच प्राणधाराएं हैं। ये पांचों प्राणधाराएं इन पांच अंगुलियों के माध्यम से प्रवाहित होती हैं। इसी के आधार पर प्राण-चिकित्सा, एक्युपंक्चर, एक्युप्रेशर की पद्धतियां विकसित हुई हैं।

तत्त्व विद्या के अनुसार हमारी कनिष्ठा अंगुलि का आधार है जल तत्त्व, अनामिका का आधार है पृथ्वी तत्त्व, मध्यमा का आधार है आकाश तत्त्व,

तर्जनी का आधार है वायु तत्त्व, अंगुष्ठ का आधार है अग्नि तत्त्व। ये पांच तत्त्व जीने के लिए बहुत आवश्यक हैं। मेरुदंड से लेकर पूरा अस्थितंत्र तक हमारा पृथ्वी तत्त्व है। जल तत्त्व का भाग भी बहुत अधिक है।

शरीर का अस्सी प्रतिशत भाग पानी ही है। ठोस भाग बहुत कम है। इसीलिए हमारा शरीर पानी से बहुत प्रभावित होता है। अग्नि हमारे पाचनतंत्र का सहायक तत्त्व है। हम जो भोजन करते हैं, वह अग्नि के द्वारा ही पचता है। अग्नि के कारण ही शरीर में तेज होता है और उसी के द्वारा शक्ति बनती है। इसी तरह वायुतत्त्व और आकाशतत्त्व भी हमारे शरीर के भीतर हैं।

इन पांच तत्त्वों से हमने अपना रहने का घर बना लिया और इन्हीं पांच तत्त्वों से अपना शरीर बना लिया। यह घर भी पौद्गलिक है, भौतिक है और यह शरीर भी पौद्गलिक है, भौतिक है। हमें अपना घर ऐसा बनाना है, जहां हम शांति से रह सकें। हमें अपने भीतर घर का निर्माण करना है तो उस घर के निर्माण में पृथ्वी तत्त्व होगा–क्षमा और सहिष्णुता।

जल तत्त्व होगा–प्रसन्नता और निर्मलता। पानी में निर्मलता होती है, वैसे ही हमारे विचारों में, हमारी भावधारा में प्रसन्नता रहे, निर्मलता रहे। प्रसन्नता को यहां ठीक से समझ लेना जरूरी है। निर्मलता ही प्रसन्नता है। राजी होना प्रसन्नता नहीं है। बच्चा रो रहा था। मां ने उसे टॉफी दे दी, बच्चा चुप हो गया। वह प्रसन्न नहीं, राजी हो गया। प्रसन्नता अलग चीज है। वह है निर्मलता।

पानी निर्मल है तो मलसहित को भी वह निर्मल बना देता है। पानी का स्वभाव ही है निर्मलता। उसे एक बार गंदा कर दें तो थोड़ी देर में वह फिर अपने निर्मल स्वरूप को प्राप्त करने की कोशिश शुरू करेगा। वह अपनी तरह दूसरों को भी निर्मल बनाता है, इसीलिए किसी भी चीज की सफाई में उसका सहयोग लिया जाता है। बहुत सारी चीजों की धुलाई जल के द्वारा होती है।

जहां कोई नकारात्मक विचार नहीं, नकारात्मक भाव नहीं, सदा पवित्रता बनी रहती है, वह गुण जल में होता है। सहिष्णुता की मिट्टी मिल गई, प्रसन्नता और पवित्र विचारों का जल मिल गया।

भीतरी घर का निर्माण करने के लिए तीसरा तत्त्व होगा तप की अग्नि। यह हमारे पुराने संस्कार और कर्म को जलाने वाली है।

वायु तत्त्व की सर्वत्र जरूरत होती है। आग भी इसलिए जलती है कि वायु है। वायु का सहयोग न मिले तो आग नहीं जल सकती। किसी स्थान को वायुरोधी

बना दें, वहां पर किसी चीज को जलाना चाहें तो नहीं जलेगी। भगवती सूत्र का एक सुंदर नियम है–**जत्थ अग्गि, तत्थ वाऊ।** जहां आग है, वहां वायु अवश्य मिलेगी। ऑक्सीजन के बिना अग्नि नहीं जलती।

आग और बिजली में यह सबसे बड़ा अंतर है। बिजली अग्नि नहीं है, क्योंकि बिजली को जलाने के लिए वायु को खाली करना होता है। बिना वैक्युम बिजली नहीं जलती, जबकि आग वायु से जलती है। आग और वायु का गहरा संबंध है। वायु तत्त्व है–अनासक्ति। वायु प्रतिबद्ध नहीं होती, बंधी हुई नहीं होती।

जब इतने सारे कच्चे माल मिलते हैं तो भीतरी घर का, आध्यात्मिक घर का निर्माण होता है। अपना घर बनेगा सहिष्णुता से, अपना घर बनेगा पवित्रता और निर्मलता से, अपना घर बनेगा तपस्या की अग्नि से और अपना घर बनेगा अनासक्ति से। इस आध्यात्मिक घर में आश्रय लेने वाला आदमी कभी दुःखी नहीं होता।

पृथ्वी सम सहिष्णुता

अब हम एक-एक तत्त्व पर विचार करें। सहिष्णुता से बड़ी कोई दूसरी शक्ति नहीं है। देवी के रूप में शक्ति की आराधना की जाती है। मैं तो मानता हूं कि जिस व्यक्ति ने सहिष्णुता-देवी की आराधना कर ली, उसे फिर किसी दूसरी देवी की आराधना करने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी, लेकिन यह काम इतना आसान नहीं है। सहन करने की शक्ति हर आदमी में नहीं होती। आदमी एक क्षण में आवेश में आ जाता है। मन के प्रतिकूल बात होते ही अप्रसन्नता और आवेश की स्थिति आ जाती है। कुछ लोगों की नाक पर गुस्सा रहता है। प्रसन्नता कभी-कभी ही उनके चेहरे पर दिखाई देती है। अधिकांश समय उनका लड़ने-झगड़ने में बीतता है।

अगर सहन करने की कला आ जाए तो फिर दुनिया में ईर्ष्या नाम की चीज नहीं रहेगी, द्वेष नहीं होगा, परस्पर कटुता नहीं होगी, किंतु सहन करने की शक्ति न होने के कारण आदमी अपनी ही गलतियों के कारण दुःखी बना रहता है। जिसने अपने भीतर अपना घर बना लिया और उसमें सहिष्णुता आदि का सामान लगा दिया, वह सच्चिदानंद हो गया।

जल सम निर्मलता

पिता ने पुत्र से कहा-'बेटा! मैं तुम्हें जीवन में काम आने वाली एक बहुत बड़ी सीख दे रहा हूं, उसे ध्यान से सुनना।'

पुत्र ने सीख की याचना की। पिता ने कहा–'देखो, मैंने शादी करके बड़े कष्ट का अनुभव किया, एक तरह की मुसीबत मोल ले ली। तुम ऐसी गलती कभी मत करना।'

पुत्र बोला–'पिताजी, आपकी शिक्षा सिर, आंखों पर। मैं शादी नहीं करूंगा और जहां तक संभव होगा, मैं अपनी संतानों को भी यही सीख दूंगा।'

यह चिंतन का विरोधाभास है। पता नहीं ऐसे कितने विरोधाभास जीवन में चलते हैं। विरोधाभास का कारण है जीवन में निर्मलता का अभाव। पानी जैसी निर्मलता नहीं है। न विचारों में निर्मलता है और न भावधारा में निर्मलता। विरोधाभासी जीवन जीकर आदमी दुःखी बनता रहता है। अगर हमारे जीवन में निर्मलता आ जाए, पवित्रता आ जाए और बनने वाले घर में इस निर्मल जल का उपयोग हो तो यह घर अभेद्य बन सकता है।

अग्नि की तेजस्विता

तीसरी बात है अग्नि की तेजस्विता। जिस घर में तैजस रहेगा, कोई अनिष्ट की आशंका नहीं होगी। आजकल तांत्रिक प्रयोग बहुत चलते हैं। अहिंसा यात्रा के दौरान अनेक लोग हमारे पास आए और उनसे सुनने को मिला–महाराज! घर में सबकुछ ठीक चल रहा था। लोगों को ईर्ष्या हो गई और किसी ने तांत्रिक प्रयोग करवा दिया। सारा व्यापार चौपट हो गया। परिवार के लोगों का स्वास्थ्य प्रभावित हो गया। तांत्रिक प्रयोगों के कारण प्रभावित हुए लोगों की अगर सूची बनाई जाए तो वह बहुत लंबी होगी। इस संदर्भ में शांति के लिए हमने समय-समय पर अनेक लोगों को अनेक प्रयोग बताए और उनका अच्छा परिणाम भी आया।

अगर कर्म को, संस्कारों को और बाहर से आने वाले प्रकोपों को दूर रखना चाहें, उनसे बचना चाहें तो अपने भीतर घर का निर्माण करना होगा, फिर उस आध्यात्मिक घर में उनका कोई वश नहीं चलेगा, क्योंकि अपने भीतर तैजस पैदा कर लिया, उसका कोई स्पर्श भी नहीं कर पाएगा।

मेरे पास कई ज्योतिषी आए उन्होंने कहा–'आपकी कुंडली में योग है कि लोग आपका विरोध करते रहेंगे। आपके ऊपर तांत्रिक प्रयोग भी कर सकते हैं, किंतु आप पर उनका कोई असर नहीं होगा।'

एक बार मुनिजी एक भाई को लेकर मेरे पास आए। पहुंचा हुआ आदमी था। मेरे सामने बैठा और बैठते ही बोला–'आप बीजमंत्रों की साधना करते हैं।

आपने बीजमंत्रों को सिद्ध कर लिया है, इसलिए अब आपका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ पाएगा।'

आप भी ऐसे घर का निर्माण करें और वहां तैजस की ऐसी शक्ति विकसित करें, जिससे सुरक्षा का पूरा कवच बन जाए।

अनासक्ति और अप्रतिबद्धता

चौथी बात है अनासक्ति का अभ्यास। हमारा जीवन यथार्थ के बिना नहीं चलता। खाने को रोटी, पीने को पानी, तन ढकने को वस्त्र चाहिए। पदार्थ के बिना न गृहस्थ का जीवन चलता है और न साधु-संन्यासी का। शरीर धारण करना है तो पदार्थ की जरूरत होगी। हम पदार्थ का उपयोग करें, किंतु उसके प्रति आसक्त न बनें। हम उससे बंधे नहीं। अगर ऐसा होता है तो पदार्थ हमारे लिए समस्या नहीं बनेगा। समस्या खड़ी होती है, उससे बंध जाने के बाद। आसक्ति पैदा हो गई तो फिर कदम-कदम पर हमें उसकी जरूरत होगी, उसके बिना जीवन जीना मुश्किल हो जाएगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना है तो सुविधाभोगी लोगों के जीवन को देखा जा सकता है, जो बिना मोटरकार के आधा किलोमीटर भी पैदल चल नहीं सकते, बिना ए. सी. के थोड़ी देर भी सर्दी-गर्मी बर्दाश्त नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में उनकी हालत देखने योग्य होती है। गुलामी कितनी तकलीफदायी होती है, यह उस समय देखा जा सकता है। वे स्वयं को सुविधाओं का गुलाम बना चुके होते हैं।

नदी के किनारे चार संन्यासी बैठे थे। उन चारों में एक संन्यासी बहुत आसक्ति वाला था। उसने देखा कि नदी में एक कंबल बहता जा रहा है। सूरज की किरणों के प्रकाश में वह कंबल बहुत सुंदर और कीमती दिखाई पड़ रहा था। वह अपने लोभ पर काबू नहीं रख सका। मन ललचा गया और कंबल पाने के लिए वह नदी की धारा में कूद पड़ा।

संन्यासी कुशल तैराक था। बड़ी तेजी से बहते हुए कंबल के पास पहुंचा। जैसे ही उसने कंबल को बाहु में समेटने का प्रयत्न किया, वह स्वयं उस कंबल के साथ पानी की धारा में बहने लगा। किनारे पर खड़े संन्यासियों ने कहा– 'कंबल पकड़ में आ गया। अब किनारे पर आ जाओ', किंतु वह लगातार उस कंबल के साथ बहा जा रहा है। साथी साधुओं ने आवाज लगाकर कहा–'तुम कंबल को लेकर किनारे पर क्यों नहीं आते?'

उसने कहा–'मैं क्या करूं, यह कंबल मुझे नहीं छोड़ रहा है।' यह कहते-कहते वह पानी में बहुत दूर निकल गया।

वह कंबल नहीं, एक रींछ था, जो पानी के तेज बहाव में बहा जा रहा था। संन्यासी तैर कर उसके पास गया तो डूबते रींछ को जैसे सहारा मिल गया और उसने कसकर उस संन्यासी को पकड़ लिया, अपनी गिरफ्त में ले लिया। अब उसके साथ बहते रहना ही उसकी नियति थी।

अनासक्ति का बोध पाठ

आसक्ति का बंधन बहुत प्रबल होता है। चाहकर भी वह नहीं छूटता। मैंने देखा कि मरते दम तक आदमी धन का लालच छोड़ नहीं पाता। पांव कब्र में लटकाए बैठे हैं, किंतु तृष्णा ज्यों की त्यों बनी हुई है। धन की निरर्थकता समझ में आ जाए तो यह आसक्ति छूट सकती है। सम्राट सिकन्दर की समझ में शायद यह बात आ गई थी। इसीलिए अपनी वसीयत लिखाते समय उसने कहा–'इसमें लिखा जाए कि मरने के बाद मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर रहे।' यह प्रचलित प्रथा है कि मरने के बाद मृतक का संपूर्ण शरीर कफन से ढक दिया जाता है। उसका कोई भी अंग खुला नहीं रखा जाता।

वसीयत लिखने वाले को यह बात अजीब-सी लगी। उसने पूछा–'क्षमा करें, महान सम्राट! आपकी यह बात मेरी समझ में नहीं आई। आपकी इस इच्छा का कारण क्या है? इससे आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं?'

सिकन्दर ने कहा–'मेरा एक सपना था कि मैं विश्वविजेता बनूं और दुनिया की सारी दौलत मेरे कदमों पर हो। मैंने अपना यह सपना साकार कर लिया, किंतु अर्जित की हुई संपत्ति का एक कण मात्र भी मैं अपने साथ नहीं ले जा सकूंगा। सबकुछ यहीं का यहीं रह जाएगा। मैं दुनिया को यही बताना चाहता हूं कि धरती की अकूत संपदा का मालिक सिकन्दर जब इस दुनिया से गया तो उसके दोनों हाथ खाली थे।'

आसक्ति के कारण आदमी आखिरी दम तक धन-संपदा से चिपका रहता है। आसक्ति से परे होने का क्रम यह है कि काम लिया और छोड़ दिया। आजकल 'यूज एंड थ्रो' की नई संस्कृति विकसित हो रही है, किंतु कुछ लोगों को संग्रह का इतना शौक होता है कि वे केवल लेना और पकड़ना जानते हैं, छोड़ना नहीं जानते। वहां फिर बहुत सारी समस्याएं और दुःख पैदा होते हैं।

नमि राजर्षि ने अपने इस घर को बनाने में सहिष्णुता, पवित्रता, तपस्या, अनासक्ति जैसे तत्त्वों का इस्तेमाल किया। आत्मा के आकाश में निर्मित इस घर में कोई बाह्य आपदा प्रवेश नहीं कर सकती। आपने मिट्टी-पत्थर से जो घर

बनाया, वह आपका घर नहीं है। आप उसे यहीं छोड़ जाएंगे। वह घर आपकी सद्गति में किसी भी प्रकार सहायक नहीं होगा, किंतु भावात्मक विकास के द्वारा आपने जो अपना घर बनाया, वह हर प्रकार से आपके आत्मिक उत्कर्ष में सहायक होगा। इस घर में रहकर आप कभी दुःखी नहीं बनेंगे। बाहर की प्रतिकूल परिस्थितियां भी आपको कभी प्रभावित नहीं कर पाएंगी।

अपने घर में रहें

आचार्य तुलसी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि मैं कभी तनाव में नहीं गया। उन्होंने कारण बतलाया–'मुझे अपने जीवन में सम्मान बहुत मिला, जितना दुनिया में बहुत कम लोगों को मिलता है। नीचे से लेकर ऊपर के लोगों का सम्मान मिला। प्रथम राष्ट्रपति और प्रथम प्रधानमंत्री से लेकर आज के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक का सम्मान मिल रहा है। विशिष्ट लोगों की लंबी सूची है, जिनके द्वारा मुझे अत्यंत सम्मान मिला, किंतु इसके साथ-साथ मुझे अपमान भी बहुत मिला। कितनी बार मेरे पुतले जलाए गए। लोगों ने गालियां दीं और सड़कों पर पर्चे बांटे। सम्मान के समय मुझे गर्व से फूल जाना था और अपमान से कुंठित हो जाना चाहिए था, किंतु दोनों स्थितियों में मैंने अपना संतुलन बनाए रखा। मैं इन दोनों से बचा रहा, क्योंकि मैं अपने घर में था।'

कोई किसी को दुःखी या सुखी नहीं बना सकता। सुख-दुःख का कारण आदमी की अपनी वृत्तियां हैं। आज आदमी स्वयं के कारण दुःखी बन रहा है। ऐसी स्थिति में जरूरी है हम अपने घर का निर्माण करें, आध्यात्मिक घर का निर्माण करें। सहन करने की शक्ति का विकास, भावों में निर्मलता और पवित्रता का विकास, तपस्या और तैजस का विकास, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता का विकास इस घर के निर्माण की सामग्री है। इन तत्त्वों से बना अपना घर शाश्वत सुख देने वाला घर होगा। ऐसे घर में रहकर आप कभी दुःखी नहीं बनेंगे।

आध्यात्मिक घर के मर्म को समझें और अपने घर का निर्माण करें। ऐसा घर लौकिक घर की तरह यहीं नहीं रह जाएगा, शरीर की तरह यहीं नहीं रह जाएगा, किंतु यह चैतन्य की तरह सदा हमारी आत्मा के साथ रहेगा, सदा हमारे साथ चलेगा। इसमें रहकर हम स्थायी सुख और शांति का अनुभव कर सकेंगे।

१४. कैसे करें संस्कारों का निर्माण?

व्यक्ति में अच्छाई और बुराई दोनों के बीज विद्यमान होते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता, जिसमें केवल अच्छाइयां ही अच्छाइयां हों और ऐसा भी कोई व्यक्ति नहीं होता, जिसमें बुराइयां ही बुराइयां हों। दोनों प्रकार के बीज विद्यमान रहते हैं। यह जो कहा जाता है कि छोटा बच्चा जन्म लेता है तो वह खाली पाटी या कोरा कागज होता है, यह पूर्ण सत्य नहीं है। खाली कोई नहीं होता। हर व्यक्ति भरा हुआ होता है।

एक छोटे बच्चे के भीतर भी इतना छिपा होता है, इतना भरा होता है, जितना कि एक बड़े में। अंतर सिर्फ यही है कि बड़े में वे सब बातें अभिव्यक्त हो जाती हैं। उसके भीतर जो कुछ भरा पड़ा है, वह वाणी के द्वारा, कर्म के द्वारा सामने आ जाता है। छोटे में वे अभिव्यक्त नहीं होतीं, छिपी रहती हैं। अंतर केवल व्यक्त और अव्यक्त का है। होने और न होने का कोई अंतर नहीं है।

प्रश्न है कि प्रकट क्या हो? सामने क्या आए? जीवन का अच्छा पक्ष, शुक्लपक्ष प्रकट हो या जीवन का बुरा पक्ष, अंधेरे का पक्ष प्रकट हो? यह हमारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। यह निर्माता पर भी निर्भर है कि वह किस पक्ष को उभारे, जिससे संतान अच्छी बन सके। किस पक्ष को दबाए, जिससे बुराइयां उभर कर ऊपर न आ सकें और वे धीरे-धीरे शांत या क्षीण हो जाएं, यह है हमारा करणीय कार्य।

बच्चा क्या लेकर आया है, इस पर हमारा कोई वश नहीं है। करना इतना ही है कि उसमें जो अच्छाई के बीज विद्यमान हैं, उन्हें उभार कर ऊपर ला सकें। इसमें महिलाओं का दोहरा दायित्व है। पुरुषों का इकहरा दायित्व है। पुरुष का काम है–अपने संस्कारों का निर्माण करना। महिला का काम है–अपने संस्कारों का निर्माण करे और साथ-साथ संतान के संस्कारों का भी निर्माण करे। संतान का संबंध जितना माता के साथ होता है, उतना पिता के साथ नहीं होता। उसे

साहचर्य भी जितना माता का मिलता है, उतना पिता का नहीं मिलता। बहुत सारे पिता तो ऐसे होते हैं, जो बच्चों को सोया हुआ ही देखते हैं। स्थिति ही कुछ ऐसी बन गई है कि देर रात को जब पिता लौट कर आता है, तब तक बच्चा सो चुका होता है और सवेरे जब बच्चा स्कूल जाता है, तब तक पिता सोए रहते हैं।

जरूरी है स्वयं के संस्कारों का निर्माण

किसी ने एक व्यक्ति से पूछा–'तुम्हारा लड़का कितना बड़ा हो गया?'

उसने हाथ फैलाते हुए कहा–'इतना बड़ा।'

उसने कहा–'महाशय! बच्चा तो खंभे की तरह बढ़ता है, चारपाई की तरह नहीं।'

उस व्यक्ति ने कहा–'मैंने उसे सदा पलंग पर सोए हुए ही देखा है।'

पिता को हर काम के लिए फुर्सत है, पर बच्चे के संस्कार-निर्माण के लिए फुर्सत नहीं है। मां का बच्चे के साथ निरंतर संपर्क रहता है। प्रातःकाल मुनिजी घरों में भिक्षा के लिए गए। बहनों से पूछा–'इतनी जल्दी रसोई बना ली?' वे बोलीं–'महाराज! क्या करें, बच्चों को स्कूल जल्दी जाना पड़ता है।' पिता अभी तक सोया ही है और मां ने बच्चों को खाना खिला कर स्कूल भी भेज दिया। यह मां का काम है। आंतरिक संबंध भी जितना मां का बच्चों के साथ होता है, उतना पिता के साथ नहीं होता। यह एक सहज मनोवृत्ति है।

मैं नारी और पुरुष को अलग-अलग दृष्टि से नहीं देखता। मेरी दृष्टि में कोई पुरुष ऐसा नहीं, जिसमें नारी तत्त्व न हो और कोई भी नारी ऐसी नहीं है, जिसमें पुरुष तत्त्व न हो। प्रकृति ने भी ऐसी व्यवस्था की है और हमारे शरीर की संरचना भी ऐसी है कि नारी और पुरुष दोनों में दोनों के अंश विद्यमान हैं। नारी तत्त्व ज्यादा हैं तो वह संपूर्ण नारी है और पुरुष तत्त्वों की अधिकता है तो वह संपूर्ण पुरुष है। संतुलन जब कभी गड़बड़ाता है, हार्मोन्स अपना असर दिखाते हैं तो पुरुष नारी बन जाता है, नारी पुरुष बन जाती है।

गौरव 'मां' का

योग के आचार्यों ने मानव शरीर के दो भाग बताए हैं–दायां भाग पिंगला, जो पुरुष का भाग है और बायां भाग इड़ा, जो नारी का भाग है। आज समानता की बात कही जाती है। नारी किसी भी दृष्टि से पुरुष से कमजोर नहीं है, न्यून नहीं है। इसीलिए सरकारी विभाग में नारी और पुरुष में भेदभाव नहीं किया

जाता। पहले अध्यापिका, क्लर्क, स्टेनो, डॉक्टर और नर्स तक ही उसकी सीमा थी। आज नारी सुरक्षा बलों में और सेना में भी जा रही है। इन सब उपलब्धियों और योग्यताओं के बावजूद मेरा यह मानना है कि महिला का सबसे बड़ा गौरव मां के रूप में है।

करुणा और वात्सल्य

करुणा और वत्सलता–ये दो ऐसे गुण हैं, जो नारी को उसकी सही अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

संस्कृत साहित्य की एक कथा है। एक व्याध जंगल में शिकार की खोज में था। तभी उसे एक हरिणी दिखाई पड़ी। व्याध ने तत्काल अपना धनुष संभाला और उस पर बाण चढ़ाकर लक्ष्यवेध करना चाहा। भय से कांपती हरिणी ने उससे याचना की–व्याध! मेरा नवजात शिशु मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा। भूख से व्याकुल मेरे उस प्रिय शावक को समय पर दूध मिलना बहुत जरूरी है। एकाकी और असहाय इस समय मैं पूर्णरूप से तुम्हारी दया पर निर्भर हूं। तुम्हें मांस की जरूरत है, वह तुम मेरे शरीर के किसी भी भाग से ले लो, किंतु दो स्तनों को छोड़ दो, उन पर मेरे शावक का जीवन अवलंबित है।'

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमंगात्,
मां मुञ्च वागुरिक! यामि कुरु प्रसादं।
अद्यापि सस्यकवलग्रहणानभिज्ञाः,
मन्मार्गवीक्षणपराः शिशवो मदीयाः॥

यह है मातृत्व, यह है करुणा। मुझे लगता है कि आज यह मातृत्व कम होता जा रहा है। महिलाएं अब 'मम्मी' बनती जा रही हैं। मम्मी का एक दूसरा अर्थ भी होता है। मिस्र के पिरामिडों में आज भी बहुत सारी ममीज मिलती हैं। ममी यानी मुर्दा, जिसे रासायनिक लेप आदि के द्वारा दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा गया हो। मैं जब छोटे बच्चों को 'मम्मी-मम्मी' कहते देखता हूं तो मुझे कैसा ही लगता है। पता नहीं यह शब्द 'मां' के अर्थ में क्यों चुना गया? मातृत्व अब खोता जा रहा है। आधुनिक मां की जीवनशैली ही बदल गई है। बच्चे अब आया के हवाले हो गए हैं। स्तनपान की बात कुछ गौण हो गई है। शरीर सौष्ठव उनके लिए मुख्य है। बच्चे डिब्बाबंद दूध पर निर्भर होते जा रहे हैं। हम संस्कृति की बात कैसे करें, जब चरित्र ही नहीं है। चरित्र का निर्माण तो

पहली घूंटी में होता है। वह आएगा कैसे? आदमी संवेदनहीन क्यों होता जा रहा है? संवेदनहीनता के संस्कार उसे पैदा होते ही मिलने शुरू हो गए, फिर हम कैसे आशा करें कि बड़ा होने पर उसमें करुणा, दया और वात्सल्य के संस्कार आएंगे?

कारण गलत संस्कारों का

जो माता-पिता और अभिभावक अपनी संतान के प्रति, उसके भविष्य के प्रति जागरूक होते हैं, वे अपने परिवार को कुपथ में जाने से बचा लेते हैं। अभिभावक अगर स्वयं प्रमादी हैं और नशे का सेवन करते हैं तो उनके बच्चे उस बुराई में क्यों नहीं जाएंगे? आज बच्चों को स्कूल के भरोसे छोड़ा जा रहा है। माता-पिता दिनभर अपने व्यवसाय आदि में व्यस्त रहते हैं। बच्चा स्कूल में टीचर के और घर में नौकर के पास रहता है। संस्कार उसे कौन दे? आचरण की शिक्षा जो उसे घर में मिलनी चाहिए, नहीं मिल पाती।

एक दंपति सेवा में आए हुए थे। साथ में बच्चा था पांच वर्ष का। पता नहीं किस बात पर बच्चा कुपित हुआ और एक भद्दी-सी गाली उसके मुंह से निकली। मैंने उस दंपति की ओर देखा और पूछा–'यह क्या सिखाया जा रहा है बच्चे को? कहां से सीखा इसने गाली देना?'

वे बोले–'महाराज! क्या बताएं, बिजनेस में इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि पूरा समय नहीं दे पाता। घर में नौकर हैं। उन्हीं से सीख लिया।'

मेरे पास एक वृद्ध दंपति आए और अपना दर्द सुनाते हुए बोले–'एक ही लड़का है। बहुत लाड़-प्यार से पाला। अच्छे घर में शादी की। पास की सब जमा-पूंजी उसे संभला कर दुकान करवा दी। अब वह हम पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। एक दिन उसे अपनी अवस्था का हवाला देते हुए कहा कि क्या इसी दिन के लिए पाल-पोस कर बड़ा किया था तो उसने क्रोध में आकर व्यंग्य से कहा–'सबका पालन-पोषण तो आपने ही किया है।' सामने खड़े पेड़ की ओर इशारा कर कहा–'इस पेड़ को किसने पाला?'

ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि पढ़ा-लिखा तो है, बुद्धि तो बढ़ी है, किंतु भाव का विकास नहीं हुआ। बुद्धि और भावधारा–ये दोनों अलग-अलग हैं। बुद्धि का विकास तो हो गया, किंतु भावधारा का विकास नहीं हुआ तो संवेग उससे मनचाहा करवाते रहेंगे। मनुष्योचित व्यवहार की उससे आशा नहीं की

जा सकती। मनुष्योचित व्यवहार वही करेगा, जिसका इमोशनल डेवलपमेंट हुआ है, जिसने अपनी भावधारा को पवित्र बनाया है। हर माता-पिता यह ध्यान दें कि उनके पुत्र के भावात्मक विकास की स्थिति क्या है? उसमें चरित्र और नैतिकता का विकास हो रहा है या नहीं? अभिभावक के साथ यह शिक्षक का भी बहुत बड़ा कर्तव्य है। आज इस कर्तव्यनिष्ठा में कमी आई है।

शिक्षक का कर्तव्य

बंगाल के एक अध्यापक सूर्यसेन विद्यालय में अध्यापन कार्य करते थे। वार्षिक परीक्षा में जिस कक्षा में उनकी ड्यूटी लगी, वहां उस कॉलेज के प्रिंसिपल का बेटा भी परीक्षा दे रहा था। मास्टर सूर्यसेन ने निरीक्षण के दौरान देखा कि प्रिंसिपल का पुत्र नकल कर रहा है। उन्होंने तत्काल उसे पकड़ा। नकल करने वाली सामग्री और लिखी हुई पुस्तिका उससे छीन ली। उस लड़के ने प्रिंसिपल के बेटे के रूप में अपना परिचय दिया तो मास्टरजी ने कहा–'जानता हूं, लेकिन प्राचार्य का बेटा होने से तुम्हें नकल की छूट नहीं मिल सकती। यह लो नई कॉपी और फिर से प्रश्नोत्तर लिखो।'

प्रिंसिपल का वह लड़का आगे कुछ भी नहीं लिख सका और परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया। स्कूल के प्रिंसिपल ने अध्यापक सूर्यसेन को अपने कक्ष में बुलाया। अध्यापकों ने सोचा–अब मास्टर सूर्यसेन की छुट्टी हो जाएगी। सूर्यसेन प्रिंसिपल की ऑफिस में गए। प्रिंसिपल ने उनका स्वागत करते हुए कहा–'एक कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक के रूप में आपका सम्मान करता हूं। यह जानकर मुझे प्रसन्नता है कि अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए आपने मेरे बेटे को भी कोई छूट नहीं दी। अगर आप उसे नकल करने का मौका देते तो निश्चित रूप से मैं आपको बर्खास्त कर देता।'

मास्टर सूर्यसेन ने कहा–'सर! अगर आप बेटे को नकल करने की छूट देने के लिए मजबूर करते तो मैं स्वयं अपनी नौकरी से इस्तीफा दे देता।'

आज यह चिंतन का विषय है कि बच्चों के प्रति माता-पिता कितने जागरूक हैं? पुराने जमाने में मां और दादी-नानी बच्चों को कितनी उपदेशात्मक और संस्कारपरक कहानियां सुनाती थीं। आज जैसे वह परंपरा ही लुप्त हो गई। मां और दादी को आपस के झगड़े से छुट्टी नहीं मिलती, वे बच्चों को क्या संस्कार देंगी?

घर में जो बड़े हैं, उन्हें संस्कारों की दृष्टि से सजग रहना होगा। यह हमेशा याद रहे कि बच्चा घर में ज्यादा सीखता है, स्कूल में कम। स्कूल में कितना भी पढ़े और सीखे, घर में मां-बाप के बीच प्रतिदिन कलह होती रहती है तो वह कुछ दूसरे संस्कार ही ग्रहण करेगा।

श्रेष्ठ आदमी के आचरण का दूसरे लोग अनुकरण करते हैं। इसलिए बड़े और श्रेष्ठ माने जाने वाले लोगों को अपने आचरण और अपनी जीवनशैली के प्रति विशेष रूप से सचेष्ट रहना चाहिए। दूसरे के संस्कारों का निर्माण करने से पहले स्वयं के संस्कारों का निर्माण जरूरी है। स्वयं को संस्कृत बनाकर ही व्यक्ति दूसरों का संस्कार-निर्माण कर सकता है।

स्वार्थ का सीमाकरण

संस्कार निर्माण का पहला सूत्र है स्वार्थ का सीमाकरण। यह नहीं कहा जा सकता कि स्वार्थ को छोड़ दिया जाए। कोई भी व्यक्ति सर्वथा स्वार्थ को नहीं छोड़ सकता। राजनीतिक प्रणालियों में कितने परीक्षण हो गए। साम्यवादी प्रणाली में कम्यूनों का विकास हुआ, किंतु उन्हें लौटना पड़ा। यह समझ में आ गया कि वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति हुए बिना आदमी में कोई अंतःप्रेरणा नहीं जाग सकती। हमारी सबसे बड़ी अंतःप्रेरणा है स्वार्थ। वैयक्तिक स्वार्थ होता है तब आदमी बहुत अच्छा काम करता है, मनोयोग से करता है। जहां समूह के लिए करना पड़ता है, वहां मनोवृत्ति दूसरे प्रकार की बन जाती है। वह सोचता है–सब काम कर रहे हैं। मैं अकेला नहीं करूंगा तो क्या फर्क पड़ेगा। इसी तरह दूसरे-दूसरे प्रकार की मानसिकता बनती जाती है।

सौधर्म चक्रवर्ती आकाश मार्ग से जा रहा था। सोलह हजार देव उसकी पालकी को उठाए हुए थे। एक देव ने सोचा–इतने लोग लगे हुए हैं, एक मैं छोड़ दूंगा तो क्या होगा? उसी क्षण यह विचार सोलह हजार देवों के मन में भी संक्रांत हुआ और एक साथ सबने पालकी छोड़ दी। चक्रवर्ती समुद्र में गिर कर डूब गया।

जहां समुदायवाद है, वहां प्रेरणा दूसरा काम करती है। इसीलिए जहां आर्थिक विकास का प्रश्न था, प्रजातंत्रीय प्रणाली में जितना विकास हो सका, व्यक्तिगत संपत्ति की स्वतंत्रता में जितना विकास हो सका, उतना नियंत्रित प्रणाली में नहीं हो पाया।

व्यक्तिगत स्वार्थ एक बहुत बड़ी प्रेरणा है। इस सचाई को हम अस्वीकार न करें। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सब स्वार्थ को छोड़ कर परमार्थ का जीवन जीएं। यह असंभव बात होगी और कोई मानेगा भी नहीं। महत्त्वपूर्ण और जरूरी यह है कि स्वार्थ को न छोड़ पाएं तो उसका सीमाकरण जरूर करें। ऐसा स्वार्थ भी नहीं होना चाहिए, जो दूसरे के स्वार्थ में बाधा डाले, कठिनाई पैदा करे। कोरा स्वार्थ किसी काम का नहीं होता।

परीक्षा का निष्कर्ष

एक राजा को सेवक की अपेक्षा थी। तीन लोगों ने नियुक्ति के लिए आवेदन किया। परीक्षा लेने के लिए तीनों को राजा ने अपने पास बुलाया। राजा ने उनसे पूछा–'बताओ, अगर संयोगवश ऐसा हो जाए कि मेरी दाढ़ी और तुम्हारी दाढ़ी में एक साथ आग लग जाए, तो तुम क्या करोगे?'

एक बोला–'महाराज! पहले अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा।'

राजा ने कहा–'तुम स्वार्थी आदमी हो, इसलिए काम के योग्य नहीं हो।'

दूसरे ने कहा–'महाराज! मैं आपका सेवक हूं, इसलिए पहले आपकी चिंता करूंगा, अपनी नहीं। मैं आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा।'

राजा ने सोचा–यह चालाक और चापलूस आदमी है। जो कह रहा है, वैसा करेगा नहीं। वह भी नहीं जचा।

राजा ने तीसरे से पूछा। उसने कहा–'महाराज! ऐसी स्थिति में मैं एक हाथ से अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा और दूसरे हाथ से आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा।'

राजा ने उसे अपनी सेवा में नियुक्त कर लिया।

यह है स्वार्थ का सीमाकरण। केवल अपना स्वार्थ ही नहीं, दूसरे का हित भी सधना चाहिए। जहां इस तरह का संस्कार निर्मित होता है, हमारे व्यवहार की अनेक समस्याएं सुलझ जाती हैं। परिवारों में कलह क्यों होता है? इसीलिए कि जहां देवरानियां-जेठानियां अपने-अपने बच्चे को प्राथमिकता देना शुरू करती हैं, वहां दूसरों पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। जहां सामुदायिक जीवन है, वहां अपने स्वार्थ को असीम न बनाएं, उसकी एक सीमा रखें कि इससे आगे नहीं बढ़ना है तो समस्या कभी पैदा नहीं होगी।

उदार दृष्टिकोण

संस्कार-निर्माण का दूसरा सूत्र है उदार दृष्टिकोण। हमारा दृष्टिकोण विशाल होना चाहिए। संकीर्ण दृष्टि से देखने वाला अपने आस-पास तक ही देख पाएगा। आदमी को दूर तक की और आगे-पीछे की बात भी जरूर देखनी चाहिए। बहुत वर्ष पहले हम बीदासर की एक गली से होकर जा रहे थे। एक नोहरा देखा। उसकी जर्जर दीवारें ढह चुकी थीं, किंतु विशाल फाटक और उसमें झूलता बड़ा-सा ताला अभी भी लटक रहा था। आगे तो ताला लगा बड़ा-सा दरवाजा और नोहरे की चारों ओर की दीवारें ध्वस्त। ताले और दरवाजे का मतलब क्या रहा? इसलिए आगे-पीछे की ही नहीं, अपितु चारों तरफ की सोच होनी चाहिए। दृष्टिकोण संकुचित होगा तो व्यवहार में उलझनें पैदा होंगी। दृष्टिकोण व्यापक और उदार होगा तो व्यापक हितों की ओर ध्यान जाएगा। संघर्ष का कारण ही संकुचित दृष्टिकोण है। संकुचित वृत्ति परिवार की भी समस्या है, समाज की भी समस्या है। बहुत सीमित दृष्टि से बात सोची जाती है, इसीलिए अनेक समस्याएं उलझ जाती हैं।

हीन और अहं भाव से मुक्ति

संस्कार-निर्माण का तीसरा सूत्र है हीनभावना और अहंभावना से मुक्त रहने का अभ्यास। पुरुष को अहंभाव अधिक सताता है तो महिलाओं को हीनभाव ज्यादा सताता है। हीनभाव और अहंभाव से मुक्त होकर संतुलित जीवन कैसे जीया जाए, यह एक प्रश्न है। हीनता के कारण भय पैदा होता है। भय के अनेक कारण हैं। भय के कारणों में ही आदमी बैठा है, इसलिए भय होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, किंतु जिसे संस्कार का निर्माण करना है, उसके लिए यह अभ्यास जरूरी है कि वह कैसे हीनता और अहं की ग्रंथियों से बच सके?

संगठन और अनुशासन के प्रति विश्वास

संस्कार निर्माण का चौथा सूत्र है संगठन और अनुशासन के प्रति विश्वास। संस्कार निर्माण के लिए अनुशासन का मूल्यांकन बहुत जरूरी है। बहुत सारे सिद्धांत हैं, जिनमें तर्क की गुंजाइश होती है, किंतु अनुशासन इस मामले में निरपवाद है। इस संबंध में कोई तर्क नहीं होता। एक सैनिक कभी तर्क नहीं करता। क्या सेना में पढ़े-लिखे लोग नहीं होते? वहां शिक्षित होते हैं, किंतु

वहां तर्क नहीं चलता। आदेश के सिवाय दूसरा कोई शब्द नहीं मिलता। संगठन भी उतना ही आवश्यक है। इन दोनों के प्रति एक नया दृष्टिकोण बनना चाहिए कि अनुशासन में रहना है और अनुशासन का विकास करना है।

शक्ति अकेले की नहीं बनती और शक्तिशून्य जीवन किसी काम का नहीं होता। शक्ति संगठन के बिना आती नहीं। कहा गया–संघे शक्तिः कलौ युगे। इसके स्थान पर यह कहा जाना चाहिए–**संघे शक्तिः सदा युगे।** संघ में शक्ति तो हर काल में वांछनीय है। शक्ति आती है संगठन से। शरीर में एक टिशू या सेल शक्ति कहां से ला पाएगा? अनेक सेल्स मिलते हैं, तब कहीं कोशिकाओं का संगठन बनता है और शक्ति आती है। संगठन में शक्ति है, यह त्रैकालिक सिद्धांत है, यह केवल कलियुग की ही बात नहीं है।

संगठन और अनुशासन–दोनों के संस्कार बनने चाहिए। समाज में दोनों की अनिवार्यता है। शिष्ट समाज वही होता है, जो अनुशासन और संगठन को मान कर चलता है। जब आचार्य भिक्षु ने तीन साध्वियों को दीक्षित किया, तब उन्होंने साध्वियों से कहा–'देखो, तुम तीनों की दीक्षा हो रही है। संघ में तीन से कम साध्वियां रह नहीं सकतीं। मान लो कोई एक स्वर्गवासी हो जाए तो दो को अनशन करना होगा। अगर इतना साहस हो तो तुम लोगों को दीक्षा लेनी चाहिए।' यह था उनका अनुशासन और अनुशासन की व्यवस्था।

अनुशासन सामुदायिकता को चिरजीवी बनाता है। वही संघ, समाज और संगठन चिरजीवी रह सकता है, जहां अनुशासन है। वही संगठन और परिवार शक्तिशाली बनता है, जो अनुशासन के साथ चलता है। ये चार सूत्र हैं संस्कार-निर्माण के, जिनसे व्यक्ति स्वयं को संस्कृत कर सकता है।

प्रश्न है संतान को संस्कारित करने का

दूसरा प्रश्न है संतान को संस्कारित करने का। बच्चों के संस्कारों का निर्माण कैसे करें? शैशवावस्था और बाल्यावस्था में बच्चे के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए? उसे क्या सिखाना चाहिए? इस बात का ज्ञान प्रत्येक माता-पिता को होना जरूरी है। मां को तो प्रारंभ से ही बैठना, चलना और फिर बोलना सिखाना पड़ता है। बच्चे के संस्कार ऐसे हों, जो जीवनभर काम आएं। वे संस्कार हमेशा उसके लिए एक अच्छे मित्र और हितैषी का काम दे सकें। इसके लिए सर्वप्रथम आवेश पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया सिखाई जानी

चाहिए। अपने आवेशों पर नियंत्रण कैसे करें, इसका प्रारंभ से ही बच्चे को अभ्यास कराया जाना चाहिए।

शत्रु हैं वे माता-पिता

जो बच्चे को नहीं पढ़ाते हैं, वे माता-पिता उसके दुश्मन हैं। आज माता-पिता बच्चे को पढ़ा कर सोचते हैं–क्या मैंने इसे इसीलिए पढ़ाया था? बच्चे के आचरण और व्यवहार को देखकर अधिकांश अभिभावकों की यही प्रतिक्रिया होती है। आज इस सूक्त को बदल कर यह कहा जाना चाहिए–कि जिन्होंने अपने बच्चे को अच्छे संस्कार नहीं दिए या आवेशों पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया, वे माता-पिता उसके दुश्मन हैं। यह सूक्त ज्यादा सटीक बैठता है–**माता शत्रु पिता वैरी, याभ्यां बालो न संस्कृतः।**

आहार-शुद्धि और नशा मुक्ति

मैंने शराब पीने वाले कुछ लोगों से पूछा–शराब में दूध से ज्यादा स्वाद है क्या? उन लोगों ने बताया–नहीं, स्वाद तो बिल्कुल नहीं है। बड़ी कड़वी चीज है। जिसने कभी स्वाद नहीं लिया, पहली बार पीने पर वमन हो जाएगा, किंतु पीते-पीते एक समय ऐसा आता है जब उसमें स्वाद का अनुभव होने लगता है। वह स्वाद इतना भीतर चला जाता है कि उसकी थोड़ी-सी महक भी मन में बेचैनी पैदा कर देती है।

शराब पीने का फायदा जो लोग बताते हैं, वह यह है कि घंटा, दो घंटे के लिए वह आदमी को चिंतामुक्त कर देती है, पर चिंतामुक्त होने का क्या यह कोई प्रशस्त तरीका है? दूसरे तरीके भी हैं। वे स्थायी तरीके हैं–ध्यान, आसन, प्राणायाम। ये तरीके क्यों नहीं काम में लिए जाते? शराब पीने की बजाय आप आधा घंटा ध्यान करें, न चिंता रहेगी, न तनाव, न शरीर का क्षरण होगा, न धन का अपव्यय होगा।

जीने की कला सीखें और आनंद के साथ जीएं। यह मानव शरीर बड़े सुयोग से और अच्छे कर्मों की बदौलत प्राप्त हुआ है। यह सबसे बड़ी निधि है। इसका एक-एक अवयव लाखों-करोड़ों खर्च करके भी किसी दुकान से प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए इसकी सुरक्षा करो। इसके लिए एक बात पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। वह है आहार-शुद्धि।

जो जीने की कला जानता है, वह आहारशुद्धि पर बहुत ध्यान देता है।

आहारशुद्धि में भी दो बातों पर ध्यान देना होगा। पहला हमारा आहार प्रदूषण मुक्त हो और दूसरा अखाद्य वस्तुओं का परिहार हो। आज यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि मांसाहार स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाला है। अनेक तरह की विकृतियां पैदा करता है मांसाहार। इसलिए शाकाहार के कई आंदोलन चल रहे हैं। विदेशों में भी अब लोग शाकाहार की ओर आकर्षित हो रहे हैं। धार्मिक दृष्टि से वहां के लोग किसी बात पर कम ध्यान देते हैं, किंतु अब तो वैज्ञानिक प्रयोगों से यह प्रमाणित हुआ है कि शाकाहार स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है और मांसाहार स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

भारतीय संस्कृति के दो तत्त्व हैं–नशामुक्ति और आहारशुद्धि। ये स्वस्थ जीवन के सूत्र और मंत्र हैं। जिस व्यक्ति का आहार शुद्ध नहीं होता, उसका चिंतन कभी शुद्ध नहीं हो सकता, सात्त्विक नहीं हो सकता। उसमें उत्तेजना, आवेश, भय, हिंसा आदि के विचार आते रहेंगे। बच्चे को अच्छी शिक्षा दिला दी, किंतु बच्चा शराब पीता है, अपराध में लिप्त है, झगड़ा-फसाद करता है तो वह शिक्षा किस काम की होगी? ऐसा आचरण वह इसलिए करता है कि उसे आवेशों पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया गया। शराब पीने की आदत भी आवेश के कारण होती है। एक आवेश जागता है, व्यक्ति शराब की शरण लेता है। एक आवेश जागता है, वह अपराध में चला जाता है। एक आवेश जागता है, आदमी क्रोधी और हत्यारा बन जाता है। ये सारे आवेश के परिणाम हैं, जो व्यक्ति से बुरे आचरण करवाते हैं। प्रारंभ से ही उन पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया जाता है तो यह किसी भी बच्चे के प्रति न्याय की बात नहीं होती।

एकाग्रता का अभ्यास

संस्कार निर्माण का एक सूत्र है–बच्चे को एकाग्रता का अभ्यास कराया जाए। यह काम बचपन से ही शुरू किया जाना चाहिए। यदि बचपन से ही यह अभ्यास कराया जाए तो उसके बहुत अच्छे परिणाम सामने आएंगे। एकाग्रता के अभ्यास के साथ उसे संकल्प शक्ति के विकास का भी अभ्यास कराया जाना चाहिए। अगर सात वर्ष की अवस्था से ये तीन बातें–आवेश-नियंत्रण का अभ्यास, एकाग्रता बढ़ाने का और संकल्प शक्ति के विकास का अभ्यास बच्चों को सिखा दिया जाएं तो फिर किसी भी माता-पिता को आगे चलकर यह कहने की नौबत नहीं आएगी कि क्या हमने यही दिन देखने के लिए इतना पढ़ाया था? ऐसा होता है तो बच्चे में जो अच्छे संस्कारों के बीज निहित हैं,

उनके अंकुरित होने, पल्लवित-पुष्पित होने और फलित होने का सहज ही अवसर मिल जाता है। यह ऐसी उर्वरा भूमि है, जिसमें अच्छे बीजों का उगना अनिवार्य है।

दीर्घश्वास का प्रयोग

प्रश्न उभरता है कि ये संस्कार कैसे दिए जाएं? इनके साधन क्या हो सकते हैं? इसका पहला उपाय है दीर्घश्वास का प्रयोग। बच्चे को लंबा श्वास लेना सिखाया जाए और धीरे-धीरे इतना अभ्यास करा दिया जाए कि वह एक मिनट में चार-पांच श्वास लेना सीख जाए। अगर पांच या दस मिनट भी बच्चे को इस तरह का अभ्यास कराया जाए तो तीन महीने में बच्चे के व्यवहार में अंतर देखा जा सकता है। उसे क्रोध आना कम हो जाएगा तथा मादक वस्तुओं से वह बहुत दूर रहेगा। मादक वस्तुओं का सेवन मानसिक थकान मिटाने के लिए होता है। नशे की यह खूबी है कि वह एक बार तो स्वर्ग जैसी सुख की अनुभूति करा देता है, किंतु दीर्घश्वास का अभ्यास करने वाला, वर्तमान में जीने वाला इस तरह के झूठे सुख की खोज में नहीं जाएगा। उसे दीर्घश्वास में उससे ज्यादा नशा मिलेगा, जितना मादक पदार्थ में मिलता है। उसे बाहर का नशा खोजने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। बहुत सारे लोग नशा करते हैं, इसलिए कि दुनिया के झंझटों से, परेशानियों से, मानसिक उलझनों से मुक्ति मिलती है, स्वर्गिक आनंद की अनुभूति होती है। दीर्घश्वास का प्रयोग करने वाला नशे के बिना भी वैसा स्वर्गिक आनंद पा लेता है, इसलिए नशा करने की बात उसके मन में ही नहीं आती।

अनुभवसिद्ध तथ्य

अनेक बुरी आदतों से बचने का एक बहुत अच्छा उपाय है दीर्घश्वास का प्रयोग। जिन बच्चों में गुस्से की प्रवृत्ति ज्यादा होती है, उन्हें दीर्घश्वास का प्रयोग निरंतर कराया जाए तो निश्चय ही उसके अनुकूल परिणाम आएंगे। बच्चों के लिए नहीं, सभी के लिए यह अचूक उपाय है कि गुस्सा आते ही पांच-सात मिनट दीर्घश्वास का प्रयोग किया जाए, गुस्सा समाप्त हो जाएगा। यह अनुभवसिद्ध तथ्य है कि छोटा श्वास आता है तो गुस्सा उतर आता है। श्वास लंबा होता है तो आवेश विदा हो जाता है। आवेश को विदा करने का सबसे अच्छा उपाय है श्वास को लंबा करना। आवेशों को नियंत्रित करने का सबसे सरल उपाय है दीर्घश्वास। आवेश तब आता है, जब श्वास छोटा चलता है या

जब आवेश आता है तब वह श्वास को छोटा बनाकर आता है। दीर्घश्वास में आवेश आए, यह संभव ही नहीं है।

जरूरी है जागरूकता

तनाव को कम करने का एक उपाय शिथिलीकरण भी है। जो व्यक्ति कायोत्सर्ग करता है, वह तनाव से मुक्ति का सूत्र उपलब्ध कर लेता है।

दीर्घश्वास प्रेक्षा और कायोत्सर्ग–तनावमुक्ति और संवेग नियंत्रण के अमोघ प्रयोग हैं। इनसे बच्चों में अच्छे संस्कारों का निर्माण होता है, किंतु संस्कार देने वाले ये उपाय तभी कारगर होंगे जब बच्चे के माता-पिता इस संबंध में जागरूक होंगे। जागरूकता नहीं है और ठीक से समझा नहीं जाता है तो जानी हुई, सुनी हुई बात भी काम नहीं करती।

आवेश पर नियंत्रण का अभ्यास, एकाग्रता बढ़ाने का अभ्यास और संकल्पशक्ति का विकास–अगर ये तीन बातें अभिभावक अपने बच्चों को सिखाने का प्रयत्न करें तो उसका परिणाम अत्यंत सुखद होगा।

१५. पारिवारिक समस्याएं और समाधान

आचार्य तुलसी ने समाज के दो चित्र प्रस्तुत किए थे। पहला स्वस्थ समाज और दूसरा बीमार समाज। क्या उस समाज को स्वस्थ समाज कहा जा सकता है, जिसमें व्यवस्थागत बहुत तरह के दोष हैं? अगर समाज की व्यवस्था त्रुटिरहित हो तो कोई व्यक्ति दहेज की मांग नहीं कर सकता। दहेज प्रथा को मैं नंबर एक की समस्या मानता हूं। भ्रूणहत्या का स्थान नंबर दो पर है। पहली बीमारी है दहेज की। दहेज के डर से ही भ्रूणहत्या हो रही है। लड़की पैदा हुई तो दहेज की व्यवस्था करनी पड़ेगी। लड़का हुआ तो उससे वंश चलेगा और वह बुढ़ापे का सहारा भी बनेगा। यह सोच है आज के आदमी की।

भ्रूणहत्या मूल समस्या नहीं है। इसकी पृष्ठभूमि में है दहेज की समस्या। भ्रूणहत्या तो समस्या का एक फलित है। दहेज की समस्या है, इसलिए लड़कियों से छुटकारा पाने की बात आदमी के मन में आ सकती है। भले ही आगे की बात वे सोच न पा रहे हों कि लड़की नहीं होगी तो बहू कहां से मिलेगी?

दहेज की समस्या और परिणाम

आदमी बहुत कम सोचता है। एक ही बात उसके दिमाग में उभरती रहती है कि लड़की होगी तो लाखों रुपयों का इंतजाम करना पड़ेगा। पालन-पोषण में जो लगेगा, वह अतिरिक्त। हर तरह से नुकसान ही नुकसान। धन और पदार्थ आदमी के मन-मस्तिष्क पर इस तरह हावी है कि मानवीय पक्ष पर भी आदमी नफे और नुकसान की दृष्टि से सोचता है।

समाज में सभी लोग साधन-संपन्न नहीं हैं। ऐसे लोग भी हैं, जो साधनहीन और गरीब हैं। दहेज की मांग पूरी करने में वे असमर्थ हैं। उसके लिए सरल उपाय यही है कि समस्या को जड़ से ही काट दो। लड़की समस्या है। जन्म लेने से पहले ही उसे समाप्त कर दो। आपराधिक घटनाओं पर विचार करें और

सर्वे करें तो पाएंगे कि बहुत सारे अपराधों की पृष्ठभूमि में धन और संबंधों की ही प्रमुख भूमिका है।

हैरानी की बात यह है कि महिलाओं की प्रताड़ना में महिलाओं का सबसे बड़ा हाथ है। दहेज के लिए जला कर मार डालने में सास और ननद–इन दोनों का बड़ा हाथ होता है। अगर स्त्रियां यह संकल्प कर लें कि उनके द्वारा किसी स्त्री का अपमान और उसकी प्रताड़ना नहीं होगी तो स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव आ सकता है। परिवार में दहेज न लाने की या कम लाने की शिकायत प्रायः सास के द्वारा ही सबसे पहले होती है।

आज दहेज की बीमारी कैंसर से भी अधिक घातक बन रही है। वह अनेक परिवारों की अनेक कन्याओं की बलि ले रही है। कन्या या तो भ्रूण के रूप में ही समाप्त कर दी जाती है अथवा जन्म भी लिया है तो आगे तिल-तिल कर उसे मरना पड़ता है। सैकड़ों कन्याएं अपनी उपेक्षा और स्वयं को माता-पिता की चिंता का कारण समझते हुए आत्महत्या का रास्ता अपना लेती हैं। यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है। समय रहते इस विषय में समाज सचेत नहीं हुआ तो मानव जाति अपने लिए बहुत बड़ा संकट खड़ा कर लेगी। प्रकृति का संतुलन जब भी गड़बड़ाता है, कोई न कोई बड़ा संकट जरूर खड़ा होता है। आश्चर्य यह है कि समाज के चिंतनशील लोग भी इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

समस्या मुफ्तखोरी की

अतिरिक्त मुफ्तखोरी की लत भी समाज में बहुत ज्यादा विकसित हो रही है। बिना पुरुषार्थ किए मिलने वाला धन बहुत कार्यकारी और सार्थक नहीं होता। ऐसा धन बहुधा बुराई में ले जाता है। मैंने देखा कि जिन युवकों ने अपने पुरुषार्थ और परिश्रम से धन कमाया, अर्जित किया, वे तो सफल रहे, किंतु जिन्होंने विरासत के रूप में अपनी पैतृक संपत्ति पाई या जिन्होंने जुए, सट्टे के द्वारा धन कमाया, वे जल्दी ही कुमार्गगामी हो गए। थोड़े ही दिनों में उनका धन भी समाप्त हो गया।

समस्या तलाक की

समाज में तीसरी समस्या है संबंध विच्छेद या तलाक की। आज तलाक के मामले बहुत ज्यादा सामने आ रहे हैं। इस संदर्भ में मैंने कहा था कि अब कुछ नए कोर्स शुरू होने चाहिए। शिक्षा और व्यापार के साथ नए-नए कोर्स आ रहे हैं। कम्प्यूटर कोर्स ने कई नई संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। क्या

अब विवाह के पूर्व वर और कन्या के लिए दांपत्य जीवन को सुखी और सफल बनाने का कोर्स नहीं होना चाहिए? जैसे विवाह के पूर्व जन्म-कुंडली का मिलान होता है, क्या वैसे ही दोनों के इमोशन्स, उनकी रुचियों, आदतों, मनोवृत्तियों और स्वभाव का भी मिलान नहीं होना चाहिए? क्या इस बात का प्रशिक्षण नहीं मिलना चाहिए कि वैवाहिक जीवन को किस तरह शांतिपूर्ण एवं खुशहाल बनाया जा सकता है? केवल धन-संपत्ति के आधार पर रिश्ता जोड़ा, पहले से कोई प्रशिक्षण नहीं दिया तो क्या उसका परिणाम तलाक और संबंध विच्छेद के रूप में सामने नहीं आएगा?

यह सचाई है कि माता-पिता का अपनी संतान के प्रति दायित्व होता है। पाल-पोस कर उसे बड़ा कर देने और शादी-विवाह कर उसका घर बसा देने के बाद वे अपने दायित्व को पूरा मान लेते है, किंतु इस दायित्व को भार समझकर माता-पिता जैसे-तैसे इस बोझ को उतारने की कोशिश करने लगें तो क्या इसे सम्यक् दायित्व-निर्वाह कहा जाएगा? किसी तरह पैसे का प्रबंध कर लड़की को घर से विदा करने का प्रयत्न होता है, वह कितना उपयुक्त है? कोई कह न सके कि लड़की कुआंरी रह गई, इस लोकलाज से बचने के लिए संभवतः ऐसा किया जाता होगा।

यह भी प्रतीत होता है कि माता-पिता का जितना ध्यान धन-संपत्ति की ओर रहता है, उतना अपनी कन्या के शुभ भविष्य की ओर नहीं रहता। कई बार ऐसा सुना जाता है कि धनवान परिवार के अनुपयुक्त व्यक्ति के साथ लड़की का रिश्ता कर दिया गया है। ऐसे भी कई प्रसंग सामने आए कि रात को शादी हुई, विदा होकर लड़की ससुराल गई और शाम को तलाक की स्थिति आ गई।

इस तरह की स्थितियां पश्चिमी देशों में तो हैं। वहां शादी-विवाह कोई खास मायने नहीं रखता। एक व्यक्ति के जीवन में कितनी ही लड़कियां आती हैं। एक महिला के जीवन में कितने ही पुरुष आते हैं, किंतु भारतीय संस्कृति में पाणिग्रहण की प्रथा रही है। एक बार जिसका हाथ थाम लिया, जीवनभर उसे निभाना पड़ता है। यहां अगर तलाक की समस्या प्रबल बनती है तो यह सचमुच चिंतनीय बात है।

समस्या नशे की

परस्पर के संबंधों में आ रही कटुता, तलाक और आपराधिक कृत्य के पीछे एक बड़ा कारण शराब भी है। परिवारों को तबाह और बर्बाद करने

में इसकी प्रमुख भूमिका होती है। शराब पीकर आदमी की मनःस्थिति क्या होती है, बताने की अपेक्षा नहीं है। उसका खामियाजा सबसे ज्यादा पत्नी को भुगतना पड़ता है। रोज-रोज की मारपीट और कलह से तंग आकर पत्नी अपने पति से संबंध विच्छेद के लिए विवश हो जाती है अथवा आत्महत्या जैसा खतरनाक निर्णय ले लेती है।

एक बार आचार्यश्री के पास राजस्थान की एक बहन का पत्र आया। उस पत्र में उस बहन की दर्दभरी कहानी थी। उसने लिखा था–'गुरुदेव! मेरे पति शराब बहुत पीते हैं। उसका खामियाजा मुझे भुगतना पड़ता है। काम-धंधा कुछ नहीं करते और शराब के लिए मुझसे पैसे की मांग करते हैं। मैं उनके लिए पैसे का प्रबंध कहां से करूं? मेरे पिता और भाई आर्थिक दृष्टि से इतने संपन्न नहीं हैं। वहां से भी मैं किसी प्रकार की आर्थिक मदद नहीं ले सकती। जब मैं पति के सामने असमर्थता व्यक्त करती हूं तो वे मुझे शारीरिक रूप से प्रताड़ित करते हैं। वे अभद्रतापूर्ण व्यवहार की लक्ष्मण रेखा को भी लांघ देते हैं। एक दिन उन्होंने कहा–'मुझे तुम पैसे लाकर दो, चाहे इसके लिए तुम्हें शरीर ही क्यों न बेचना पड़े।' मैं शरीर और मन दोनों से टूट चुकी हूं। एक बच्चा है, उसका मुंह देखना पड़ता है, अन्यथा मैं कभी अपने जीवन का अंत कर लेती। आप मुझे मार्गदर्शन दें। आपकी शरण में हूं।'

कारण अपराध का

एक बहन ने अपने शराबी पति की दास्तान सुनाते हुए कहा–'जब तक मेरे पास गहने थे, उन्हें बेचकर पति की आवश्यकता पूरी करती रही। गहने समाप्त हो गए तो पीहर से उधार लेकर काम चलाती रही। अब मेरे लिए कहीं से कोई सहारा नहीं है। पति से इसी तरह मार खाती रही तो जल्दी ही अपंग हो जाऊंगी। मेरा जीवन नरक बन गया है।'

शराब के नशे में सबकुछ संभव है, क्योंकि शराब से विवेक-चेतना पूरी तरह नष्ट हो जाती है। अपराधों की जो लंबी सूची है, नशा उनका मुख्य कारण है। गरीबी, अभाव और दुःख–आदमी को शराब जैसी बुराई की ओर धकेल देते हैं। मेरे पास एक महिला आई। बड़ी देर तक वह अपनी गरीबी का रोना रोती रही। उससे पूछा गया–'पति कोई काम करता है या नहीं?' वह बोली–'उसकी क्या बात पूछते हैं महाराज! वह तो दिन-रात शराब में डूबा रहता है।'

जिस घर का मुखिया शराब पीकर दिनभर घर में पड़ा रहे, उसका परिवार खुशहाल कैसे रह सकता है?

वृद्धों की उपेक्षा

आचार्य तुलसी ने नैतिकता से शून्य धर्म की हमेशा आलोचना की, उसके प्रति सावधान भी किया। अर्थ के पीछे इतनी ज्यादा आसक्ति बढ़ गई है कि उसके सामने धर्म-कर्म सब गौण हो रहा है। माता-पिता का लड़के के प्रति विशेष मोह होता है, लड़की के प्रति कम, लेकिन आज तो ऐसी घटनाएं भी हो रही हैं कि बड़े लड़के ने आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होते ही माता-पिता को किनारे कर दिया। जीवन-यापन के लिए एक निश्चित राशि की व्यवस्था कर दी और अपनी अलग दुनिया बसा ली। अनेक लोग मेरे पास आंसू बहाते हुए कहते हैं–'सोचा था पढ़-लिखकर लड़का बुढ़ापे का सहारा बनेगा, किंतु उसी ने जीवन का सबसे बड़ा दर्द दिया है। अब हम उसे एक भार की तरह लग रहे हैं। हमारे साथ उसका व्यवहार अमानवीय है। हम उपेक्षित जीवन जी रहे हैं।'

पता नहीं क्यों, यह धारणा बना ली गई कि बेटा कमा कर खिलाएगा, आराम देगा। लोग बेटे में सुख और बेटी में चिंता और दुःख देखते हैं। मेरे पास एक वृद्ध व्यक्ति आया। मैंने देखा–उसकी आंखों से आंसू टपक रहे थे। उसने कहा-'महाराज! बेटों ने घर से निकाल दिया। एक बेटी है, अब वही मेरी सेवा कर रही है। उसी के घर में रह रहा हूं।'

बेटी-बेटे में अंतर करने का दृष्टिकोण बदलना चाहिए। ऐसे भी परिवार देखने को मिले कि पांच-सात बेटे हैं और अकेली मां किसी तरह बचे हुए जीवन के दिन काट रही है। व्यक्तिवादी सोच के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। समाज में यह एक अकल्पित बदलाव आया है।

सांस्कृतिक संक्रमण की समस्या

संस्कृति के संक्रमण ने इसमें अपनी भूमिका निभाई है। आज के ग्लोबलाइजेशन के युग में दुनिया सिमट कर बहुत छोटी हो गई है। एक ही दिन में आदमी कई देशों का भ्रमण कर लेता है। स्वाभाविक है कि इससे उसकी विचारधारा प्रभावित होगी। भिन्न परिवेश में रहकर वह अपनी संस्कृति और सभ्यता को कब तक अपनाए रख सकेगा?

बहुत जरूरी है कि सकारात्मक परिवर्तन के लिए धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भी क्रांति हो। अहिंसा भी क्रांति का विषय है। हिंसा का संबंध केवल मारने और न मारने से ही नहीं है। प्रचलित सामाजिक बुराइयों से कैसे छुटकारा मिले, इस पर भी ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। इसके लिए परिवार में प्रशिक्षण का क्रम चले।

विद्यालय और संस्थानों में जो प्रशिक्षण चलता है, वह कार्य-दक्षता बढ़ाने का प्रशिक्षण है, बुद्धि को कुशाग्र बनाने का प्रशिक्षण है। आदमी के सोच-विचार से उसका संबंध नहीं है। पारिवारिक जीवन में सौहार्द कैसे बढ़े, उस प्रशिक्षण का कोई प्रावधान नहीं है, कोई कोर्स नहीं है। यह प्रशिक्षण तो एक अलग तरह का प्रशिक्षण है, जिसमें जीवन के मूलभूत तत्त्वों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

लक्ष्य और मार्ग

जीवन के लिए दो चीजें बहुत जरूरी हैं–लक्ष्य और संकल्प। जिसने जीवन का न तो कोई लक्ष्य बनाया और न कोई संकल्प किया, वह जीवनभर भटकता रहेगा। कहां जाना है? अगर यही पता नहीं है तो फिर व्यर्थ में चलते रहने से क्या फायदा?

प्रत्येक व्यक्ति को सबसे पहले लक्ष्य का निर्धारण करना चाहिए। हमारा लक्ष्य है शांति। मुझे शांति के साथ जीना है। लड़ाई-झगड़ा करते हुए नहीं जीना है, तनाव के साथ नहीं जीना है। रोते-रोते नहीं जीना है। गालियां देते-देते नहीं जीना है। जो दिन-रात कलह और तनाव का जीवन जी रहे हैं, उनके बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने जीवन का कोई लक्ष्य नहीं बनाया।

शांति और सामंजस्य का सूत्र

विवाह सामाजिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यहां से भविष्य का निर्धारण होता है। विवाह को व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा के लिए आश्वासन मानता है। बड़ी आशाओं और उम्मीदों के साथ वह घर बसाता है, किंतु उसके साथ प्रायः कोई गंभीर चिंतन नहीं होता। केवल रंग-रूप देख लिया, क्वालिफिकेशन देख ली और बात पक्की हो गई। जिसके साथ पूरा जीवन व्यतीत करना है, क्या उसकी योग्यता का मापदंड सिर्फ रूप और सौंदर्य ही पर्याप्त है?

हर व्यक्ति का भाव और इमोशन्स अपना-अपना है। पति का अपना अलग संवेग है और पत्नी का अपना अलग। जहां संवेगों का इतना बड़ा भेद है, वहां एकरूप होना कठिन काम है। पहले से अगर लक्ष्य हो कि हमें शांति से रहना है तो शादी जैसे मामले में लोग अपने जीवनसाथी का चुनाव बहुत गंभीरता से करेंगे।

सुखी और सामंजस्यपूर्ण जीवन का सबसे बड़ा सूत्र है–सहिष्णुता। अगर विवाह के पूर्व कोई यह लक्ष्य बना लेता है कि वैवाहिक जीवन के प्रथम क्षण के साथ ही मुझे शांति, समता और सहिष्णुता का विकास करना है तो उसका जीवन शांतिपूर्ण रहेगा। अगर सहन करने की शक्ति नहीं है तो जीवनभर पति-पत्नी में कलह चलती रहेगी। इस तरह का दुःखी जीवन जी रहे कितने ही लोगों की रामकहानी हमारे सामने आती रहती है। कारण एक ही मिलता है कि सहन करने की शक्ति नहीं है। सहिष्णुता का विकास करने को कोई तैयार नहीं है।

कसौटी वैवाहिक जीवन की

मुनि जीवन और गृहस्थ जीवन दोनों में अनुकूल और प्रतिकूल स्थितियां आती हैं। जो मुनि आने वाली अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करना नहीं जानता, वह मुनि जीवन के पालन में सफल नहीं हो सकेगा। महावीर ने एक मुनि के लिए बाईस परीषहों का विधान किया। ये बाईस परीषह उसकी कसौटी है। मुझे पता नहीं, बाईस परीषहों की सूची विवाह करने वालों के लिए क्यों नहीं बनाई गई? उनके सामने भी एक कसौटी होनी चाहिए-वैवाहिक बंधन में बंधने जा रहे हो, इन परीषहों को सहने की क्षमता हो और सहन करने का संकल्प हो, तभी विवाह करो। यह मानदंड या कसौटी सामने हो तो शायद जीवन को सुखमय बनाने की दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

जरूरी है प्रशिक्षण

मुनि बनने से पहले एक साधक को मुमुक्षु अवस्था में प्रशिक्षण के दौर से गुजरना पड़ता है। पारमार्थिक शिक्षण संस्था में और हमारे पास रहकर लंबे समय तक अध्ययन और शिक्षण-प्रशिक्षण लेना पड़ता है। पूरी ट्रेनिंग के बाद परिपक्व हो जाने पर ही उसे मुनि दीक्षा दी जाती है।

क्या विवाह भी एक दीक्षा नहीं है? अंतर इतना ही है कि एक सामाजिक दीक्षा है तथा दूसरी धार्मिक और आध्यात्मिक दीक्षा है। दीक्षा कैसी भी हो,

वह पूरे प्रशिक्षण के बाद ही दी जानी चाहिए। स्कूल और कॉलेजों में विज्ञान आदि विषयों की लिखित, मौखिक शिक्षा भी दी जाती है। क्या विवाह कोई गुड़िया-गुड्डे का खेल है, जो उसके लिए किसी प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं? किसी से पूछा जाए कि विवाहसूत्र में बंधने जा रहे हो, इसके लिए कोई प्रशिक्षण लिया या नहीं? तो शायद अधिकांश लोग यही कहेंगे कि इसके लिए क्या प्रशिक्षण होगा?

मेरे पास एक परिवार आया। साथ में एक युवती थी। परिवार वालों ने बताया–महाराज! इसे गुस्सा बहुत आता है। गुस्से में कभी गली में, कभी चौराहे पर जाकर बैठ जाती है। बड़ी मुश्किल से इसे मनाकर घर लाते हैं। कोई कुछ कह दे तो रूठ जाती है और दो-दो दिन तक अन्न-पानी छोड़ देती है।

लोग विवाह के अवसर पर लड़के-लड़की की जन्मकुंडली का मिलान करवाते हैं कि गण मिल रहे हैं या नहीं? गण मिलते हैं तो रिश्ता पक्का हो जाता है। वास्तविक गण तो तभी मिलेगा, जब प्रशिक्षण होगा। आजकल लड़के-लड़कियों को इतने लाड-प्यार से पाला जाता है कि उन्हें जीवनोपयोगी शिक्षा देना मां-बाप जरूरी नहीं समझते। विवाह के बाद लड़की जब दूसरे परिवेश में पहुंचती है तो उसे स्वयं को उसके अनुसार ढालना पड़ता है। अगर वह ससुराल के वातावरण में ढल जाती है तो उसका निर्वाह हो जाता है, अन्यथा जीवनभर समस्याएं ही सामने आती हैं।

स्थान दें उन्नत जीवन मूल्यों को

प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। लक्ष्य बनाएं कि जीवन को सार्थक बनाना है, जीवन को शांति के साथ जीना है। उन्नत जीवन मूल्यों को जीवन में स्थान देना है। जीवन भी तो एक साधना है। कर्मवाद की भाषा में क्रोध, अहंकार, माया, छल-कपट, लोभ–इनको शांत करने की साधना करना है। लक्ष्य स्पष्ट है और साथ में साधना का संकल्प है तो फिर जीवन शांतिपूर्ण व्यतीत हो सकता है।

गृहस्थ जीवन मुनि जीवन की भांति बड़ी साधना है। इसमें पग-पग पर विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसके लिए प्रतिदिन साधना और प्रशिक्षण का क्रम चलते रहना चाहिए।

मेरी दृष्टि में शांति से बड़ी जीवन की कोई और उपलब्धि नहीं हो सकती। पास में करोड़ों की संपत्ति है, फिर भी ऐसे लोगों को मैंने आंसू बहाते हुए देखा

है। जीवन में शांति नहीं, दिमाग पूरी तरह से गरमाया हुआ है, आदमी रोएगा नहीं तो क्या करेगा? इसलिए शांति जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, बड़ी दौलत है।

प्रशिक्षण हो संयम का

हर व्यक्ति शांति से रहना चाहता है। अशांति से जीना किसी का शौक नहीं, मजबूरी हो सकती है। हर व्यक्ति की यह अभीप्सा होती है कि मेरे घर में शांति रहे, पर रहती कहां है? प्रायः हर परिवार में लड़ाई-झगड़े और आपसी मनमुटाव होता है। अशांति का चूल्हा जलता रहता है। लकड़ी से जलने वाले चूल्हे तो बहुत कम हो गए, किंतु लड़ाई-झगड़े का चूल्हा तो चौबीस घंटे जलता रहता है। क्या इसे शांत करने का कोई उपाय हो सकता है?

हम इस पर चिंतन करें और ऐसी व्यवस्था बनाएं कि घर-परिवार में भी संयम का प्रशिक्षण चले। कठिनाई यही है कि इस तरह के प्रशिक्षण की जरूरत नहीं समझी जाती। घर में कलह और अशांति है तो इसके शमन का उपाय नहीं खोजा जाता। ध्यान दूसरी-दूसरी चीजों पर जाता है। प्रशिक्षण के द्वारा स्थिति पूरी तरह से बदल सकती है और सुखमय पारिवारिक जीवन जीया जा सकता है।

यदि व्यक्ति और परिवार स्वस्थ है तो समाज और राष्ट्र के स्वस्थ होने का सपना भी साकार हो सकता है। परिवार स्वस्थ नहीं है, परस्पर में असहिष्णुता है, खींचतान है तो समाज में उसके लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ेंगे। अगर आदमी में भावनात्मक विशेषताएं और गुण आ जाएं तो निश्चित रूप से वह अपने परिवार को खुशहाल रख सकता है।

१६. जरूरत है एक अभियान की

बहुएं क्यों जल रही हैं? यह एक ज्वलंत प्रश्न है। अनेक कंठों में इसकी गूंज सुनाई देती है। इसका समाधान खोजा जा रहा है कि लोकसभा के प्रांगण में, मैदान में और बाजार में। अभी उत्तर मिला नहीं। सुविधावाद, बिना परिश्रम पैसा बटोरने की मनोवृत्ति, प्रदर्शन और बड़प्पन–ये बड़ी-बड़ी घाटियां हैं, इन्हें पार किए बिना समाधान तक पहुंचा नहीं जा सकता।

मनुष्य में क्रोध, अहंकार और लोभ के संस्कार-बीज विद्यमान हैं। सिंचन मिलते ही वे अंकुरित और पल्लवित हो जाते हैं। उनका पल्लवन होने पर बहुएं भी जल सकती हैं, पिता भी जल सकता है और बेटा भी जल सकता है। क्रोध प्रेरित हत्याएं होती रही हैं। 'दहेज' का प्रश्न सीधा क्रोध से जुड़ा हुआ नहीं है। उसका संबंध है सुविधावाद से, मुफ्तखोरी से, प्रदर्शन और बड़प्पन से।

कठिनाइयों के घेरे में

वैज्ञानिक युग में सुविधावादी दृष्टिकोण अधिक पनपा है। पुराना आदमी कठिनाइयों को झेलता हुआ जी लेता था। आज का आदमी कठिनाइयों में जीने का अभ्यस्त नहीं है। वह आर्थिक कठिनाइयों में जीना भी नहीं चाहता। अभाव की जिंदगी भी जीना नहीं चाहता और मौसम की कठिनाइयों में भी जीना नहीं चाहता। सामाजिक अवमूल्यन का जीवन भी जीना नहीं चाहता। दहेज की समस्या इन कठिनाइयों के घेरे में है।

जो लोग आर्थिक अभाव का जीवन जी रहे हैं, उनके लिए दहेज आर्थिक अभाव की समस्या का समाधान है।

जो लोग श्रम करना नहीं चाहते हैं, मुफ्त का पैसा हजम करना चाहते हैं, उन्हें दहेज से बड़ी-बड़ी आशाएं हैं।

भारतीय साहित्य में ऐसी अनेक कथाएं और घटनाएं मिलती हैं, जो

हमारी पुरुषार्थ-परायण संस्कृति को उजागर करती हैं। राजकुमार ने राजा से कहा–'मैं अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करता हूं, इसलिए जो अपने पुरुषार्थ से कमाऊंगा, वही खाऊंगा। मैं किसी के ऊपर आश्रित होकर जीना नहीं चाहता।'

एक राजकुमारी ने राजा से कहा–'मैं दूसरे के भाग्य पर जीना नहीं चाहती। अपने श्रम पर मुझे भरोसा है। इसलिए आप मेरी चिंता न करें। मुझे अपने पुरुषार्थ से जो कुछ प्राप्त होगा, वही मेरे लिए सबकुछ है।'

यह चिंतन एक उदात्त संस्कृति का चिंतन है। जो समाज अपने भाग्य पर, अपने श्रम पर भरोसा नहीं करता, मुफ्त में मिले हुए धन पर भरोसा करता है, वह उच्चता के शिखर पर नहीं पहुंच सकता।

मूल्यांकन पदार्थ का : अवमूल्यन युवती का

मोटर साइकल, स्कूटर, कार, रेडियो, ट्रॉजिस्टर, टी. वी., रेफ्रिजरेटर आदि अनेक पदार्थ हैं। ये आज के आदमी के साथी-संगी बन चुके हैं। इन सबकी पूर्ति दहेज से हो–ऐसी धारणा भी पर्याप्त मात्रा में बद्धमूल हो चुकी है। इस धारणा ने पदार्थ का मूल्य बढ़ा दिया और विवाहित युवती का अवमूल्यन कर दिया।

भारतीय विवाह संस्था एक पवित्र अनुबंध के साथ चलती है। उसमें वर और वधू का संबंध बाहरी नहीं, काफी गहरा होता है।

बादशाह ने गुजरात के राजकुमार जयसिंह के दोनों हाथ अपने हाथ में पकड़ लिए और बोला–'तुम्हारे पिता चल बसे। तुम अभी बच्चे हो। बोलो! अब क्या करोगे?'

जयसिंह ने कहा–'हिन्दू विवाह पद्धति में वर, वधू का एक हाथ पकड़ता है। वह उसको भी जीवनभर निभाता है, उसकी सुरक्षा करता है। आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए। अब मुझे किस बात की चिंता है?'

इस बात पर बादशाह प्रसन्न हो गया और राजकुमार का राज्याभिषेक कर दिया। हिन्दू समाज की इस सांस्कृतिक धरोहर को आज दहेज लीलता जा रहा है। दूसरों से सुरक्षा करने की बात कोसों दूर चली गई। एक असहाय युवती की अपने घर की दहलीज पर ही होली जला दी जाती है। होली जलाने वाले वे लोग होते हैं, जो धर्म में विश्वास करते हैं, अपने किए हुए कर्मों का फल भोगने में विश्वास करते हैं। एक ओर धर्म, दूसरी ओर एक व्यक्ति को जिंदा जला

देना, यह इतना बड़ा विरोधाभास और इतना बड़ा आश्चर्य है कि जिसके बारे में कुछ सोचा नहीं जा सकता, कहा नहीं जा सकता।

जरूरत है एक अभियान की

अधिक से अधिक दहेज लेने की मनोवृत्ति अनपढ़ लोगों में ही नहीं है, उन लोगों में भी है जो बहुत पढ़े-लिखे हैं। बौद्धिकता इस दहेज की बीमारी का इलाज नहीं है। इसका इलाज है–करुणा का विकास, मानवीय दृष्टिकोण और संवदेनशीलता के सूत्र की अनुभूति। सुविधावादी और प्रदर्शन के दृष्टिकोण के कारण करुणा का स्रोत सूख गया है। उसे फिर से प्रवाहित करने के लिए एक अभियान की अपेक्षा है, एक आंदोलन की जरूरत है। लोभ और सुविधावाद की मनोवृत्ति व्यक्ति को कठोर बना देती है। उस कठोरता के ताप से संवेदना का रस सूख जाता है।

पदार्थ और मनुष्य–इन दोनों में मनुष्य का मूल्य अधिक है। इस सचाई को उजागर करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए एक नई व्यवस्था पर चिंतन होना चाहिए। दहेज की व्यवस्था बहुत पुरानी हो चुकी है। उसमें परिवर्तन लाना कितना संभव होगा, कहा नहीं जा सकता। प्राचीन साहित्य में दहेज के बड़े वर्णन मिलते हैं। ज्ञात होता है कि यह व्यवस्था हजारों वर्ष पुरानी है। पहले यह स्वाभाविक थी, अब यह बहुत विकृत बन गई है।

प्रतिवाद किसका?

तर्क सामने आता है कि पिता अपनी पुत्री को कुछ देता है, उसमें बुराई क्या है? इस तर्क का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। प्रतिवाद उनका करना है, जो दहेज के आस-पास विषवृक्ष बनकर खड़े हो गए हैं।

अणुव्रत आंदोलन में दहेज की विकृति मिटाने के लिए दो उपाय सुझाए गए हैं–

१. दहेज के लिए ठहराव न करना

२. दहेज का प्रदर्शन न करना

इन दो उपायों को विस्तार दें तो कुछ संभावनाओं के बारे में सोचा जा सकता है तथा कुछ विकल्प प्रस्तुत किए जा सकते हैं। उन विकल्पों पर सामूहिक चर्चा और सामूहिक चिंतन होना चाहिए।

दहेज का निर्धारण विवाह से पूर्व हो

चिंतन का पहला बिंदु है विवाह के साथ दहेज का संबंध न रहे। पिता अपनी पुत्री को जो दे, उसका निर्धारण विवाह से पूर्व हो जाए और विवाह संबंध करने वालों को पहले से ही उसका पता रहे। इस स्पष्टता का अर्थ होगा कि संभावना के आधार पर संबंध करने वाले कम मूल्य पर नववधू को सताते हैं, पीड़ित करते हैं, ताना देते हैं, वह स्थिति नहीं आएगी।

विवाह कक्ष का नियोजन

चिंतन का दूसरा बिंदु है विवाह के अवसर पर देने की प्रथा को समाप्त किया जाए। इसका अर्थ यह होगा कि विवाह का संबंध केवल वधू से है, उसके साथ आने वाली सामग्री से नहीं है। इस समय लेन-देन की प्रथा में सामग्री का मूल्य अधिक हो गया है, वधू का मूल्य कम हो गया है। कभी-कभी ऐसा लगता है मानों कि विवाह धन के साथ हो रहा है, कन्या के साथ नहीं हो रहा है। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अणुव्रत समिति के अंतर्गत एक विवाह-कक्ष का नियोजन जरूरी है। उस कक्ष का काम होगा–जनता से संपर्क, अणुव्रत के संकल्पों को जन-जन तक पहुंचाना और विवाह को दहेज के दानव से मुक्त करना।

महिलाएं आगे आएं

सुविधावादी और लालची मनोवृत्ति को एकदम छुड़ाना सरल नहीं है। इसमें बहुत सारी कठिनाइयां हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि महिलाएं स्वयं महिलाओं को प्रताड़ित करती हैं। यदि सास बदल जाए तो बहुओं का जलाना बंद हो जाए। अणुव्रत समिति के विवाह कक्ष का संचालन महिलाएं करें और दहेज-प्रथा के उन्मूलन में महिलाएं आगे आएं तो कार्य को वेग मिल सकता है।

अहिंसा के सूर्य को लोभजनित हिंसा का राहु ग्रसता जा रहा है। उसका विषैला विकिरण जन-चेतना को विषाक्त बनाता जा रहा है। उसका प्रतिवाद अत्यंत आवश्यक है। व्यक्ति, परिवार और समाज–तीनों का स्वास्थ्य इस पर निर्भर है। इसकी चिकित्सा के लिए हर व्यक्ति को जागरूक बनना होगा। तभी इस समस्या को समाहित किया जा सकेगा।

१७. परिवार और अहिंसा

अहिंसा एक भावनात्मक पक्ष है, आंतरिक पक्ष है और इसका प्रयोग बाहर की भूमि पर होता है। व्यक्ति में अहिंसा की चेतना जागती है, वह अपने तक सीमित रहती है। जब वह दूसरे से जुड़ता है, तब वह भीतर की शक्ति एक नए रूप में दूसरों के सामने आती है। कौन व्यक्ति अहिंसा में निष्ठा रखने वाला है, कौन नहीं, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते, क्योंकि यह व्यक्ति के आंतरिक पक्ष से संबंधित बात है और वहां तक इन्द्रिय चेतना की पहुंच नहीं है।

व्यवहार जीवन का स्थूल पक्ष है और वह इन्द्रियों से संबंद्ध है तो अंतर्जगत से भी उसका संबंध है। वहां व्यक्तित्व की पहचान होती है।

जब मृदु व्यवहार सामने आता है तो पता लग सकता है कि इस व्यक्ति में अहिंसा का संस्कार है और जब क्रूर या कठोर व्यवहार सामने आता है तो पता लग सकता है कि इस व्यक्ति में अभी अहिंसा का संस्कार परिपक्व नहीं है। व्यवहार एक प्रकार से हमारे जीवन की और हमारे सारे कार्यकलाप की कसौटी है। इसलिए समूह का संबंध सीधा व्यवहार के साथ है और व्यवहार का संबंध है अहिंसा के साथ। कौन व्यक्ति परिवार में अहिंसा का कितना प्रयोग करता है? यह उसके व्यवहार से जाना जा सकता है।

रागात्मक अनुबंध

परिवार के साथ रहते हुए भी व्यक्ति एक समस्या से जूझता रहता है। परिवार के साथ व्यक्ति का रागात्मक संबंध होता है। इसलिए वह कभी-कभी अहिंसा की उपेक्षा कर देता है। एक व्यक्ति बाजार में अप्रामाणिकता करता है। खाद्य वस्तुओं में मिलावट और तौलमाप में गड़बड़ी करता है, लेकिन परिवार के उपयोग में आने वाली वस्तुओं में वह मिलावट नहीं करेगा। परिवार के लिए तो वह शुद्ध चीज ही लाएगा। ऐसा क्यों? इसलिए कि परिवार के साथ उसका

राग है। वह नहीं चाहता कि मिलावट की चीज खाकर उसके परिवार का कोई सदस्य बीमार हो। दूसरे लोगों पर मिलावट का क्या असर होगा, इससे उसका कोई संबंध नहीं, लेकिन परिवार अपना है, इसलिए वह सुरक्षित रहना चाहिए।

रागात्मक अनुबंध के दोनों पक्ष हैं। कभी राग तो कभी द्वेष। द्वेष राग का ही बाई प्रोडेक्ट है। आचार्य भिक्षु ने इसको बहुत गहराई से पकड़ा था। उन्होंने कहा–द्वेष मूल बात नहीं है, राग को पकड़ना मुश्किल है। मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति की दृष्टि से विचार किया जाए तो पता चलेगा कि हमारी राग की मनोवृत्ति ही मूल है, द्वेष तो उसका प्रासंगिक पक्ष है।

राग का दूसरा पक्ष है अप्रीति। जब वह आता है तो द्वेष के रूप में समस्या पैदा करता है। पारिवारिक जीवन में दोनों पक्ष होते हैं। किसी से राग तो किसी से द्वेष। कभी राग घनीभूत हो जाता है तो कभी द्वेष की तरंगें उछाला मारने लगती हैं। तब राग धीरे-धीरे अपना प्रभाव खोने लगता है। पति-पत्नी के बीच के राग को ही लें। प्रारंभ में वह जितना प्रगाढ़ होता है, दस-बीस वर्ष बाद भी उतना ही प्रगाढ़ रहे तो इसे आश्चर्य ही माना जाना चाहिए। उसमें कमी और थोड़ी-बहुत रूक्षता और कटुता न आए तो परिवार में विवाद की स्थिति भी नहीं आएगी, फिर कानून की भी कोई अपेक्षा नहीं रहेगी।

अहिंसा और भावपक्ष

अहिंसा का संबंध हमारे भावपक्ष से है और लड़ाई-झगड़ा एवं कानून–इनका संबंध तर्कपक्ष और बुद्धिपक्ष से है। ज्यादा कठिनाई वहां होती है, जहां तर्क हमारे भावपक्ष पर हावी हो जाता है। बुद्धि और चातुर्य की अधिकता जहां होती है, वहां कोई न कोई समस्या जरूर पैदा होती है। तर्क को पैदा करता है स्वार्थ। कालांतर में यही लड़ाई-झगड़ा और संघर्ष में बदल जाता है।

परिवार में पति-पत्नी दो ही थे, कोई तीसरा नहीं था। पति अपने ससुराल पक्ष को ज्यादा महत्त्व नहीं देता था, लेकिन पत्नी का झुकाव स्वाभाविक रूप से अपने पीहर की ओर था। बात-बात में वह अपने मायके का जिक्र करती थी।

एक दिन पति ने कहा–'सोचता हूं, इस बार फसल अच्छी हुई तो एक भैंस खरीद लूं।'

पत्नी ने कहा–'जरूर खरीदो, लेकिन एक बात पहले से बता दे रही हूं। हम कुछ दिन छाछ से काम चला लेंगे, भैंस के दूध से निकले मक्खन और

मलाई को मैं अपनी मां के पास भिजवाऊंगी। अनेक बार मुश्किल समय में उन्होंने हमारी मदद की है। इन दिनों वह अस्वस्थ रहती है, दूध की जरूरत उन्हें ज्यादा है।'

पत्नी की बात पति को रुचिकर नहीं लगी। वह बोला–'ऐसा कैसे हो सकता है? भैंस मेरी, उसे चारा-पानी हम दें और दूध-मलाई खाए तुम्हारी मां। हम ऐसा नहीं करेंगे।' पत्नी ने फिर पति की बात का प्रतिवाद किया और परिणाम यह हुआ कि दोनों आपस में उलझ पड़े। दोनों की कटु और कर्कश आवाजें बाहर तक सुनाई देने लगीं। पड़ोसी इकट्ठे हो गए। दोनों अपनी बात पर अड़े हुए थे, उन्हें समझाना मुश्किल हो रहा था। अचानक एक व्यक्ति को पता नहीं क्या सूझा, उसने अपने हाथ में थामी हुई लाठी जोर से पटकी और बोला–'अपना झगड़ा बाद में सलटाना, पहले अपनी भैंस को संभाल लो। वह मेरे खेत में खड़ी फसल को तबाह कर रही है।'

आपस में झगड़ा कर रहे पति-पत्नी क्षणभर के लिए अवाक् रह गए। दोनों के मुंह से एक साथ निकला–'हमारे पास अभी भैंस है कहां? जो तुम्हारी फसल को नुकसान पहुंचा दिया।'

उस आदमी ने कहा–'जब भैंस नहीं है तो मलाई ससुराल कैसे पहुंच गई?' पति-पत्नी दोनों मौन हो गए।

इस तरह बहुत सारे तर्क हमारी भावना के साथ जुड़कर समस्या पैदा करते हैं। कहीं स्वार्थ की भावना, कहीं प्रियता की भावना। जब तक भावपक्ष का पूरा विश्लेषण नहीं किया जाता, तब तक जीवन-व्यवहार में अहिंसा अवतरित नहीं हो सकती। अहिंसा को व्यावहारिक रूप देना है तो उसके लिए आवश्यक है प्रयोग। आज की हमारी कठिनाई यह है कि न तो व्यवहार चलाने का कोई प्रशिक्षण दिया जा रहा है और न ही वृत्तियों के परिशोधन का कोई मनोवैज्ञानिक प्रयोग सिखाया जा रहा है। इस संक्रमणकाल में आदमी यदि विपथगामी बनता है तो कोई आश्चर्य नहीं?

परिवार में अहिंसा प्रशिक्षण

परिवार में ज्यादा समस्याएं पैदा होती हैं व्यवहार के प्रशिक्षण के अभाव में। सहवास की अपनी उपयोगिता है, किंतु शांतिपूर्ण सहवास एक कला है। इस दृष्टि से देखें तो परिवार और अहिंसा में सीधा-सा संबंध है। अहिंसात्मक

प्रशिक्षण की स्थिति में परिवार में विखंडन की स्थिति नहीं आती। अहिंसा प्रशिक्षण से परिवारों में पचहत्तर प्रतिशत शांतिपूर्ण सहवास सुनिश्चित हो सकता है, ऐसा विश्वास के साथ कहा जा सकता है। मेरा मानना है कि मुश्किल से पंद्रह-बीस प्रतिशत लोग ही ऐसे होते हैं, जिनके मन-मस्तिष्क पर किसी बात का कोई असर नहीं होता। शेष पचहत्तर-अस्सी प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जिन्हें समुचित प्रशिक्षण के द्वारा सुधारा जा सकता है, उनमें परिवर्तन लाया जा सकता है।

परिवार और अहिंसा–इन दो शब्दों पर विचार करते समय हमें प्रशिक्षण की बात को प्रमुखता देनी होगी। हमारे मस्तिष्क में इतने प्रकोष्ठ हैं और इतने तंत्र हैं, लेकिन हमें उनकी जानकारी नहीं है। जैन दर्शन की भाषा में इन्हें औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव कहा जा सकता है। औदयिक भाव का तात्पर्य है नकारात्मक या निषेधात्मक भाव और क्षायोपशमिक भाव का मतलब है सकारात्मक या विधायक भाव। इन दोनों भावों की प्रणालियां हमारे भीतर काम कर रही हैं। कभी नकारात्मक भावों वाली प्रणाली का प्रवाह तेज हो जाता है तो कभी सकारात्मक भावों वाली प्रणाली प्रबल हो जाती है। अगर हम प्रशिक्षित हैं तो विधायक भावों वाली प्रणाली को सक्रिय कर निषेधात्मक भावों वाली प्रणाली को निष्क्रिय कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए अपेक्षा है कि हम सचाई को समझने और उसे जीवन व्यवहार में लाने के इच्छुक बने।

स्मरण रहे कि जीवन में परिवर्तन लाने के लिए विवशता नहीं, स्वेच्छा जरूरी है। किसी को बलात् किसी चीज को स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। अगर ऐसा संभव होता तो साल-छह महीने की सजा काटने के बाद अपराधियों में सुधार आ जाता, लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। ज्यादातर तो विपरीत प्रभाव ही पड़ता है। छोटे-मोटे जुर्म में कुछ दिनों के लिए जेल जाने वाले अपराध के सारे गुर सीख जाते हैं। परिवर्तन होगा तो भीतर से होगा। जीवनशैली अहिंसात्मक बने तो अहिंसा जीवनगत होगी, अन्यथा हमारी मनोवृत्ति हिंसा के अवसर तलाशती रहेगी। आज कुशल प्रशिक्षण और प्रयोग के अभाव में समाज में तलाक और विखंडन का नया दौर शुरू हो गया है। यह भारतीय सभ्यता और संस्कृति की बहुत बड़ी विडंबना है।

कसौटी है परिणाम

प्रवृत्ति से कोई मूल्यांकन नहीं होता, मूल्यांकन होता है परिणाम से। सेमिनार, चिंतन गोष्ठियां और चर्चा-परिचर्चा–ये हमारी कसौटी नहीं बन

सकते। कसौटी बनेगा परिणाम। हमने जो चिंतन किया, जो प्रवृत्ति शुरू की, उसका परिणाम क्या आया? जिन्होंने प्रेक्षाध्यान, जीवनविज्ञान और अहिंसा का प्रशिक्षण लिया, उन्होंने शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सूत्र पकड़ लिया और उनका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन शांतिपूर्ण रहा। कानून तो एक विवशता है, शांति और सह-अस्तित्व की अनुपालना का एक कृत्रिम उपाय है, जो राज्य-प्रशासन द्वारा हमारे चाहने तथा न चाहने के बावजूद लागू किया जाता है। अपनी सुविधा के अनुसार कभी हम उसे साधक तो कभी बाधक भी मानते हैं, लेकिन हमारा चिंतन सकारात्मक है और आंतरिक रूप में सह-अस्तित्व के सिद्धांत को हम मानते हैं तो बाहर से नियंत्रित होने की स्थिति ही नहीं आएगी।

जीवन समझौते के अभाव में चल नहीं सकता, चाहे वह एकल जीवन हो या समूह का जीवन हो। हमें एक दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करके ही चलना होगा, निरपेक्ष होकर कोई चाहे कि समाज में रह कर जी सके तो यह उसके लिए बहुत कठिन होगा। प्रकृति की सारी रचना को देखें तो यह बात समझ में आ जाएगी। जड़ हो या चेतन, परस्पर की अवलंबिता का सिद्धांत सब पर लागू होता है। यहां एक भवन का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। ईंट-पत्थर, चूना–ये सब जड़ चीजें हैं, किंतु इनका परस्पर का सहयोग अनुकरणीय है। एक ईंट अगर दूसरे के साथ न जुड़े या जुड़ने के बाद अलग हो जाए तो क्या मकान खड़ा रह सकेगा?

आग्रह और स्वार्थ–दोनों आदमी को कानून की ओर धकेलते हैं। आग्रह बढ़ता है तो संघर्ष और कलह की स्थिति बनती है। संघर्ष और कलह आदमी को अदालत और कानून की चौखट तक पहुंचाते हैं। आग्रह का मतलब ही है अहंकार। आग्रह का परिणाम मैंने न जाने कितनी बार देखा है। एक भरा-पूरा समृद्ध परिवार था। उस परिवार के सदस्यों में परस्पर अच्छा प्रेमभाव था, लेकिन परिवार के एक-दो सदस्यों में आग्रह की ऐसी विष-बेल पनपी कि कालांतर में उसने परिवार का विखंडन करवा दिया, परिवार के कई टुकड़े हो गए। लकड़ी की एक छोटी-सी चौकी के लिए चार भाई लड़ पड़े। संघर्ष छिड़ा तो ऐसा कि वह उन्हें हाईकोर्ट और उससे भी आगे सुप्रीमकोर्ट तक ले गया। सिर्फ आग्रह और अहंकार ने उनके खुशहाल परिवार को उजाड़ दिया।

अनेकांत और अहिंसा का एक प्रमुख सूत्र है अनाग्रह। आग्रह का मूल है आदमी में निहित स्वार्थ का मनोभाव। आज जो लोग इस समस्या पर विचार कर रहे हैं, उन्हें अहिंसा के इन दो पक्षों पर प्रमुखता से विचार करना होगा कि हिंसा को बढ़ाने वाले और परिवार को कानून के दरवाजे तक ले जाने वाले दो बड़े कारण हैं–लोभ और अहंकार।

अहंकार आग्रह के रूप में सामने आता है और लोभ स्वार्थ के रूप में सामने आता है। ये दोनों वृत्तियां हिंसा को जन्म देती हैं और परिवार को अदालत की शरण में ले जाती हैं। अगर इन दोनों पर प्रशिक्षण के द्वारा हमारा नियंत्रण हो तो हिंसा को सिर उठाने का अवसर ही नहीं मिलेगा।

१८. बचाना होगा परिवार नाम की संस्था को

रात के अंधेरे में घूम रहे किसी व्यक्ति का, गश्त लगा रहे पुलिस से सामना हो गया। पुलिस ने उसे रोका और इतनी रात गए घूमने का कारण पूछा।

उस अजनबी ने कहा–'इसका उत्तर मेरे पास होता तो रात को मैं क्यों घूमता, अपने घर में सो रहा होता।'

बहुत सारे सवाल अनुत्तरित होते हैं। आज सुखी और स्वस्थ जीवन का प्रश्न जटिल बन रहा है। इसका कोई सम्यक् समाधान नहीं मिल रहा है।

तत्त्व की मीमांसा करें तो ज्ञात होगा कि दो परमाणुओं के मिलने से एक स्कंध बनता है। एक की संज्ञा है परमाणु और दो परमाणु मिल गए तो वह बन जाता है स्कंध। उसकी प्रक्रिया भी बदल जाती है।

एक से दो होना एक प्रकार का बंधन है। जो परिवार या व्यक्ति बंधन को स्वीकार करना जानते हैं, एकीभाव के अर्थ को समझते हैं, वहां कोई समस्या नहीं होती। वहां स्वास्थ्य भी रहता है और सुख भी रहता है, लेकिन क्या सचमुच बंधन को स्वीकार किया जा रहा है? लगता तो नहीं है। कौन किसके बंधन को स्वीकारता है? बंधन की बात को छोड़ें, नियंत्रण भी किसी को स्वीकार नहीं है।

जरूरी है संवेग-नियंत्रण

भारतीय संस्कृति में तो विनम्रता और सेवा के संस्कार, शिष्टता और शालीनता के संस्कार विरासत में मिलते हैं। संस्कारों की दृष्टि से कितना भी क्षरण हो जाए, भारतीय लोगों में अभी भी माता-पिता और बड़ों के प्रति सहज ही आदरभाव पाया जाता है, लेकिन पश्चिम के देशों में ऐसा देखने को नहीं मिलता। हमारे यहां दूसरे देशों के लोग भी आते हैं। वे बताते हैं कि वहां आत्महत्या और तलाक की घटनाएं बहुत तेजी से बढ़ती जा रही हैं। जहां हर

पांच मिनट में एक तलाक हो रहा हो, वहां पारिवारिक सौहार्द की बात कहां से फलित होगी?

परिवार की एकजुटता और अनुशासन के लिए दो चीजें बहुत जरूरी है–१. बंधन का स्वीकार २. एकीभाव। ये दोनों बातें परिवारों में फलित हो रही हैं, या नहीं, यह देखने वाली बात है। हम केवल स्वस्थ और सुखी परिवार का सपना न देखें, परिवार के सदस्यों में संवेगों पर नियंत्रण का विकास हो रहा है या नहीं, इस पर भी हमारा ध्यान रहे।

व्यक्ति को दु:खी और बीमार बनाने वाला तत्त्व कौन-सा है? वह निश्चित रूप से हमारे कषाय हैं। मनोविज्ञान की भाषा में कहें तो हमारे भाव हैं। ये हमेशा तोड़ने का काम करते हैं, जोड़ने का नहीं। क्रोध, आवेश, अहंकार, लोभ–ये सारे कषाय सुखी और स्वस्थ समाज के सर्वाधिक बाधक तत्त्व हैं। जब तक इन्हें संयमित और नियंत्रित नहीं किया जाएगा, स्वस्थ और सुखी जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

परिवार में अगर एक भी व्यक्ति जोड़ने वाला और नियंत्रित करने वाला हो तो परिवार टूटने और बिखरने से बच जाता है। मैंने देखा है कि परिवार का मुखिया अगर मृदुभाषी, संतोषी, निरहंकारी, समभावी और न्यायी प्रवृत्ति का है तो वह परिवार को एक सूत्र में बांधे रखता है। नरम-गरम सब अपने ऊपर झेल लेता है। इसके विपरीत जिसमें कषायों की प्रबलता है, वह परिवार की एकता को कभी कायम नहीं रख सकता।

मैंने एक अद्‌भुत बात यह देखी कि जो पढ़े-लिखे नहीं थे, निरक्षर थे, उन्होंने अपने परिवार की बेहतर ढ़ंग से सार-संभाल की, जबकि पढ़े-लिखे लोग ज्यादा दिन तक अपने परिवार को संभाल नहीं सके। यह शोध का विषय है कि ज्यादा पढ़ा-लिखा आदमी भावों और संवेगों की दृष्टि से इतना कमजोर क्यों हो जाता है? वह कौन-सी बात है, जो एक अनपढ़ और अशिक्षित आदमी को सहिष्णु और तेज बुद्धि वाले को असहिष्णु बनाती है?

परस्परता और अपनत्व

परिवार का आधार है परस्परता, एक दूसरे के प्रति अपनत्व की अनुभूति। जब तक परिवार के सदस्यों में यह परस्परता की और अपनत्व की भावना रहती है, परिवार संयुक्त बना रहता है। जैसे ही परस्परता के भाव में कमी आई, परिवार टूटन के कगार पर पहुंच जाता है और टूट जाता है।

आज परिवार है कहां? एक पिता के छह बेटे और छहों का अपना-अपना परिवार है। माता-पिता को गांव में किसी नौकर या नौकरानी के सहारे छोड़कर बेटे शहरों में अलग-अलग रहते हैं। गुजारे के लिए मामूली सी रकम हर माह मां और पिता के लिए भेज देते हैं, बाकी सब रामभरोसे। इसीलिए मैं कहा करता हूं कि जो यह सोचते हैं कि मेरे बेटे बुढ़ापे में मेरा सहारा बनेंगे, वे अपनी धारणा को जितनी जल्दी हो सके दूर कर लें।

जरूरी है मिलना

आज परिवार नाम की संस्था को खतरा पैदा हो गया है। आगे चलकर परिवार नाम की प्रणाली रहेगी या नहीं, निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। परिवार के अस्तित्व का सवाल पैदा हो गया है। इसका एक कारण है परिवार से दूरी। मां-बाप बेटे को या बेटी को बचपन से ही एज्युकेशन की दृष्टि से या किसी भी दृष्टि से परिवार से अलग किसी संस्थान में भेज देते हैं और एक मोटी रकम प्रतिमाह उस पर खर्च की जाती है। वह उसी परिवेश में बड़ा होता है।

आगे चलकर वयस्क होने पर भी उसमें पारिवारिक गुण किसी भी हालत में नहीं आएंगे, क्योंकि उसे परिवार में रहने की कभी शिक्षा ही नहीं मिली, संस्कार ही नहीं मिले तो परिवार के बारे में या परिवार की दृष्टि से वह क्यों सोचेगा?

आज ऐसा ही हो रहा है। बीस-बाईस वर्ष का जीवन तो हॉस्टल में गुजर जाता है और वहां से निकल कर आप अपेक्षा करते हैं कि वह परिवार को संभाले तो यह कैसे संभव है?

आज यह ध्यान देने योग्य बात है कि कोई भी अपनी संतान को अपने से इतनी दूर न रखें, परिवार से इतनी दूर न रखें कि पारिवारिक स्नेह का धागा ही टूट जाए। हमारा इतना बड़ा संघ है। मैं इसे अपना परिवार मानता हूं। इस परिवार का मैं मुखिया हूं। सात सौ के लगभग साधु-साध्वियां हैं। कुछ हमारे पास हैं और अधिकांश देश के सुदूर भागों में प्रवास कर रहे हैं, विचरण कर रहे हैं। कुछ तो इतनी दूर हैं कि हमारे पास तक आने में छह-सात वर्ष लग जाते हैं। हमें भी चिंतन करना पड़ता है कि वे इतने ज्यादा दिन तक दूर न रहें। अगर रहेंगे तो परिवार (संघ) के प्रति प्रतिबद्धता में कुछ अंतर आ जाता है। इसलिए दस-

पंद्रह वर्ष तक बाहर रहने की अनुमति हम नहीं देते। तीन वर्ष और अधिकतम पांच वर्ष से ज्यादा बाहर नहीं रहने देते। वापस बुला लेते हैं।

स्वस्थ और सुखी परिवार के बारे में सोचने से पहले यह सोचना है कि परिवार को विघटन से कैसे बचाएं? जब अस्तित्व ही नहीं रहेगा, मूल ही नहीं रहेगा तो सुरक्षा किसकी होगी? तर्कशास्त्र में कहा गया है-

वन्ध्यापुत्रो गौरो वा कालो वा इति न चिन्त्यते।

वन्ध्या (बांझ) का बेटा गोरा है या काला है, इसकी चिंतना नहीं की जानी चाहिए। जब बांझ के संतान होना ही संभव नहीं है तो उसके पुत्र-पुत्री के रंग-रूप के विचार का सवाल कहां से उठता है? जब परिवार नाम की संस्था ही नहीं रहेगी तो उसके स्वस्थ और सुखी होने की बात कहां से आएगी?

परिवार की मुख्य धुरी महिला होती है। आज जब अस्तित्व का प्रश्न उठ रहा है तो महिलाओं का इस ओर चिंतित होना स्वाभाविक है। कुछ बिंदुओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया है। उन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर यह जागरूकता परिवार रूपी संस्था के संरक्षण में अवश्य कारगर होगी।

१९. परिवार की नींव

हमारी दुनिया द्वंद्वात्मक दुनिया है। जहां द्वंद्व है, वहां समस्या का होना अनिवार्य है। अकेला कोई नहीं, सब युगल हैं, जोड़े हैं और यही अनेकांत का आधार बनता है। युगल भी विरोधी युगल हैं। ये विरोधी युगल ही समस्या का हेतु बन रहे हैं। केवल समाधान की बात न करें और केवल सम्यक् आचार की बात भी न करें। हम सीधा आचार को पकड़ते हैं कि यह काम नहीं होना चाहिए या यह काम अच्छा है, यह काम बुरा है। आचार के साथ हमारा पहले से ही एक अनुबंध-सा हो जाता है, जबकि सचाई यह है कि सम्यक् दर्शन नहीं है तो सम्यक् आचार हो नहीं सकता। पहले आचार की मीमांसा मत करो, आचार को मत देखो। पहले दृष्टिकोण को देखो। जब दृष्टि साफ नहीं है तो आचार भी साफ नहीं हो सकता। दृष्टि के परिमार्जन की जरूरत है।

आई स्पेश्लिस्ट डॉक्टर के पास एक व्यक्ति गया। उसने डॉक्टर से आंख का इलाज करने की प्रार्थना की। डॉक्टर ने पूछा–'आंख में क्या प्रॉब्लम है?'

उस व्यक्ति ने कहा–'मुझे हर चीज डबल दिखाई देती है।'

डॉक्टर ने कहा–'क्या तुम चारों की यही समस्या है?'

रोगी को तो डबल ही दिखाई देता था, डॉक्टर को एक के चार दिखाई दे रहे हैं। ऐसा डॉक्टर क्या इलाज करेगा? रोगी चुपचाप वहां से चला गया।

दृष्टि का परिष्कार

हमारी दृष्टि पहले साफ हो। लोगों की दृष्टि सही सम्यक् नहीं है तो किसी के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। इसलिए पहले दृष्टि का परिष्कार करें।

आज स्त्री के बारे में अधिकांश लोगों की दृष्टि नहीं है। भारतीय दर्शन में कहा गया–**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।** भारतीय संस्कृति में स्त्री को लक्ष्मी की संज्ञा दी गई। इसलिए कि स्त्री की कुछ प्रकृतिगत विशेषताएं

होती हैं। मैं यह मानता हूं कि जिसके हाथ में अर्थ की चाबी होती है, संपन्नता होती है, उसका ऐसे व्यक्ति के बारे में जो अर्थाभाव से पीड़ित है, सही दृष्टिकोण नहीं होता। पहले एक स्पष्ट विभाजन था कि घर का काम स्त्री संभाले और बाहर का काम पुरुष संभाले। यह सम्यक् बंटवारा था। धन बाहर से आने वाली चीज है। उसकी चाबी पुरुष वर्ग के हाथ में होती है। हाथ में तिजोरी की चाबी हो और उसका उन्माद न हो, यह कम संभव है। अर्थ कभी अकेला नहीं आता। वह अपने परिवार के साथ आता है। अहंकार, क्रोध, उन्माद, पागलपन आदि उस परिवार के सदस्य हैं।

इस आर्थिक प्रभुत्व ने स्त्री के प्रति समीचीन दृष्टिकोण नहीं बनने दिया। प्राचीनकाल से ही स्त्री की प्रताड़ना होती रही है। अगर आर्थिक सत्ता हाथ में होती तो शायद स्त्री इतनी उपेक्षित नहीं होती, लेकिन अर्थ पर कोई आधिपत्य न होने के कारण उसे हमेशा पुरुष जाति पर निर्भर रहना पड़ा।

सहिष्णुता : प्रकृतिगत गुण

सहिष्णुता का गुण नारी में प्रकृतिगत होता है। स्त्री जितनी सहनशील होती है, उतना पुरुष नहीं होता। इसका आप अगर विश्लेषण करें तो निष्कर्ष यह आएगा कि सहन करने की शक्ति स्त्रीत्व के साथ जुड़ी हुई है। दायित्वबोध भी स्त्री के साथ जुड़ा हुआ है।

मैं गंगाशहर में प्रवास कर रहा था। एक भाई आया। संभवतः महाराष्ट्र से आया था। उसका एक तीन-चार साल का बेटा उसकी अंगुली पकड़े हुए था और दूसरा उसकी गोद में था। सामने आते ही रोने लगा। मैंने पूछा–'क्या हुआ?' उसने कहा–'सड़क दुर्घटना में पत्नी दिवंगत हो गई।' मैंने उसे संबल दिया। उसने कहा–'पत्नी के जाने की पीड़ा तो है ही। सबसे बड़ी पीड़ा यह है कि इन दो बच्चों को मैं कैसे संभालूं? घर में कोई महिला है नहीं। मैं दुकान देखूं या इन दो बच्चों को संभालूं। मेरे सामने बड़ी समस्या है।'

बच्चों की सार-संभाल और पूरे घर की सार-संभाल स्त्री ही कर सकती है, पुरुष नहीं कर सकता, क्योंकि यह पुरुष की प्रकृति के अनुकूल कार्य नहीं है। यह स्त्री की ही विशेषता है कि परिवार का नरम-गरम सब झेल लेती है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि स्त्री पर ही सारा अन्याय क्यों होता है? इस संदर्भ में बिना संकोच के कहना चाहूंगा कि स्त्री के प्रति जितना अन्याय स्त्री करती है, उतना पुरुष शायद नहीं करता। यह मेरी स्पष्ट राय है। दहेज का प्रश्न हो तो सर्वाधिक

शिकायत सास की होती है। बहू के प्रति अक्सर सास का दृष्टिकोण सही नहीं होता। घर में वही ज्यादा प्रताड़ित करती है। भ्रूणहत्या इसी दृष्टिकोण का परिणाम है। स्त्री के प्रति स्त्री का सही दृष्टिकोण हो तो अन्याय और अत्याचार की बात कभी संभव नहीं।

इसलिए पुरुषों से ज्यादा स्त्रियों को इस बात पर विचार करना है कि हम अपनी समस्या पर सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएं। एक बात और इस संदर्भ में विमर्शनीय है स्त्री का मनोबल कुछ कमजोर होता है। परिस्थितियों का सामना करने में अक्सर स्वयं को कमजोर पाती है। हालातों का डटकर मुकाबला करने में स्त्री स्वयं को सक्षम नहीं पाती और जल्दी ही टूट जाती है। आखिर थककर वह परिस्थितियों के सामने आत्मसमर्पण कर देती है।

सफलता का रहस्य

योगशास्त्रीय और स्वरशास्त्रीय दृष्टि से विचार करें तो पुरुष में पराक्रम और शक्ति का अंश ज्यादा होता है। स्त्री में करुणा और संवेदनशीलता का अंश ज्यादा होता है। ममत्व, कोमलता, मृदुता, सहिष्णुता स्त्री के स्वाभाविक गुण हैं। प्राकृतिक और शारीरिक रचना की दृष्टि से जो अंतर है, वह तो है ही। पुरुष मनोबल का जितना विकास कर सकता है और उसे जितना जल्दी विकसित कर सकता है, स्त्री उतनी शीघ्रता से विकसित नहीं कर सकती। यदि हमें समस्या को सुलझाना है तो सबसे ज्यादा जरूरी है कि स्त्री के मनोबल को विकसित करने का प्रयत्न हो और स्त्री के प्रति स्त्री के दृष्टिकोण को सम्यक् बनाया जाए। हम स्त्री और पुरुष की समस्याओं पर कितना ही चिंतन करें, गोष्ठियां, सभाएं और सेमिनार करें, उनसे बहुत ज्यादा असर नहीं होगा। जरूरी है समस्या के मूल तक जाकर उसका समाधान करने की।

भगवान महावीर ने दो दृष्टियों का प्रतिपादन किया। किसी भी चीज को देखने के दो दृष्टिकोण दिए–श्वानी दृष्टि और सैंही दृष्टि। कुत्ते के सामने ढेला फेंको, वह उस ढेले को चाटने लग जाएगा। वह फेंकने वाले की ओर ध्यान नहीं देगा। वही ढेला अगर शेर की ओर फेंको तो वह ढेले पर ध्यान नहीं देगा। सीधा उसे फेंकने वाले पर झपटेगा। इस तरह एक में समस्या को मूल यानी जड़ से मिटाने का प्रयत्न है और दूसरा है उस समस्या को टालने का प्रयत्न। श्वानवृत्ति से समस्या को कभी नहीं सुलझाया जा सकता। समस्या को सुलझाने के लिए हमें सिंहवृत्ति से काम लेना होगा। समस्या के मूल तक जाना होगा।

साम्यवाद के प्रयोक्ता और चीन के निर्माता माओत्से तुंग की एक बात बहुत प्रेरक है। उनकी बीमार मां ने एक बार माओ को अपने बगीचे को सींचने की जिम्मेदारी सौंपी। एक सप्ताह तक मां बिस्तर पर रही और माओ उसकी आज्ञानुसार बगीचे की सिंचाई करते रहे। दस दिन बाद मां स्वस्थ होकर बगीचे को देखने आई तो उसे यह देखकर बहुत निराशा हुई कि बगीचे के सारे पौधे लगभग सूख जाने की अवस्था में हैं। उसने माओ से कहा–तुमने मेरे आदेश को पालने में इतना प्रमाद क्यों किया? पौधों की सिंचाई क्यों नहीं की?

माओ ने कहा–'मैंने आपकी आज्ञानुसार काम किया। पौधों के ऊपर पानी की फुहार लगातार देता रहा। एक-एक पत्ती को सींचा। मां समझ गई कि पानी पौधों की टहनियों और पत्तों को दिया गया है, जड़ों को नहीं। उस दिन माओ को पहली बार यह शिक्षा मिली कि मुख्य है जड़। सिंचाई उसकी होनी चाहिए। फूल और पत्ते तो अपने आप जड़ों से पानी प्राप्त कर लेंगे।' माओ ने लिखा है कि मैंने उसके बाद हर समस्या के मूल पर ध्यान देना शुरू किया। मेरी सफलता का यही रहस्य है।

सबसे पहले स्त्री का सम्यक् दर्शन विकसित होना चाहिए। एक प्राचीन उक्ति है–**नहि नार्यो विनेर्ष्यया।** ईर्ष्या के बिना कोई नारी पैदा नहीं होती। स्त्री के प्रति अगर स्त्री का ईर्ष्या का भाव न हो, सौहार्द और स्नेह का भाव रहे तो इतनी समस्याएं शायद नहीं होंगी। ऐसा कोई भावात्मक प्रयोग हो, जिससे स्त्रियों का स्त्री के प्रति इतना ज्यादा द्वेष भाव न रहे।

परिवर्तन के दो ही उपाय हैं–दंडशक्ति अथवा हृदय परिवर्तन। जब दृष्टिकोण का परिवर्तन नहीं होता तो उपाय एकमात्र दंडशक्ति का ही रह जाता है। इस उपाय से तुर्की के शहंशाह कमालपाशा ने अपने राज्य की सारी स्थिति बदल दी थी। आज के संदर्भ में यह उपाय शायद उतना समीचीन और व्यावहारिक नहीं है, लेकिन दंडशक्ति की उपादेयता और अपरिहार्यता से इनकार भी नहीं किया जा सकता। जब सारे उपाय काम में लेने के बावजूद स्थिति में सुधार नहीं हो तो अंतिम विकल्प के रूप में यह उपाय ही शेष रह जाता है। **शठे शाठ्यं समाचरेत्** वाली उक्ति इसी को ध्यान में रखकर कही गई है। जैसे को तैसा वाला उपाय काम में लेना पड़ता है। जैसा कि आज आतंकियों के साथ हो रहा है। स्पष्ट है उन्हें उपदेश के द्वारा रास्ते पर नहीं लाया जा सकता। सरकार के पास दंडशक्ति है। वह चाहे तो एक दिन में बहुत कुछ हो सकता है, किंतु आज

प्रजातंत्र के युग में इस शक्ति का खुलकर उपयोग नहीं किया जा सकता। विश्व मानवाधिकार आयोग तुरंत दखलंदाजी कर देता है।

दूसरी बात

जब तक लिंग का पता लगाने वाले जांच केन्द्र नहीं थे, सोनोग्राफी की विधा विकसित नहीं थी, तब तक भ्रूणहत्या करने वाले क्लिनिक भी नहीं थे। जन्म के बाद कन्या को मार देने की घटनाएं होती थीं, किंतु भ्रूणहत्या की बात नहीं थी। जब गर्भ में अजन्मे भ्रूण के लिंग का पता लगाने वाला यंत्र विकसित हो गया तो गर्भपात वाला यंत्र विकसित हो गया तो गर्भपात केन्द्रों की जैसे बाढ़ आ गई। दंडशक्ति भी इस मामले में कारगर नहीं हो रही है। चोरी छिपे बहुत कुछ हो रहा है और हृदय परिवर्तन का इस दिशा में कोई प्रयोग नहीं हो रहा है। जरूरत है कि यह बात लोगों के अवचेतन मन तक पहुंचाई जाए कि यह एक जघन्य अपराध है। इससे अनंत कर्मों का बंध होता है। परिवर्तन का आधार यह भावना बनेगी। अन्यथा आज के युग में इतने साधन विकसित हो गए हैं कि आदमी किसी क्लिनिक का सहारा न लेकर अपने घर में ही इस तरह के अपकृत्य को अंजाम दे सकता है। लोगों के संपर्क सूत्र इतने हैं कि मामले को वे ऊपर पहुंचने ही नहीं देते। पहुंच भी गए तो जल्दी ही रफा-दफा करवा देते हैं।

प्रशिक्षण : एक समाधान

इस तरह समस्या के दो ही समाधान नजर आते हैं–या तो दंडशक्ति का प्रबल प्रयोग हो अथवा हृदय परिवर्तन का सघन प्रयत्न और प्रशिक्षण हो। मस्तिष्क कोई जड़ चीज नहीं है। उसमें हमेशा बदलाव की गुंजाइश रहती है। उसे मनचाहे रूप में बदला जा सकता है। न्यूरोलोजिस्ट इस बात को जानते हैं कि हमारे मस्तिष्क में न्यूरोंस के कनेक्शन बनते हैं, बिगड़ते हैं और बदलते हैं। भ्रूणहत्या पर संगोष्ठी का आयोजन करना, वक्ताओं का अपने-अपने विचार प्रकट कर देना, यह सब नाकाफी है। जरूरत है ऐसे प्रयत्न की, प्रशिक्षण की जिससे आदमी का मानस बदले। भ्रूणहत्या के परिणाम की बात उसके अवचेतन मन तक जाए। समस्या के समाधान का यही एक सबसे अच्छा उपाय है।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में अगर किसी संस्कार का निर्माण करना है तो लगातार प्रशिक्षण चलाना होगा। गोष्ठी और सेमिनार अपनी जगह हैं। हमें प्रयोग और प्रशिक्षण को पहली वरीयता देनी होगी। सभा, सेमिनार तो ध्यान

आकृष्ट करने के लिए होते हैं। समाधान के लिए समस्या की तह में जाकर सीधा उस पर प्रहार करना पड़ता है।

महर्षि पतंजलि का एक सूत्र मुझे बहुत प्रिय है, वह सूत्र है–**दीर्घकाल-नैरंतर्य-सत्कारासेवितो दृढभूमिः**–कोई भी विचार दृढभूमि या संस्कार का रूप तब लेता है, जब वह दीर्घकाल तक हो, निरंतर हो और श्रद्धा के साथ हो तो विचार संस्कार बनता है। कोरा श्रवण और मनन नहीं, निदिध्यासन हो, तब कहीं कोई प्रयत्न सार्थक होगा।

समस्या का समाधान आसान नहीं है, बहुत जटिल है। अगर स्त्री के मनोबल को बढ़ाने वाले प्रशिक्षण का काम शुरू होता है तो निश्चित रूप से वह समाधान की दिशा में एक कारगर पहल होगी।

२०. पारिवारिक विघटन के कारण (१)

आचार्य सिद्धसेन ने एक स्तोत्र लिखा। उसका नाम है कल्याणमंदिर। बहुत प्रसिद्ध और पठनीय स्तोत्र है। जैन और बहुत सारे अजैन लोग भी उसका पाठ करते हैं। कल्याणमंदिर में आचार्य ने एक प्रश्न उपस्थित किया कि प्रभो! मुझे आश्चर्य हो रहा है-

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वत कथं किल कर्मचौराः।

आपने क्रोध को नष्ट कर दिया तो शेष बचे कर्मरूपी चोरों को कैसे नष्ट किया?

आदमी हिंसा करता है, अपराध करता है। उसका बहुत बड़ा कारण है क्रोध। जब क्रोध का आवेश प्रबल होता है, आदमी विवेकशून्य हो जाता है। वह पिता को मार देता है, मां की हत्या कर देता है, पत्नी को भी मौत के घाट उतार देता है। क्रोध के वशीभूत होकर एक आदमी ने पूरे परिवार की हत्या कर दी और उसके बाद स्वयं मौत को गले लगा लिया। आचार्य को आश्चर्य है कि जब आपने क्रोध को नष्ट कर दिया तो उसके बाद कर्मरूपी चोरों को आप नष्ट कैसे कर सके? बिना क्रोध के तो कोई किसी को मार नहीं सकता। क्रोध का आवेश हो, तभी आदमी किसी को मार सकता है। यह एक प्रश्न है।

कलह का कारण : क्रोध

हिंसा का, द्वेष का, पारस्परिक कलह का बहुत बड़ा कारण बनता है क्रोध। परिवार में जो समस्याएं पैदा होती हैं, वे ज्यादातर क्रोध के कारण पैदा होती हैं। एक भाई ने बताया कि परिवार के मुखिया उसके पिताजी हैं। वे क्रोधी और आवेशी स्वभाव के हैं। उनके इस स्वभाव के कारण परिवार में बिखराव की स्थिति पैदा हो गई।

एक ओर क्रोध तथा दूसरी ओर असहिष्णुता–ये पारिवारिक विघटन के कारण बनते हैं। एक आदमी क्रोधी हो और सामने वाला सहनशील हो तो काम चल जाता है। पति क्रोधी स्वभाव का है, किंतु पत्नी शांत और सहिष्णु है तो निर्वाह हो जाता है। पति क्रोधी है और पत्नी भी ईंट का जवाब पत्थर से देने वाली है तो 'जैसे को तैसा' वाली स्थिति ज्यादा दिन तक नहीं चल पाती। दो में से एक को अपना अलग रास्ता लेना पड़ता है। ऐसे दंपतियों को हमने देखा है, जो समान रूप से क्रोधी और आवेशी थे। परिणाम यह हुआ कि उन्हें अपना जीवन एकाकी बिताना पड़ा। परिवार में दोनों कभी सामंजस्य नहीं कर पाए।

बहुत पहले की बात है। जैन विश्वभारती में प्रेक्षाध्यान का शिविर चल रहा था। प्रयोग करवाने के बाद मैंने कहा–'अब आप लोगों को ऐसा प्रयोग करना है, जिससे क्रोध शांत हो जाए।'

उस शिविर में कुछ प्रशासनिक अधिकारी भी भाग ले रहे थे। एक अधिकारी खड़ा हुआ और बोला–'आचार्यजी! प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने में क्रोध हमारी सहायता करता है। यदि क्रोध को हम शांत कर दें तो प्रशासन चला ही नहीं पाएंगे। अभी लोग डरते हैं कि बॉस बहुत कड़े मिजाज का है। कोई गलती हुई तो कड़ा दंड देगा, लेकिन यह भय कहीं उनके दिल-दिमाग से निकल गया तो वे हमारी अवहेलना, उपेक्षा शुरू कर देंगे। हमारे लिए कठिनाई हो जाएगी, इसलिए इस प्रवृत्ति का हम पूर्णतया परित्याग नहीं कर सकते।'

उस अधिकारी की बात में एक अपेक्षा से सचाई थी। सीधे और सरल लोग प्रशासन चलाने के मामले में उतने सफल नहीं हो पाते, जितने तेज-तर्रार और कड़े मिजाज के लोग होते हैं। परिवार का मुखिया अगर सीधा और सरल है तो परिवार के लोग उसकी सरलता का अनुचित फायदा उठाने लगते हैं। बिना पूछे परिवार के लोग अपने फैसले स्वयं लेने लगते हैं और परिवार में अराजकता की स्थिति पैदा हो जाती है।

एक विषधर सर्प को एक महात्माजी ने शांति और सहिष्णुता का उपदेश दिया। संकल्प करा दिया कि आगे से कभी क्रोध नहीं करना है। कुछ दिन बाद महात्माजी उसी रास्ते से लौटे तो सोचा कि बांबी के पास जाकर उस भक्त सर्प का हालचाल लेता चलूं। वे सांप की बांबी के पास पहुंचे तो देखा सांप मरणासन्न हालत में पड़ा है। उन्होंने कहा– 'सर्पराज! तुम्हारी यह हालत कैसे

हुई? पहले तो लोग तुम्हारे डर से इस रास्ते से आते-जाते भी नहीं थे। अब देख रहा हूं, तुम्हारे शरीर पर जगह-जगह चोटों के निशान हैं। शरीर पर चींटियां रेंग रही हैं। आखिर हुआ क्या?'

सांप ने कहा–'बाबा! यह आप द्वारा कराए गए संकल्प का फल है। मैंने क्रोध छोड़कर सहिष्णुता और विनम्रता का रास्ता पकड़ा। परिणाम यह हुआ कि जंगल में पशु चराने वाले चरवाहे भी मेरी छेड़छाड़ करने लगे। वे जब-तब मेरे बिल में लाठी प्रवेश कर मुझे बाहर आने के लिए विवश करते हैं। लकड़ी का गट्ठर बांधने के लिए मुझे रस्सी की तरह इस्तेमाल करते हैं। मेरे शरीर की ये चोटें उनके अत्याचार की निशानी है।'

महात्माजी ने कहा–'सर्पराज! तुम भोले हो। मैंने तुम्हे क्रोध न करने और किसी को डसने से मना किया था, फुफकारने से नहीं।

तुमने तो क्रोध का दिखावा करना भी छोड़ दिया। तुम्हारी एक फुफकार ही उन्हें तुमसे पचीस हाथ दूर रखती, तुम मेरी बात समझ ही नहीं पाए। अगर जीना है तो जैसा कह रहा हूं, वैसा करो।'

शांति से भी संभव है प्रशासन

एक विचारधारा प्रशासन के लिए क्रोध को अनिवार्य मानती है, लेकिन दूसरी विचारधारा के अनुसार क्रोध के बिना भी प्रशासन चलाया जा सकता है। आचार्य ने अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए आगे कहा–'क्रोध को तो आपने नष्ट कर दिया, किंतु अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को वश में रखने का विकल्प आपके पास सुरक्षित रहा। परिवार के सदस्यों को अपने अनुशासन में रखने का एकमात्र उपाय क्रोध नहीं है। शांति के द्वारा भी अनुशासन किया जा सकता है, अधीनस्थ से और अधिक अच्छा काम कराया जा सकता है। हमारी समझ में यह बात आ जाए कि शांत भाव से कहने पर हमारी बात ज्यादा मान्य होगी और कठोरता से काम लेने पर मान्य नहीं होगी तो हम अपनी वृत्ति, अपने स्वभाव में स्वयं परिवर्तन लाएंगे।

हम मुम्बई में प्रवास कर रहे थे। वहां एक दिन समाचारपत्र में पढ़ा कि पुलिस के एक जवान ने अपने अधिकारी की हत्या कर दी। कारण यह था कि वह अधिकारी से कुछ दिन की छुट्टी मांग रहा था और अधिकारी छुट्टी नहीं दे रहा था। जब कई बार अनुरोध किया तो अधिकारी ने कड़े शब्दों में उसे

डांट दिया। मन में प्रतिक्रिया पैदा हुई और ड्यूटी के दौरान उसने राइफल से अधिकारी के सीने पर गोली दाग दी।

हमें इस भ्रांति को मन से निकाल देना चाहिए कि क्रोध से ही अच्छा अनुशासन हो सकता है। शांति से भी अच्छा अनुशासन किया जा सकता है। क्रोध से होने वाला अनुशासन सामने वाले के मन में प्रतिक्रिया पैदा करता है। आचार्य ने स्वयं इस सचाई को प्रकट करते हुए कहा–

प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके।
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी॥

आग वृक्ष को जला देती है, किंतु यह भी जान लेना चाहिए कि आग ही पेड़ों को नहीं जलाती, हिमपात भी पेड़ों को जला देता है। बहुत ज्यादा बर्फ पड़ती है तो छोटे पेड़-पौधे झुलस जाते हैं।

एक विकल्प सामने आ गया कि अगर बुराई को मिटाना और नष्ट करना है तो उसके लिए क्रोध करना जरूरी नहीं है, शांति से भी बुराई को मिटाया जा सकता है।

महत्त्व विवेक का

हिंसा का बहुत बड़ा कारण है क्रोध। पारिवारिक झगड़ों का भी बहुत बड़ा कारण है क्रोध। जब क्रोध का आवेश तीव्र होता है तो आदमी का विवेक समाप्त हो जाता है। मनुष्य के चरित्र की रक्षा करने वाला है विवेक। बुद्धि का काम है व्यवसाय करना, निर्णय करना और विवेक का काम है पृथक्करण करना, अलग-अलग करना। रसोई बनाने वाली महिलाएं इसीलिए चावल और दाल की बिनाई करती हैं। उसमें से कंकड़-पत्थर को अलग करती हैं। यह विवेक है।

विवेक के अभाव में सही मूल्यांकन भी नहीं होता। मूल्यांकन करना बुद्धि का नहीं, विवेक का काम है। आज की एक बड़ी समस्या है कि बुद्धि का विकास तो बहुत हो रहा है, किंतु उसी मात्रा में विवेक का विकास नहीं हो रहा है। हमारे संघ में एक मुनि थे। वे बड़े बुद्धिमान थे, किंतु विवेक नहीं था। मंत्री मुनि उनके लिए कहते–'उसके बहन (बुद्धि) तो है, पर भाई (विवेक) नहीं है।' विवेक के बिना हम निर्णय नहीं कर सकते, अच्छे-बुरे को अलग नहीं कर सकते। अच्छे बुरे को अलग करना, हेय और उपादेय को अलग करना विवेक का काम है।

विवेक चेतना को जगाएं

आज बहुत से लोग हिंसा के रास्ते पर चल रहे हैं। ऐसे कितने ही संगठन हैं, जो हिंसा में विश्वास करते हैं। स्वजाति को मारते हैं, दूसरों को भी मारते हैं। वे सब के सब पढ़े-लिखे नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, किंतु आपराधिक कार्यों में लिप्त हैं। जितने भी गैरकानूनी धंधा करने वाले हैं, वे प्राय: पढ़े-लिखे हैं, फिर भी इस धंधे में हैं, इसलिए हमें स्वीकार करना होगा कि उनमें बौद्धिक विकास तो है, पर उनकी विवेक चेतना जागृत नहीं है। आज बहुत जरूरी है कि भौतिक विकास के साथ-साथ विवेक चेतना को भी जागृत किया जाए।

प्रमाणशास्त्र में चार शब्द आते हैं–प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता और प्रमिति। प्रमाण का फल क्या है? प्रमाण का फल है–ज्ञेय, हेय और उपादेय का विवेक। ज्ञेय को जानना, हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना। आज जानने की बात पर ध्यान दिया जा रहा है, किंतु हेय यानी छोड़ने और ग्रहण करने की बात पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। किसे छोड़ना और किसे ग्रहण करना, यह विवेक नहीं किया जा रहा है।

प्राचीन समय की बात है। सम्राट हर्षवर्द्धन एक विशाल साम्राज्य का स्वामी था। हर्ष ने कश्मीर पर शासन के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति की। उसका नाम था मातृगुप्त। उस समय कला और साहित्य का बहुत महत्त्व था। कश्मीर में मेण्ठ नाम का एक प्रख्यात संस्कृत विद्वान था। उस समय विद्वानों और पंडितों की बड़ी कद्र होती थी। कश्मीर के लोगों को इस बात का गर्व था कि मेण्ठ जैसा विद्वान उनके राज्य में रहता है। एक दिन प्रजा की विशाल परिषद जुड़ी। कहा गया कि महाकवि मेण्ठ आज अपने संस्कृत काव्य 'हयग्रीव वध' का पाठ करेंगे। सबमें आतुरता थी कि आज महाकवि मेण्ठ की रचना का आस्वाद मिलेगा। उस विशाल परिषद में महाकवि ने अपनी रचना पढ़ी। सारी सभा रसविभोर हो गई। महाकवि ने देखा कि जनता की आंखों में हर्ष है, प्रसन्नता है। आदमी के बहुत सारे भाव आंखों के द्वारा व्यक्त होते हैं। आंखें प्राय: बता देती हैं कि भीतर में क्या चल रहा है। कहा भी गया है–

भय, चिंता, आलस, अमन, सुख-दु:ख हेत-अहेत।
मन महीप के आचरण, दृग दीवान कहि देत॥

मनरूपी राजा के सारे आचरण आंख रूपी दीवान बता देता है। महाकवि

ने देखा–सबकी आंखों में तो हर्ष है, किंतु राजा की आंखों में प्रसन्नता का कोई भाव नहीं है। उसे अपनी काव्य-रचना व्यर्थ प्रतीत हुई। उसने खिन्न मन से अपनी रचना समेटनी शुरू की, फिर मन में एक बात आई कि मेरा राजा अविवेकी नहीं है, अरसिक नहीं है। वह कोरा बौद्धिक नहीं, विवेकशील भी है। मेरी काव्य-रचना का एक भी अंश उसे सुंदर न लगा हो, ऐसा नहीं हो सकता, फिर उसकी अन्यमनस्कता का कारण क्या है? यही सोच-विचार करते हुए उसने अपनी रचना समेटी तो देखा कि उसके नीचे एक स्वर्णपात्र रखा है। तभी राज्य के शासक मातृगुप्त की आवाज गूंजी–'महाकवि मेण्ठ! अभी आपने काव्यपाठ किया। मैंने उसे ध्यान से सुना। उसका एक-एक शब्द अमूल्य था। प्रायः सभी रसों और अलंकारों से युक्त यह श्रेष्ठ रचना निश्चय ही सर्वोत्कृष्ट है। मैं नहीं चाहता कि रसाप्लावित इस रचना का रस बूंद के रूप में धरती पर गिरे। इसलिए रचना को उठाते समय ध्यान रहे। यह काव्य स्वर्णपात्र में ही रहे।'

महाकवि का संदेह एक क्षण में समाप्त हो गया। उसका मन गदगद् हो गया। वह राजा के विवेक पर मुग्ध हो गया। बहुत आवश्यक है कि हमारा विवेक जागे। कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक, खाद्य और अखाद्य का विवेक, करणीय और अकरणीय का विवेक–सबका विवेक रहे। आचारशास्त्र में बुद्धि का महत्त्व है पचास प्रतिशत तो विवेक का महत्त्व है सौ प्रतिशत। आश्चर्य है कि इतनी आवश्यक चीज के प्रति भी हम इतने लापरवाह हैं।

आश्वास और विश्वास

परिवार में सौहार्द की कमी अविवेक के कारण आती है। अगर हमारी विवेक चेतना जागृत हो तो सौहार्द और सौमनस्यता की स्थिति बनी रह सकती है। संयुक्त परिवारों का जो विघटन हुआ है और हो रहा है, उसका एक कारण है क्रोध, दूसरा कारण है अविवेक और तीसरा कारण है असहिष्णुता। इतनी अच्छी पद्धति थी संयुक्त परिवार की। एक परिवार में सौ आदमियों की रसोई एक साथ बनती थी। पूरा परिवार तनावमुक्त रहता था। बड़ों के प्रति आदर और सम्मान की भावना होती थी। आज स्थिति यह है कि एक ही बेटा है और वह भी पत्नी-बच्चों के साथ मां-बाप से अलग रहता है। बूढ़े मां-बाप अकेले अपनी जिंदगी काट रहे हैं। संयुक्त परिवार की व्यवस्था हो तो इससे बड़ा कोई दूसरा समाधान नहीं है। सब एक दूसरे के सहयोगी बनते हैं एवं किसी को अकेलेपन की अनुभूति नहीं होती।

२१. पारिवारिक विघटन के कारण (२)

पारिवारिक सौहार्द पर गोष्ठी हो रही थी। सबने अपनी-अपनी बात कही। अंत में एक अनुभवी व्यक्ति की बारी आई। उस अनुभवी आदमी ने हवा में एक रुमाल लहराया, जिसमें कई गांठें लगी हुई थीं। उसने पूछा–'आप लोग बताएं कि रुमाल बड़ा है या छोटा?' आवाज आई कि रुमाल छोटा है।

उस व्यक्ति ने रूमाल की सभी गांठों को खोल दिया। सबने देखा, अब वह रुमाल बड़ा हो गया था, जो पहले देखने में छोटा लग रहा था।

रुमाल वही था, किंतु गांठों के कारण सिकुड़ने से वह छोटा हो गया और गांठें खोल देने से वह बड़ा हो गया। हमारी चेतना की भी यही स्थिति है। चेतना विस्तार लेती है तो हम बड़े बन जाते हैं और संकुचित चेतना हमें बहुत छोटा बना देती है।

गांठ को बांधने और खोलने में हमारे हाथ की स्थिति एक जैसी नहीं रहती। गांठ को खोलते समय हमें उस दिशा से विपरीत जाना होगा, जिधर से हमने गांठ लगाई थी। धर्म की आराधना का प्रयोजन है गांठ खोलने का अभ्यास करना। क्रोध और आवेश की दशा में गांठ लगती है। क्रोध का शमन कर प्रसन्नता की स्थिति पैदा करो, गांठ खुल जाएगी। क्षमा की स्थिति में गांठ खुलती है और परिवार में शांति स्थापित होती है। यह एक सुंदर रूपक है, जिसमें सौहार्द और आवेश का सुंदर चित्रण किया गया है।

गांठें जितनी ज्यादा होती हैं, चेतना उतनी ही सिकुड़ती चली जाती है। जहां चेतना सिकुड़ती है, वहां कोई अच्छा काम नहीं हो सकता, इसलिए यह प्रयत्न होना चाहिए कि हमारी चेतना सिकुड़े नहीं, वह विकसित और विस्तृत रहे।

कषाय : मानसिक शांति की बाधा

परिवार में अशांति और विखंडन का वातावरण बनता है, सौहार्द टूटता है तो उसका सबसे बड़ा कारण बनता है क्रोध, अहंकार, छल-कपट और

भेदभाव की गांठें। कषाय आत्मा के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। मानसिक शांति में भी कषाय बहुत बाधक बनता है। ये हमेशा तोड़ने का काम करते हैं, जोड़ने का नहीं। परिवार में अगर एक भी व्यक्ति ऐसा है, जिसमें इन कषायों की प्रबलता है तो परिवार की नींव कमजोर होनी शुरू हो जाती है। वह परिवार टूटकर बिखर जाता है। मेरे पास कई बार परिवार आते हैं और मुझे बताया जाता है कि परिवार में एक सदस्य के क्रोध और आवेश के कारण पूरे परिवार की शांति भंग हो रही है।

परिवार को विखंडित बनाने वाली और उसमें जहर घोलने वाली एक अन्य बड़ी समस्या है छल-कपट की प्रवृत्ति। परिवार का एक भी सदस्य कपटी वृत्ति का है तो वह परिवार के अन्य सदस्यों में संशय का विष घोल देगा। परिवार के सदस्य एक-दूसरे के प्रति शंकाशील हो जाएंगे और बिना कारण एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखेंगे। छल-कपट रसोई में हो, व्यापार में हो, किसी भी क्षेत्र में हो उससे अलगाव और दुराव ही पैदा होगा।

लोभ और लालच की मनोवृत्ति भी परिवार के सौहार्द को समाप्त करती है। दूसरे के अधिकार को हड़पने की इच्छा रखना और वैसा प्रयत्न करना लड़ाई-झगड़े की बुनियाद है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है–क्रोध प्रीति का नाश करता है। मान विनय का नाश करता है। माया मैत्री का नाश करती है और लोभ सब गुणों का नाश कर देता है।

लोभ : एक जाल

आज की सबसे बड़ी समस्या है लोभ। आदमी कहीं भी रुकने के लिए तैयार नहीं है। एक लालसा पूरी हुई कि दूसरी तैयार है। स्थिति ऐसी बनती है कि आदमी रेगिस्तानी हिरण बन जाता है। धूप में चमकती रेत पानी का भ्रम पैदा करती है। हिरण उसके लिए दौड़ता-भागता है और इस भ्रम के कारण अपने जीवन का अंत कर देता है।

शिकारी लोग शिकार को फंसाने के लिए मजबूत और पेचीदा जाल बुनते हैं, किंतु वह भी कभी-कभी कारगर नहीं हो पाता, लेकिन लोभ का जाल तो ऐसा है कि उसमें जो फंसा, उसका निकल पाना लगभग असंभव है। यह ऐसी बुराई है, जो भाई-भाई, पिता-पुत्र और अन्य रिश्तों में भी दरार डाल देती है।

पुराने समय की बात है। दो अभिन्न मित्र धन कमाने के उद्देश्य से यात्रा पर निकले। उस समय आज की तरह यान-वाहन से यात्रा नहीं होती थी। लोग

पैदल ही यात्रा करते थे। दिनभर चलने के बाद जहां शाम हो जाती, वहीं रात्रि विश्राम के लिए ठहर जाते। अपना भोजन बनाते, खाते और सवेरे फिर यात्रा शुरू कर देते। दोनों का भाग्य अच्छा था। एक दिन उन्हें मुहरों (स्वर्ण मुद्राओं) से भरी थैली रास्ते में मिल गई। दूर देश जाकर कमाने की अब कोई जरूरत नहीं रह गई थी। प्रसन्न मन से वे लौट गए, लेकिन बिना परिश्रम मिले धन ने उनके मन में कुविचार पैदा कर दिया। दोनों के मन में अलग-अलग चिंतन पैदा हुआ कि मुहरों का बराबर बंटवारा करना पड़ेगा। काश! यह सारा धन उसे अकेले को मिला होता। धन-संपत्ति अक्सर आदमी में सुमति नहीं, कुमति पैदा करती है। दोनों के मन में कुबुद्धि समा गई। घात-प्रतिघात का खेल शुरू हो गया।

घर की ओर लौटते हुए एक शाम को जब वे रात्रिवास के लिए किसी सराय में ठहरने का उपक्रम कर रहे थे, दूसरे साथी को गांव की दुकान से कोई सौदा लाने के लिए भेज दिया। मन में सोचा था कि थका-मांदा जब यह सौदा लेकर लौटेगा तो विष मिश्रित लड्डू, जिसका प्रबंध उसने पहले से ही कर रखा था, खिलाकर सारी बाधा दूर कर लेगा और तब सारी मुहरें उसी की हो जाएंगी।

प्रवास स्थल से दूर सौदा लाने गए उसके साथी के मस्तिष्क में भी एक नकारात्मक विचार पैदा हुआ कि हम घर पहुंच जाएंगे। बंटवारे में थोड़े से सिक्के आएंगे। पहले ही सारा मैदान साफ कर लेना चाहिए। ऐसा सोचते हुए उसका हाथ अनायास ही कमर में बंधे छुरे पर चला गया, जो सुरक्षा के लिए हर वक्त वह अपने पास रखता था।

मन में एक खतरनाक योजना को लिए वह अपने आवास स्थान की ओर लौटा। सावधानीपूर्वक सधे कदमों से वह साथी की ओर बढ़ा और हाथ में पकड़ा छुरा पूरी ताकत से मित्र की पीठ में भोंक दिया।

मुहरों से भरी थैली को जी भरकर उसने आंखों से निहारा और एक पल में ही सुखद जीवन के न जाने कितने मंसूबे बांध डाले। सारा अवरोध दूर हो चुका था। वापस गांव लौटने पर मित्र के परिवार वालों से वह क्या कहेगा? इसका सारा तानाबाना उसने जल्दी ही बुन लिया। सारी कल्पित कहानी गढ़ ली और प्रसन्न मन से थकान मिटाने और क्षुधा तृप्ति के लिए लड्डुओं का डिब्बा खोला। अब हिस्सा बंटानेवाला दूसरा कोई नहीं था। अपनी योजना को इतनी अच्छी तरह संपन्न करने की खुशी में उसने सारे लड्डू खा लिए। उसे यह पता नहीं था कि इस दुनिया से जाने से पहले उसका मित्र उसके लिए भी पर्याप्त प्रबंध कर चुका है। लड्डू में मिले जहर ने शीघ्र ही अपना असर दिखाना

शुरू कर दिया और नींद से बोझिल उसकी पलकें एक बार जब बंद हुईं तो फिर कभी नहीं खुलीं। सिरहाने रखी मुहरों की थैली मानों उनके जैसे ही किसी और लोभी की प्रतीक्षा कर रही थी।

लोभ को पाप का बाप कहा गया है। लोभ मन में समा गया तो समझो सारे पाप सिर पर सवार हो गए। इससे हर संभव बचने का प्रयास किया जाना चाहिए।

अहिंसा प्रशिक्षण से कषाय विजय

कषाय विजय ऐसी दवा है, जो सभी बुराइयों का शमन करती है, लेकिन यह कार्य इतना सरल भी नहीं है। लंबे समय से अपना आसन जमाए बैठी बुराई इतनी आसानी से अपना स्थान नहीं छोड़ती। वर्षों से रह रहा किराएदार भी इतना जल्दी मकान खाली नहीं करता। बुराई उससे कहीं ज्यादा सशक्त है, क्योंकि वह हमारी प्रवृत्तियों, आदतों में घुसपैठ कर चुकी होती है। वह तभी जाएगी, जब चेतना का रूपांतरण होगा, चेतना बलवती होगी और तीव्र इच्छाशक्ति जागेगी। अनादिकाल से हमारे भीतर अपना अड्डा जमाए बैठे विजातीय तत्त्व हमें अपनी गिरफ्त से इतनी आसानी से मुक्त नहीं करेंगे। जैसे अपनी जगह खाली कराने के लिए पुलिस की सहायता लेनी पड़ती है, वैसे ही विजातीय तत्त्वों को बाहर निकालने के लिए अहिंसा प्रशिक्षण रूपी पुलिस बल की मदद लेनी पड़ेगी।

अहिंसा प्रशिक्षण में इन चार मुख्य कषायों पर विजय पाने का अभ्यास कराया जाता है। कोरा सिद्धांत, कोरी चर्चा, कोरा उपदेश कभी कार्यकारी नहीं बनता। इनके साथ प्रयोग और अभ्यास की युति होनी चाहिए। मलेरिया बुखार मीठी दवा से नहीं जाता। उसके लिए कुनैन (क्लोरोक्वीन) की गोली लेनी जरूरी हो जाती है। जहर को जहर से ही मारा जा सकता है। चिरायता और कुटकी कितने भी कड़वे और खारे हों, किंतु बीमारी में ये रामबाण का काम करते हैं।

अहिंसा प्रशिक्षण चार बुरी आदतों के लिए कड़वी दवा है। क्रोध जैसी बुराई के शमन के लिए कम से कम तीन महीने तक अनुप्रेक्षा की दवा लेनी पड़ेगी। अनुप्रेक्षा एक संकल्प और सुझाव का प्रयोग है। ये प्रयोग वर्षों से बद्धमूल बुराइयों की जड़ें हिला देते हैं।

जो अपने व्यक्तिगत जीवन में और पारिवारिक जीवन में शांति चाहते हैं,

उन्हें समयबद्ध प्रशिक्षण लेना होगा। तीन महीने तक अभ्यास करना होगा। तीन महीने में एक परिवर्तन घटित हो जाएगा। बहुत सारी बुराइयां विदा ले लेंगी। तीन महीने के अभ्यास से क्षमा की चेतना का विकास, विनम्रता की चेतना का विकास, सरलता की चेतना का विकास और संतोष की चेतना का विकास हो जाएगा। यह वर्षभर का पूरा क्रम है चार कषायों को दूर करने के लिए। क्षमा, विनम्रता, सरलता, और संतोष की चेतना जाग गई तो अशांति का प्रश्न अपने आप समाहित हो जाएगा।

व्यक्तिगत जीवन में और पारिवारिक जीवन में अगर आप शांति के आकांक्षी हैं तो अनिवार्य रूप से प्रयोग और अभ्यास की प्रक्रिया से गुजरना होगा। केवल पाठ पढ़ने से कोई परिवर्तन नहीं होगा। सफलता का सबसे बड़ा सूत्र है–अभ्यास।

अहिंसा प्रशिक्षण सफलता का सबसे बड़ा मंत्र है, किंतु प्रशिक्षण के लिए जरूरी है संकल्पशक्ति का विकास, एकाग्रता का विकास, दृढ़ निश्चय का विकास और सुझाव का अभ्यास। इस प्रक्रिया से चलें तो कोई भी बदलाव असंभव नहीं होगा।

बहुत वर्ष पहले की बात है। मैं पूज्य गुरुदेव के साथ लाडनूं में था। एक दिन विश्राम के बाद जोरों की प्यास लगी। गर्मी का मौसम था। साथ के संत एक प्याला पानी लेकर आए। मैंने पानी पीया। आधा घंटा बाद फिर एक प्याला पानी पीया। तीन-चार बार पानी पीया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि पहले प्याले में मुझे जो तृप्ति मिली, वह दूसरे मे नहीं थी और दूसरे में जो तृप्ति मिली, वह तीसरे में नहीं थी। मैंने संतों से पूछा कि पानी पहले वाला ही है या दूसरा लाए हो? मुझे बताया गया कि पानी तो एक ही जगह से लाया गया है और वह एक जैसा ही है, फिर मुझे तृप्ति में यह अलग-अलग अनुभूति क्यों हुई? पहले प्याले में मिठास का जो अनुभव हुआ, वह दूसरे में क्यों नहीं हुआ? मैंने उसी समय एक कविता लिखी–**अब कंठों में प्यास नहीं है।**

प्यास लगने पर पानी ज्यादा मीठा और भूख लगने पर भोजन ज्यादा स्वादिष्ट लगता है। पारिवारिक शांति और सौहार्द के लिए अहिंसा प्रशिक्षण के संदर्भ में यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि बताएं, आपके कंठों में प्यास है या नहीं? अगर प्यास है तो प्रशिक्षण बहुत अच्छा लगेगा। प्यास नहीं है तो प्रशिक्षण के दिन मुश्किल से कटेंगे। प्यास जितनी ज्यादा तीव्र होगी, आनंद और तृप्ति की उतनी ही ज्यादा अनुभूति होगी।

२२. नशा : नाश का द्वार

इतिहास में मधुरता होती है, मिठास होती है। लगभग पैंतीस-चालीस साल पहले की बात है। गुरुदेवश्री तुलसी लाडनूं में चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। शाम को हम पंचमी समिति के लिए दूर जाते थे। एक दिन संतों के साथ मैं वापिस आ रहा था। शाम हो गई थी। तभी मैंने बकरियों का झुंड देखा, जो बबूल के कांटे खा रहा था। निकट ही खड़े चरवाहे से मैंने पूछा–भाई, तुमने दिन-भर इन्हें चराया। अब शाम को इनका पेट भर गया है तो भी ये कांटे खा रही हैं। पेट भरा नहीं क्या?

उस समय चरवाहे ने जो उत्तर दिया, आज भी मुझे याद है। उसने कहा–महाराज! आप जाणो कोनी कै? म्हे लोग भी तो मीठो खार पछै चरको खावां। अर्थात् हम लोग भी तो मीठा खाने के बाद चरका (नमकीन) खाते हैं। ये पशु हैं तो क्या हुआ, जायका तो ये भी बदलते हैं। दिनभर मीठा खाया और अब थोड़ा चरका खाएंगे।

मैं भी कहना चाहूंगा कि मीठी बातें तो बहुत सुन ली, अब थोड़ी चरकी बातें भी सुन लें। चरकी बात यह है कि आजकल घरेलू कलह बहुत बढ़ रहा है। पूरे देश में कहीं भी चले जाएं, सब जगह एक ही दृश्य देखने को मिलेगा। घरेलू और पारिवारिक कलह। ऐसा क्यों?

पारिवारिक कलह और नशा

हमने कलह और हिंसा के कारणों की खोज की तो यह निष्कर्ष सामने आया कि जहां नशा है, वहां कलह निश्चित रूप से होगा। अपनी यात्रा के दौरान हमने लोगों से और विशेषकर पंजाबी बहनों से बार-बार यह सुना कि शराब हमारे घर को बर्बाद कर रही है। यह कोई एक की कहानी नहीं, घर-घर की कहानी है।

एक संस्कृत कवि ने शराब के अनेक गुण बतलाते हुए कहा–

मद्यं नाम प्रचुरकलहं निर्गुणं नष्टधर्म
निर्मर्यादं विनयरहितं नित्यदोषं तथैव।
निस्साराणां हृदयदहनं निर्मितं केन पुंसा।
शीघ्रं पीत्वा ज्वलितकुलिशो याति शक्रोऽपि नाशम्।

शराब पीने का पहला फायदा तो यह है कि घर में कलह शुरू हो जाएगी। शराब पीने का मतलब है अपनी चेतना को विकृत बना लेना। चेतना विकृत हो गई तो उसका परिणाम निश्चित रूप से लड़ाई और झगड़ा होगा। आज दुनिया में जितने भी अपराध हो रहे हैं, उनकी तालिका बनाई जाए और उनका सर्वेक्षण किया जाए तो पचास प्रतिशत अपराधों का कारण शराब मिलेगी। शराब जैसा नशा इस दुनिया से विदा हो जाए तो जेलें आधी हो जाएंगी। आधे से ज्यादा बंदी तो शराब के नशे में किए गए अपराधों के कारण जेल में बंदी हुए हैं।

घरेलू विवाद हो सकते हैं। परिवार में आठ-दस सदस्य हैं। कोई जरूरी नहीं कि सब एक ही स्वभाव के हों, सबकी अपनी-अपनी रुचियां हैं, जरूरतें हैं, अपना-अपना आग्रह भी है। धन-सम्पत्ति संबंधी विवाद भी हो सकते हैं, किंतु ये छोटे-छोटे आपसी विवाद व्यक्ति को हत्या और आत्महत्या तक नहीं ले जाते। कोर्ट-कचहरी तक भले ही ले जाएं, लेकिन शराब तो आदमी को पूरी तरह से बेभान बना देती है, विवेक को समाप्त कर देती है। ऐसे में किसी संगीन या गंभीर अपराध से कोई बच नहीं सकता।

शराब : धीमा जहर

शराब का दूसरा गुण है हृदयदहन। यह हृदय को दग्ध कर देती है, फेफड़ों को जला देती है। आचार्य तुलसी के पास एक बार जोधपुर से सेना के एक सेवानिवृत्त अधिकारी का पत्र आया। बहुत करुणापूर्ण पत्र था। उसने लिखा था–आचार्यश्री! लंबे समय तक सेना में रहा और शराब मेरी आदत में शामिल हो गई। अब मैं इसका इतना आदी हो गया हूं कि चाह कर भी इसे छोड़ नहीं सकता। मेरे गुर्दे लगभग जवाब दे चुके हैं। फेफड़ा डेमेज हो गया है। लीवर नष्ट हो गया है। शराब के इस जहर का घूंट-घूंट पीता हुआ मैं रोज एक-एक कदम मौत की ओर बढ़ रहा हूं। जीने की कोई आशा नहीं। आप मेरा मार्गदर्शन करें।

प्रश्न होता है कि जो चीज स्वास्थ्य के लिए, पारिवारिक जीवन के लिए

इतनी हानिकारक है, उसे आदमी क्यों अपनाता है? हर आदमी में जिजीविषा होती है। कोई भी मरना नहीं चाहता, जानबूझ कर जहर नहीं पीता। मरना हो, आत्महत्या करनी हो तो अलग बात है, लेकिन होशोहवास में जानबूझ कर कोई भी आदमी जहर नहीं पीएगा। प्रश्न होता है कि जीने की इच्छा वाला आदमी शराब के रूप में इस धीमे जहर को क्यों पीता है?

एक तर्क दिया जाता है कि शराब आदमी को कुछ देर के लिए तनावमुक्त और चिंतामुक्त कर देती है। आदमी घर-गृहस्थी के तमाम झंझट भुला कर किसी और दुनिया में पहुंच जाता है, लेकिन यह तनावमुक्ति स्थायी नहीं है। शराब का हो, अफीम का हो, चरस-गांजे या भांग का हो, कोई भी नशा चिरस्थायी नहीं है। वह कितनी देर तक असर करता है, इसकी एक निश्चित अवधि है। उसके बाद यानी नशा उतर जाने के बाद आदमी फिर चिंता और तनाव की दुनिया में चला जाता है। नशा शरीर को जर्जर करता रहता है और एक स्थिति ऐसी आती है कि फिर नशा उस आदमी को पीने लगता है, फिर न कोई दवा काम करती है, न कुछ और, फिर यह कहां की बुद्धिमानी है कि हम ऐसी चीज के गुलाम बनें, जो हमारे शरीर, मन और भावों को ही नहीं, संपूर्ण चेतना को विकृत कर डाले। क्यों थोड़े-से आनंद के लिए हम उस चीज को अपनाएं, जो हमें जिंदगी के दीर्घकालीन आनंद से वंचित कर दे।

जैन साहित्य में और भगवान महावीर की वाणी में निर्देश मिलता है कि परिणाम पर विचार करो। जो परिणाम पर विचार नहीं करता, उसके लिए **खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा**–क्षण भर का सुख चिरकाल का दुःख बन जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है–

जहा किंपागफलाणं परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो।

किंपाक फल खाने का परिणाम सुंदर नहीं होता। इसी तरह भोग का परिणाम कभी सुंदर नहीं होता। उत्तराध्ययन सूत्र में मुनि चित्त और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के बीच संवाद चलता है। दोनों सगे भाई हैं। एक मुनि है और दूसरा चक्रवर्ती राजा। मुनि भोगों को किंपाक फल बताकर उन्हें छोड़ने का प्रतिबोध दे रहे हैं और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भोगों को त्यागने में स्वयं को असमर्थ बताकर अपनी विवशता दिखा रहा है।

हम प्रारंभ और परिणाम, दोनों पर विचार करें। प्रारंभ में जो चीज अच्छी लगती है, बाद में वह बहुत खराब साबित होती है। भोगों के संदर्भ में यह बात बहुत सटीक लगती है। सबसे बड़ी बात यह है कि फिर काम-काज में मन नहीं लगता।

नई जिंदगी मिल गई

पंजाब से एक बहिन आई और बोली–गुरुजी! बहुत दुःखी हूं। हम जिस स्कूल में ठहरे हुए थे, वह बहिन उस स्कूल में टीचर थी। मैंने कहा–तुम तो पढ़ी-लिखी हो और अध्यापिका हो, फिर दुःखी कैसे?

उसने कहा–मुझसे ज्यादा दुःखी शायद ही कोई दूसरा होगा। अपनी दास्तान सुनाते हुए उसने कहा–एक ही बेटा है। अपनी अधिकांश कमाई उसकी पढ़ाई में खर्च कर दी। ऊंची शिक्षा दिलाई। बी.ए. तक वह प्रथम श्रेणी में पास होता रहा, फिर आई.आई. टी. में दाखिला लेकर वहां से इंजीनियरिंग का डिप्लोमा लिया। उसी दौरान संगत गलत हो गई। वह शराब पीने लगा और आज स्थिति यह है कि रात में ही नहीं, दिन में भी पीता है। कोई कामकाज नहीं करता। भविष्य पूरी तरह से अंधकारमय है।

मैंने उस बहिन की पीड़ा सुनी तो उससे कहा–उसे एक बार मेरे पास लाओ। दूसरे दिन वह बहिन उसे लेकर मेरे पास आई। बहुत मुश्किल से आया। मैंने उससे कुछ पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा, फिर कहा–यह उम्र तो केरियर बनाने की उम्र है। अपनी मां के एक ही बेटे हो, इसलिए तुम्हारे ऊपर जिम्मेदारी भी ज्यादा है। तुम शराब छोड़ दो।

वह बोला–अब नहीं छूट सकती, गुरुजी! मैंने कोशिश करके देख ली।

मैंने कहा–अगर मैं छुड़ा दूं तो?

वह बोला–आभारी रहूंगा, लेकिन है बहुत मुश्किल। मैंने एक बार कोशिश की थी। मेरी हालत खराब हो गई। ऐसा लगा, शराब नहीं मिली तो मैं मर जाऊंगा।

मैंने कहा–मेरी ओर से कोई बाध्यता नहीं है। कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है। थोड़े-से ध्यान के प्रयोग हैं। वे तुम्हें करने पड़ेंगे और मनोबल मजबूत रखना पड़ेगा। उसने मेरी बात मान ली। मैंने संतों को बुला कर कहा–इसे ध्यान का प्रयोग करवाओ। अनुप्रेक्षा और दूसरे प्रयोग कराओ।

उसे ध्यान का प्रयोग कराया गया। अच्छा लगा। उसने कहा–आज घर जाने के बाद मैं इस प्रयोग को दोहराऊंगा।

दूसरे दिन वह नाभा में हमारे पास आया तो उसके चेहरे पर मुस्कान थी। आंखों में थोड़ी-सी चमक थी। उसने अभ्यास के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई और एक दिन जब हमारी पंजाब यात्रा समाप्त होने को थी, वह आया तो मैं उसे सहसा पहचान नहीं सका। उसकी मां उसके साथ थी। उसने कहा–आपने मुझे नई जिंदगी दे दी। मैं शराब को पूरी तरह से छोड़ चुका हूं।

दृष्टि परिणाम पर रहे

जो नशे की आदत के गुलाम हैं, जिनकी आदतें बद्धमूल हो चुकी हैं; उन्हें सोचना चाहिए कि आज तो अच्छा लग रहा है, लेकिन आगे चलकर इसका परिणाम क्या होगा? आपातसरस और परिणामविरस–यह शाश्वत नियम है। इसे कोई उलट नहीं सकता। भारतीय चिंतन में उसी कार्य को अच्छा माना गया, जिसका परिणाम अच्छा होता है। प्रारंभ चाहे अच्छा न रहा हो, किंतु परिणाम उसका जरूर अच्छा होगा। हमारी दृष्टि परिणाम पर रहे, भविष्य पर रहे।

आज बहुत-सारे विकलांग बच्चे पैदा हो रहे हैं। कुछ शरीर से विकलांग होते हैं तो कुछ मन से विकलांग होते हैं। मंदबुद्धि बच्चे भी बड़ी संख्या में देखे जा सकते हैं। यह सब खान-पान की गड़बड़ी और माता-पिता की दूसरी विकृतियों का परिणाम है। आप इस बात को मान कर चलें कि जो लोग अपने खान-पान की शुद्धता पर ध्यान नहीं दे रहे हैं या किसी नशे के आदी हैं, वे किसी-न-किसी रूप में अपनी भावी संतान के जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। पैदा होने वाली उनकी संतान किसी-न-किसी रूप में मां-बाप द्वारा किए गए गुनाह की निशानी इस धरती पर लेकर आएगी।

यदि हम गहराई से सोचें तो नशीले पदार्थ हमारे वर्तमान और भविष्य, दोनों को प्रभावित करते हैं। इसलिए हर समझदार आदमी को गंभीरता से चिंतन करना चाहिए और इस दृष्टि से सचेत रहना चाहिए कि मेरा आचार-व्यवहार, खान-पान और चिंतन भावी की दृष्टि से ठीक है या नहीं? दस वर्ष बाद, बीस वर्ष बाद और जीवन के संध्याकाल में इसका क्या परिणाम होगा? हमारी भावी पीढ़ी पर इसका क्या असर पड़ेगा?

अपनी जीवनशैली और चर्या का निर्धारण बहुत चिंतनपूर्वक करना चाहिए। व्यक्ति अपना अनिष्ट तो करता ही है, दूसरों के अनिष्ट का भी कारण बनता है। यह एक तरह का पागलपन ही है। मैंने एक पागल के बारे में सुना कि वह ज्यादा बोलता नहीं है। आगे-आगे जा रहा है यदि पीछे से किसी ने जरा-सा छू दिया तो आगे चल रहे व्यक्ति को वह जोर का मुक्का मार देता था, पीछे नहीं देखता था कि मुझे धक्का किसने दिया। वह सीधा आगे वाले पर अटैक करता था।

ध्यान दें जीवनशैली पर

जो व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है। अपने हार्ट को, फेफड़े को, लीवर को और पांचन-तंत्र को दुरुस्त रखना चाहता है, जो अपने स्नायु संस्थान को अंत समय तक क्रियाशील रखना चाहता है, मस्तिष्क को बुढ़ापे तक सक्रिय और दुरुस्त रखना चाहता है, उसे किसी भी तरह के नशे से बचते हुए ध्यान आदि क्रियाओं के द्वारा अपनी जीवनशैली को शुद्ध रखना होगा। बहुत जटिल है हमारा मस्तिष्क। इसके समान दुनिया की दूसरी कोई मशीनरी नहीं है। हजार सुपर कम्प्यूटर भी दिमाग की बराबरी नहीं कर सकते। इसका दशांश भी सक्रिय और जागृत कर लिया जाए तो आदमी सुपर जीनियस बन सकता है।

मस्तिष्क की महत्ता का अनुमान इसी से लगा सकते हैं कि कम्प्यूटर और दूसरे जितने भी संचार-साधन हैं, वे मानव-मस्तिष्क की ही देन हैं। यह आदमी के दिमाग का ही कमाल है कि आज वह दिल की जगह दूसरा दिल, फेफड़े की जगह दूसरा फेफड़ा और रक्तवाहिनियों और शिराओं तक का ट्रांसप्लान्टेशन कर देता है। आज तक जितने भी वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, वे सब मनुष्य के मस्तिष्क की ही देन हैं।

जो जातियां पहले शराब जैसी बुराई में लिप्त थीं, उनके यहां आज सामाजिक प्रतिबंध लागू हो रहे हैं। वे समझ गए हैं कि सदियों से हमारे पिछड़ेपन का कारण क्या है? वे धीरे-धीरे इस बुराई से मुक्त हो रहे हैं, लेकिन जो परंपरागत रूप से नशे की इन बुराइयों से दूर रहे, वे अब धीरे-धीरे नहीं, बल्कि बड़ी तेजी से इस बुराई को अपना रहे हैं। जैन, अग्रवाल, माहेश्वरी जैसे समाज, जो परंपरागत रूप से शराब जैसी बुराई से बहुत दूर थे, अब उनकी वर्जनाएं टूट रही हैं। किसने सोचा था कि जो हमेशा बचे रहे, वे लिप्त हो जाएंगे और जो हमेशा लिप्त रहे, वे अपने आपको इस बुराई से मुक्त कर लेंगे। यह

समय का चक्र है, जो सदा एक-सा नहीं रहता। समय का पहिया कभी एकाएक उल्टा घूम जाता है। उस समय सबकुछ उलट-पुलट हो जाता है। आज लगता है कि समय का पहिया पूरा एक चक्कर लगा चुका है। नीचे वाला भाग ऊपर और ऊपर वाला भाग नीचे जा रहा है।

नशा कोई ऐसी चीज नहीं, जिसे छोड़ा न जा सके। इतना जरूर है कि गहरी आसक्ति हो जाने के बाद कोई भी चीज मुश्किल से छूटती है। इसके पहले कि नशा आसक्ति में परिवर्तित हो जाए, उससे मुक्ति पा लेनी चाहिए। और तो कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, लेकिन यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि जो समाज शराब जैसी बुराई की गिरफ्त में जाएगा, उसका पतन अवश्यंभावी है। एक दिन में तो नहीं, लेकिन कालांतर में उसका पतन के गर्त में जाना सौ प्रतिशत निश्चित है। प्राकृतिक नियम सब पर समान रूप से लागू होते हैं। वे किसी को छोड़ते नहीं हैं। प्राकृतिक नियमों की जिसने भी अवहेलना की, उसे उसका परिणाम भुगतना पड़ा है।

इसलिए व्यक्ति, परिवार, समाज और संस्थाएं–सब इस बात पर गंभीरता से चिंतन करें कि नशे की यह बुराई कहीं पनपे नहीं। बुराई के जड़ जमाने का इंतजार न करें। अंकुरित होते ही इसे उखाड़ फेंके। देर हो जाने पर ये झाड़-झंखाड़ जंगल का रूप ले लेंगे, फिर काटने और उखाड़ने पर भी मिटेंगे नहीं।

२३. अच्छा आदमी : अच्छा परिवार

हर आदमी विकास करना चाहता है, सुखी रहना चाहता है। कोई भी पिछड़ा हुआ रहना नहीं चाहता। प्रश्न होगा कि आदमी सुखी कैसे बन सकता है? दु:ख को कैसे दूर कर सकता है? अपने पिछड़ेपन को कैसे मिटाया जा सकता है और विकास कैसे किया जा सकता है? जब तक रास्ता सही नहीं मिलता, तब तक आदमी अपने गंतव्य तक या मंजिल तक नहीं पहुंच सकता। सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है मार्ग या रास्ते की खोज।

विकास का पहला रास्ता है अज्ञान को दूर करना। अज्ञान दूर हो तो आदमी विकास कर सकता है। अज्ञान और ज्ञान–ये दो शब्द आज मीमांसनीय बन गए हैं। एक अज्ञान वह है, जो शिक्षा के अभाव में होता है। बहुत सारे लोग निरक्षर हैं, वे वर्णमाला को भी नहीं जानते। हस्ताक्षर नहीं कर सकते। उसकी जगह अंगूठा लगाते हैं। यह अशिक्षा वाला अज्ञान है। न लिख सकते हैं, न लिखे हुए को पढ़ सकते हैं। अब तो शिक्षा का काफी प्रचार-प्रसार हुआ है, हो रहा है। पुराने जमाने में जब शिक्षा का इतना प्रचार-प्रसार नहीं था तो गांव में किसी की चिट्ठी या पत्र आता तो उसे पढ़ने वाले की खोज करनी पड़ती थी। कहा जा सकता है कि उस समय अज्ञान ज्यादा था।

एक अज्ञान वह है कि जानता हुआ भी आदमी जान नहीं पाता। कुछ लोग बहुत पढ़े लिखे होकर भी अज्ञानी हैं। ऐसे लोगों को शिक्षित अज्ञानी कहा जा सकता है। जहां चरित्र का पक्ष है, नैतिकता का पक्ष है, मानवता का पक्ष है, वहां पढ़ा-लिखा आदमी जानता हुआ भी दूसरे के साथ अन्याय, अत्याचार और शोषण करता है। यह वास्तव में अज्ञान ही है। ज्ञानी आदमी कभी ऐसा नहीं कर सकता। जिस आदमी में करुणा है, वह धनी हो या निर्धन, अच्छा आदमी कहा जाएगा। जिसमें करुणा नहीं, संवेदनशीलता नहीं, जो दूसरे की हानि-लाभ का विचार नहीं करता, वह क्रूर आदमी होता है। पढ़ा-लिखा होकर

भी वह अच्छा आदमी नहीं कहा जा सकता। आदमी को अच्छा बनाती है उसकी संवेदनशीलता, करुणा और मानवीय दृष्टिकोण। उसमें यह दृष्टि होती है कि जैसे मैं सुख-दुःख का अनुभव या वेदन करता हूं, वैसे ही दूसरा भी करता है। इसलिए अपनी ओर से मैं किसी को दुःखी न बनाऊं। अगर इतना-सा ज्ञान हो जाए तो मैं समझता हूं, अनपढ़ आदमी भी ज्ञानी आदमी की गणना में आ जाएगा।

सबसे बड़ा ज्ञान

आज स्कूली ज्ञान तो बहुत बढ़ा है, किंतु आत्मज्ञान घट रहा है। इसलिए पढ़े-लिखे लोग भी अन्याय करने में संकोच नहीं कर रहे हैं। मेरा तो यह मानना है कि आज बड़े-बड़े अन्याय, अत्याचार, घोटाले, अनपढ़ लोगों के द्वारा नहीं, उच्च शिक्षित लोगों के द्वारा हो रहे हैं। ऐसा आत्मज्ञान के अभाव में हो रहा है। पुस्तकीय ज्ञान बुद्धि को तेज कर देता है, किंतु उसी अनुपात में भावों का परिष्कार नहीं होता। दूसरे शब्दों में कहें तो आज की शिक्षा आदमी को चालाकी और होशियारी सिखा रही है, समझदारी नहीं सिखा रही है।

दूसरों को अपने समान समझना सबसे बड़ा ज्ञान है। वह अगर नहीं है तो आदमी पढ़ा-लिखा होकर भी भाव की दृष्टि से शून्य होगा। एक गांव में एक सेठ रहता था। वह सेठ कठोरवृत्ति और शोषक वृत्ति का था। ब्याज और गिरवी का धंधा करता था। एक दिन वह अपना हिसाब-किताब लिखने में व्यस्त था, तभी दूर गांव का कोई गरीब आदमी उसके पास उधार लेने के लिए आया।

उस समय आज जैसी अच्छी और फैंसी कलम का प्रचलन नहीं था। होल्डर वाली कलम प्रयोग में लाई जाती थी। हिसाब-किताब लिखने वाले सेठ या मुनीम बही में हिसाब लिखते और सोचते, विचार करते समय अथवा किसी से बात करते समय कलम को अपने कान पर रख लेते। वस्तुतः उनका कान कलम के लिए स्टैंड का काम करता था। विश्राम के समय कलम कान पर रख लेते थे और जब जरूरत होती, कान पर से उतार कर लिखने लग जाते।

उस ग्रामीण आदमी की ओर सेठ ने देखा और उससे बातचीत करने के लिए कलम को उन्होंने कान पर रख लिया। तभी सिर को हल्का-सा झटका लगा और कलम सेठ के कान से गिर पड़ी वह ग्रामीण आदमी तुरंत बोल पड़ा–'सेठजी! आपकी छुरी नीचे गिर गई।'

सेठ ने अप्रसन्नता से उस ग्रामीण की ओर देखा और कहा–'क्या कहा अभी तुमने?'

ग्रामीण बोला–'आपकी छुरी नीचे गिर गई।'

'मूर्ख कलम को छुरी कह रहे हो?'–सेठ ने कहा।

'सेठजी! आपके लिए कलम होगी, हमारे गले पर तो यही चलती है। हम तो इसे छुरी ही समझते हैं। गरीब आदमी ने बड़ी स्पष्टता से कहा।

जिसे आत्मज्ञान नहीं होता, वह कलम को छुरी और चाकू के रूप में इस्तेमाल करता है। अक्सर सुनने में आता है कि कर्ज में डूबे हुए किसान आत्महत्या का रास्ता अपनाते हैं। आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र में ऐसी बहुत सी घटनाएं हुईं और पंजाब में भी ऐसा सुनने में आ रहा है। ऐसा क्यों होता है? इसलिए होता है कि उनके साथ करुणापूर्ण व्यवहार नहीं होता। किसी आदमी से तो कहा जा सकता है कि तुम क्रूरता को छोड़ो और करुणा को अपनाओ, किंतु सरकार तो जड़वत होती है। सरकार तो एक अवस्था का नाम है। उससे कैसे कहा जाए कि अपने व्यवहार में मानवीयता और करुणा का समावेश करो। उसकी तो बनी-बनाई नीतियां हैं और उसके कर्मचारी दंड या भय से उन नीतियों को क्रियान्वित करवाते हैं। कर्ज देने से पहले बैंक द्वारा सरकार बाकायदा कर्ज लेने वाले की प्रॉपर्टी की रजिस्ट्री करवाती है। संपत्ति के नाम पर किसान के पास होता है खेत। कर्ज के बदले वह अपनी जमीन सरकार के पास गिरवी रख देता है। समय पर कर्ज न चुका पाने की स्थिति में सरकार वह जमीन नीलाम करवा सकती है अथवा करवाती है। इस तरह समझा जा सकता है कि गरीब किसान के ऊपर कितना बड़ा दबाव होता है। खेत से अच्छी उपज न मिली तो कर्ज चुकाने में कठिनाई हो जाती है और कर्ज में डूबा किसान और कोई उपाय सामने न देखकर आत्महत्या का रास्ता अपना लेता है।

उच्च शिक्षित भी खतरनाक

यदि शिक्षित और अशिक्षित, ज्ञानी और अज्ञानी की बात की जाए तो बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि एक शिक्षित या कम पढ़ा-लिखा आदमी उतना खतरनाक नहीं होता, जितना शिक्षित या उच्च शिक्षित आदमी होता है। अनपढ़ आदमी स्वभाव से सीधा-सादा और सरल होता है, जबकि पढ़े-लिखे आदमी में एक तरह की चतुराई आ जाती है। दूसरों को ठगने में उसे

किसी तरह का संकोच भी नहीं होता। वह दूसरों से फायदा उठाना जान लेता है। अपने स्वार्थ के लिए किसी को इस्तेमाल करने की कला उसमें आ जाती है। उसके व्यवहार में बहुत बड़ा परिवर्तन आ जाता है।

घरेलू हिंसा रुके

अच्छे आदमी की पहली पहचान यह है कि वह क्रूरतापूर्ण व्यवहार नहीं करता। उसके स्वभाव में सहज दया और करुणा की भावना होती है। अहिंसा यात्रा का उद्देश्य यही है कि हर व्यक्ति को यह समझाया जाए कि क्रूरता का व्यवहार छोड़कर करुणा का भाव मन में जागृत करो। इसके लिए समाज में करुणा का अभियान चलाने से पहले अपने घर-परिवार में इसे स्थान दिया जाना चाहिए। बहुत बार घर के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति करुणा का व्यवहार कम देखने में आता है। पति का पत्नी के साथ, भाई का भाई के साथ, यहां तक कि पिता-पुत्र और मां बेटे में भी करुणापूर्ण व्यवहार में न्यूनता आ रही है। परिवार में इसीलिए तनाव बढ़ रहा है। तलाक की समस्या पैदा हो रही है और संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। घरेलू हिंसा आज बहुत ज्यादा बढ़ रही है। आदमी के मन में जरा-सा संदेह पैदा होता है पत्नी के चरित्र को लेकर। वह संदेह लगातार गहराता जाता है और एक दिन वह अपने बच्चों सहित पत्नी की हत्या कर देता है। कभी-कभी तो पूरे परिवार की सामूहिक हत्या कर दी जाती है।

परिवार तो एक आश्रय स्थल है। परिवार ऐसी जगह है, जहां आदमी को शरण मिलती है। घर तो आदमी का नीड़ है, घोंसला है, जहां वह बसेरा करता है। परिवार में परस्पर का विश्वास टूटा तो फिर विश्वास किस पर होगा? इसलिए वर्तमान में अगर सबसे ज्यादा और सबसे पहले करणीय कोई काम है तो वह यह है कि घरेलू हिंसा न हो, इसका प्रयत्न किया जाए। छोटे-छोटे मामलों को लेकर विवाद पैदा न किया जाए।

इस बात पर सबसे ज्यादा चिंतन जरूरी है कि यह घरेलू हिंसा कैसे रुके? कई सदस्यों का परिवार है। ऐसे में हो सकता है कि किसी के उपयोग में कोई चीज ज्यादा आ रही हो, किसी के उपयोग में कम आ रही हो, किंतु इसे लेकर असहिष्णु नहीं बनना चाहिए। धैर्य नहीं खोना चाहिए, ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। उस समय सामुदायिक भावना होनी चाहिए।

अहंकार भी हिंसा और अशांति का बहुत बड़ा कारण बनता है। इतिहास को उठाकर देखें तो पाएंगे कि अहंकार ने परिवार, समाज और देश के सामने

ही नहीं, पूरी दुनिया के सामने अस्तित्व का प्रश्न खड़ा कर दिया। रावण, कंस, दुर्योधन से लेकर हिटलर, मुसोलिनी, जार आदि कितने ही शासकों ने अपने अहंकार के कारण अपने राज्य के ही नहीं, पूरी मानव जाति के सामने संकट खड़ा कर दिया, किंतु काल ने उन्हें भी नहीं छोड़ा। अहंकार किस बात का? इसलिए सबसे पहले अहंकारमुक्त बने, फिर आत्मा की ओर रुख स्वत: हो जाएगा। जीवन की वास्तविकता समझ में आने लग जाएगी।

आर्थिक संकट : एक समस्या

विकास का पहला लक्षण है ज्ञान। कोरा ज्ञान नहीं, पढ़ाई से होने वाला ज्ञान नहीं, बल्कि आत्मा से नि:सृत ज्ञान बढ़े। विकास में आर्थिक विकास भी शामिल है। आज के युग में तो आर्थिक विकास के अंतर्गत सारा विकास आ जाता है। जिसके पास पैसा होता है, उसे विकसित माना जाता है। जिसके पास पैसा नहीं है, वह पिछड़ा हुआ माना जाता है। आदमी एक सामाजिक प्राणी है। उसके पास अर्थ नहीं है तो उसका दु:ख कभी मिटता नहीं है। रात-दिन रोटी की चिंता में ही पड़ा आदमी विकास क्या करेगा? उसका सारा जीवन पेटभर भोजन की जुगाड़ में ही बीत जाएगा। इस तरह आर्थिक समस्या एक बड़ी समस्या है और बहुत सारे लोगों की ऊर्जा और प्राणशक्ति रोटी के इंतजाम में ही खर्च हो रही है।

आप यह न मानें कि गांव का आदमी ज्यादा विकास नहीं कर सकता। वह भी अपना बहुत विकास कर सकता है, बशर्ते कि वह रोटी की चिंता से मुक्त रहे। आप गांव के हैं तो मैं भी शहर का नहीं हूं। एक ऐसे गांव में पैदा हुआ, जहां जीवन-विकास का कोई साधन नहीं था। विद्यालय नहीं, चिकित्सालय नहीं, दुकान नहीं, बड़ा मकान नहीं, सवारी का कोई साधन नहीं और पगडंडी के सिवाय कोई रास्ता नहीं, लेकिन रोटी की चिंता में जीवन बिताने की अपेक्षा उस छोटी उम्र में चिंतामुक्त जीवन जीने की चाह जगी। एक रास्ता लिया और आज यहां इस मुकाम पर हूं।

विकास को जिस पैमाने से आप मापते हैं, उस पैमाने से मापें तो कोई विकास नहीं किया, लेकिन आत्मिक दृष्टि से मैंने निश्चित रूप से अपना विकास किया। आज तक किसी भी तरह की चिंता को अपने पास फटकने नहीं दिया। निर्द्वंद्व जीवन है। मैं आत्मा की दृष्टि से बड़े सुख का अनुभव करता हूं।

पेट पालना आदमी का उद्देश्य नहीं हो सकता। यह मनुष्य जीवन बहुत

कीमती और दुर्लभ है। इसे भोजन करने और उत्सर्ग करने में ही नहीं बिताना है। पशु-पक्षियों का उद्देश्य तो भोजन हो सकता है। जंगल के वन्य प्राणी अपना सारा समय पेट भरने की चिंता में गुजारते हैं। उनके सामने इसके अलावा कोई लक्ष्य नहीं, इसलिए उनका कोई विकास नहीं होता, लेकिन आदमी के पास तो परिष्कृत मस्तिष्क है। वह अपने मस्तिष्क को और ज्यादा परिष्कृत तभी कर सकता है, जब उसे रोटी की चिंता न हो। वह कोई नई बात सोचे, उसके भीतर किसी नए विचार की स्फुरणा हो।

अच्छी शिक्षा हो और साथ-साथ आदमी रोटी की चिंता से मुक्त रहे, लेकिन यह हो कैसे? या तो आदमी अपने श्रम से अपनी व्यवस्था करे या राज्य उसकी व्यवस्था करे। सरकार या प्रशासन का भी यह दायित्व होता है कि वह अपने नागरिकों को रोटी की चिंता से मुक्त रखे। जो सरकार अपने नागरिकों के लिए रोटी का प्रबंध नहीं कर सकती, वह जिम्मेदार सरकार नहीं कही जा सकती। मैं गरीबी की बात नहीं करता। सरकार सबको अमीर नहीं बना सकती। उसके लिए तो स्वयं का पुरुषार्थ ही काम आता है, लेकिन जिस राज्य के नागरिकों को दो समय की रोटी भी उपलब्ध न हो रही हो, उसे सक्षम और गैर जिम्मेदार सरकार ही कहा जाना चाहिए।

आवेश और नशा

इस तरह विकास के लिए जरूरी है शिक्षा और भोजन की सुलभता और सुखी जीवन के लिए जरूरी है आवेश पर नियंत्रण। आवेश और क्रोध का भी अपना एक तरह का नशा होता है। यह न मानें कि नशीले पदार्थ का ही नशा होता है। क्रोध और आवेश में भी एक तरह की मादकता होती है। आदमी क्रोधी है और ऊपर से वह शराब पी ले तो आगे के दृश्य की कल्पना आप कर सकते हैं। जीवनयापन के लिए भोजन, वस्त्र और मकान प्राथमिक जरूरतें हैं। नशे का तो कोई स्थान ही नहीं हैं, लेकिन प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए लगने वाला धन और श्रम अगर नशीले पदार्थों में खर्च होता है तो विकास की बात बहुत पीछे छूट जाती है।

गुजरात के एक प्रसिद्ध संत हुए हैं रविशंकर महाराज। आचार्य तुलसी के वे बहुत निकट थे और अणुव्रत आंदोलन में उनका बहुत अच्छा सहयोग रहा। गुजरात राज्य बना तो उसका उन्होंने उद्घाटन किया था। गुजरातियों में बहुत मान्य व्यक्ति थे। एक बार वे गांव के किसी विद्यालय में छात्र और अध्यापकों

को संबोधित कर रहे थे। अध्यापकों ने शिकायत की कि गुजरात में अभी बहुत गरीबी है। हम शिक्षा की ओर ध्यान दे रहे हैं, किंतु हमारा वेतन इतना अल्प है कि इससे गुजारा नहीं हो पा रहा है।

रविशंकरजी ने कहा–'आप लोगों ने वेतन कम होने की बात कही। यह तो सरकार ही बढ़ा सकती है। मेरे हाथ में तो सरकार है नहीं। मैं आपकी बात सरकार तक पहुंचा सकता हूं, लेकिन आप अगर मेरी बात मानें तो कम से कम सौ रुपए तो मैं इसी समय बढ़ा सकता हूं।

उस जमाने में सौ रुपए बहुत मायने रखते थे। सौ रुपए बढ़ने की बात उन्होंने कही तो अध्यापकों में उत्सुकता जाग गई। वे प्रसन्न हो गए और हाथ जोड़कर बोले–'आप आज ही कृपा कराएं। सौ रुपए बढ़ा दें तो हमारा कल्याण हो जाए।'

रविशंकरजी ने कहा–'आपके कल्याण में मेरी रुचि है, लेकिन कुछ बातें मैं आपसे पूछना चाहूंगा।' इतना कहकर उन्होंने प्रश्न किया–'क्या आप किसी तरह का कोई नशा करते हैं?'

अध्यापकों ने कुछ संकोच के साथ कहा–'कोई बड़ा नशा नहीं, लेकिन बीड़ी हम जरूर पीते हैं। हम क्या बहुत सारे लोग पीते हैं।'

'बीड़ी में आपका प्रतिमाह कितना खर्च होता है?' रविशंकर महाराज का दूसरा प्रश्न था।

'चालीस-पचास रुपए तो खर्च हो ही जाते हैं। पास में बैठे लोगों और घर आए मेहमानों को भी पिलाना पड़ता है।' अध्यापकों ने कहा।

आप बीड़ी पीना बंद कर दें। पहली बात तो विद्यार्थियों पर इसका गलत प्रभाव पड़ता है। दूसरी बात यह स्वास्थ्य के लिए भी ठीक नहीं है। इतना कहकर उन्होंने दूसरा प्रश्न किया–'सिनेमा आप महीने में कितनी बार देखते हैं?'

अध्यापकों ने कहा–'महीने में दस-बारह बार तो देख ही लेते हैं। पचास-साठ रुपए इसमें भी खर्च हो जाते हैं।'

रविशंकरजी ने कहा–'यह मनोरंजन भी कम कर दें। इन दो चीजों से आप स्वयं को मुक्त कर लें तो सौ रुपए तो निश्चित रूप से आपके बच जाएंगे। जहां तक वेतन की बात है, आपकी बात मैं सरकार तक पहुंचा दूंगा।'

भारत में गरीबी का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि यहां की एक बहुत

बड़ी आबादी नशे और दूसरी बुराइयों की गिरफ्त में है। जो कमाता है, उसका एक बड़ा भाग शराब और दूसरे नशों पर खर्च हो जाता है। आय-व्यय का यह असंतुलन उसे गरीबी में ले जाता है। गरीबी या तो कुंठा पैदा करती है या प्रतिक्रियात्मक हिंसा में ले जाती है। विकास की बात आदमी भूल जाता है और जीवन को विनाश की ओर ले जाने वाले रास्तों को पकड़ लेता है। इस तरह आदमी दोहरी मार झेलता है। गरीबी का दु:ख तो उसे सताता ही है, शरीर जिस नशे का गुलाम बन चुका है, उसकी पूर्ति की चिंता भी उसे सताती है।

जिनको विकास करना है, आगे बढ़ना है, सफल होना है, उन्हें इन समस्याओं पर गहरा विचार करना चाहिए कि मेरा भोजन कैसा है, मेरी जीवनशैली कैसी है, क्या चीज मेरे लिए उपादेय है और क्या वर्जनीय है? प्राचीन अर्थशास्त्र का एक सिद्धांत है कि आय से ज्यादा व्यय न करें। मनु से लेकर चाणक्य तक सबने यह बात कही है। सुख से वही जी सकता है, जो अपनी आय को देखकर व्यय करता है। आय है सौ रुपए और खर्च हो रहा है डेढ़ सौ रुपए तो स्वाभाविक है कि उसके लिए आदमी या तो कर्ज लेगा या चोरी करेगा। ऐसे में दु:ख अपरिहार्य है। नशे का गुलाम आदमी आय-व्यय में संतुलन का विवेक खो देता है। परिणाम होता है नरक तुल्य जीवन।

आचार्य तुलसी ने दक्षिण भारत की यात्रा की। हम चेन्नई गए। हमने वहां देखा कि गांवों में बहुत गरीबी है। तमिलनाडु बहुत सजग प्रदेश है। वहां के लोग शिक्षा आदि की दृष्टि से बहुत पीछे नहीं हैं, किंतु सबकुछ होते हुए भी वहां के लोगों के गरीब होने की बात समझ में नहीं आई। हमने वहां के प्रति व्यक्ति की आय का पता लगाया तो मालूम हुआ कि वहां के लोगों की आय अच्छी है। लोग अच्छा कमाते हैं।

हमने लोगों से पूछा कि इतना कमाते हुए भी यहां के लोग गरीब क्यों हैं तो एक प्रबुद्ध आदमी ने बताया कि 'तीन सकार' यहां के लोगों को गरीब बनाए हुए हैं। तीन सकार वाली बात को स्पष्ट करते हुए उसने कहा कि शराब, सिगरेट और सिनेमा–ये तीनों चीजें यहां के लोगों के मुंह लग गई हैं। परिवार में चार आदमी हैं। सौ रुपए के हिसाब से प्रतिदिन चार सौ रुपए कमाते हैं, लेकिन शाम को शराब पीकर, सिगरेट मुंह से लगाए सिनेमा देखना अनिवार्य है। सिनेमा यहां सिनेमा हॉल में ही नहीं, झोपड़ियों में भी चलता है।' बात हमारी समझ में आ गई।

हमारी समझ में यह भी आ गया कि यहां गिरवी का धंधा क्यों ज्यादा चलता है? घर का सामान और यहां तक की कपड़े भी गिरवी रखकर लोग ये तीन शौक पूरा करते हैं। गरीबी क्यों नहीं होगी? कमोबेश यही दशा पूरे भारतीय समाज की है। विकास कैसे होगा?

नशा और गुस्सा–ये दो आदमी की प्रगति को अवरुद्ध कर देते हैं। बुराई कोई भी अच्छी नहीं होती, लेकिन बड़ी बुराई तो जीवन को पूरी तरह से तबाह कर देती है। जहां तक नशे का सवाल है, इसका प्रचलन बड़ी तेजी से बढ़ता है। गांव में एक आदमी भी शराबी है तो बड़ी जल्दी वह अपनी मंडली बना लेता है। इसलिए इस दृष्टि से सावधान रहना जरूरी है। जिसका परिवार नशे से मुक्त है, वह ज्यादा सावधान रहे और अपने परिवार के सदस्यों को ऐसे लोगों से मेलजोल रखने की मनाही करे। संगति सही होगी तो बुराइयों से भी बहुत हद तक बचे रहेंगे।

परामर्श कोयल का

ऊपर उड़ते जा रहे कौए को देखा तो पेड़ पर बैठी कोयल ने पूछा–'भाई! इतनी शीघ्रता में क्यों हो? अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ, फिर कहां भागे जा रहे हो?'

कौआ पेड़ की डाल पर बैठ गया। उसने कहा–'मैं अब यह गांव ही छोड़कर जा रहा हूं। यहां के लोग अच्छे नहीं हैं। मेरी बोली उन्हें अच्छी नहीं लगती। जहां भी बैठता हूं। पत्थर मारकर भगा देते हैं। मैंने तय कर लिया है कि यहां नहीं रहूंगा।

'तो फिर कहां जाओगे?' कोयल ने पूछा।

'दुनियां बहुत बड़ी है। कहीं दूर चला जाऊंगा'–कौए ने कहा।

'अच्छी बात है, जहां आदर न हो, वहां रहना ठीक नहीं, लेकिन सिर्फ बोली के कारण यहां से जा रहे हो तो यह बताओ कि अपनी बोली बदली या नहीं'? कोयल ने पूछा।

'बोली तो नहीं बदली। वह तो अब भी वैसी ही है।'

'तो फिर स्थान बदलने से कुछ नहीं होगा। जहां जा रहे हो, वहां भी लोग तुम्हारी ओर पत्थर उछालेंगे'–कोयल ने परामर्श दिया।

आदत को बदलना बहुत कठिन काम है। अगर यह बात समझ में आ

जाए कि शराब या गुस्से की बुरी आदत के कारण कितना नुकसान हो रहा है तो आदमी संभल सकता है। पहले आदमी को इतना ज्ञान नहीं था, किंतु इन वर्षों में नशे की बुराई से होने वाली शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों के बारे में पत्र-पत्रिकाओं में लिखा जा रहा है। जगह-जगह पर सभा-सेमिनार कर लोगों को समझाया जा रहा है। बाकायदा चित्रों के द्वारा दिखाया जा रहा है कि शराब और दूसरे नशीले पदार्थ शरीर को कितना नुकसान पहुंचा रहे हैं, फिर भी आदमी अपने स्वास्थ्य की परवाह नहीं करता तो यह उसका महा अज्ञान ही कहा जाएगा।

हमने प्रेक्षाध्यान की प्रणाली प्रारंभ की और ध्यान के शिविर लगाने शुरू किए तो ऐसे-ऐसे लोग आने लगे जो नशे के गुलाम थे। गुस्सा जिनकी नाक पर रहता था। ऐसे लोग भी आए, जिन्हें डॉक्टर लाइलाज घोषित कर चुके थे, लेकिन प्रेक्षाध्यान सीखकर उन्होंने दूसरा जीवन प्राप्त कर लिया।

अगर अपने को बदलना चाहते हो तो प्रयोग का मार्ग अपनाना होगा। प्रयोगों को निरंतर किया जाए तो निश्चित रूप से जीवन में सकारात्मक परिवर्तन आएगा।